बुण्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी
से हिन्दी विषय में पी-एच0 डी0 की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

बुन्देली लोकगीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन

1998

शोध निर्देशक
डा0 जवाहरलाल कंचन
पूर्व रीडर,
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी

शोध छात्रा
कु0 बबीता जैन
एम.ए. 'हिन्दी'

बुन्देलखण्ड

भिंड
मुरैना
ग्वालियर
जालौन
दतिया
झाँसी
शिवपुरी
हमीरपुर
बाँदा
टीकमगढ़
छतरपुर
गुना
ललितपुर
सतना
पन्ना
दमोह
विदिशा
सागर
जबलपुर
रायसेन
नरसिंहपुर

बुन्देलखण्ड

घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करती हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'बुन्देली लोक गीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन' मेरा अपना मौलिक कार्य है। यह प्रबन्ध अथवा इसकी सामग्री किसी भारतीय अथवा अन्य विश्वविद्यालय के परीक्षण संस्थान में पी-एच.डी. या अन्य किसी उपाधि के लिये अभी तक प्रस्तुत नहीं की गयी है।

दिनांक--22·3·2003

B[illegible]

(कु0 बबीता जैन)
शोधछात्रा

डा0 जवाहरलाल कंचन
पूर्व रीडर,
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी
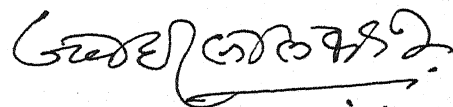
दूरभाष : 0517-2442463, 2444736
249/ चमनगंज, सीपरी बाजार, झाँसी
दिनांक : 22. 3. 2003.

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 बबीता जैन ने बुण्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी द्वारा हिन्दी विषय पर स्वीकृत "बुन्देली लोक गीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन" पर मेरे निर्देशन में बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया है। इसकी विषय सामग्री मौलिक है और यह सम्पूर्ण या आंशिक रूप से किसी अन्य परीक्षा के लिए प्रयोग नहीं कीं गयी है । कु0 बबीता जैन ने अवकाश दिनों में 200 दिन उपस्थित रहकर यह कार्य पूर्ण किया है।

यह शोध प्रबंध बुण्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी-एच0डी0 आर्डिनेन्स के सभी उपबन्धों की पूर्ति करता है। मैं संस्तुति करता हँ कि यह शोध-प्रबन्ध इस योग्य है कि मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया जाए ।

निर्देशक

(डा0 जवाहरलाल कंचन)
पूर्व रीडर, बुन्देलखण्ड कालेज,
झांसी

प्राक्कथन

बुन्देली का लोक साहित्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी अत्यंत उच्च कोटि का है। लोक साहित्य की गीतात्मकता, लय, तुक, अलंकार, रस, छंद, भाषा एवं शैली आदि सभी पक्ष बड़े ही सजीव मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं । इसमें ब्रज भाषा से भी अधिक श्रुति माधुर्य है। अतः कला सौन्दर्य की दुष्टि से बुन्देली साहित्य में अनोखा शिल्प सौन्दर्य है, जो लोक साहित्य की अमूल्य निधि है ।

बुण्देलखण्ड मेरी जन्म भूमि हैं अतः यहॉ के लोक मानस और जनसाधारण से मैं मूल रूप से जुड़ी हूँ । बुन्देलीं लोक जीवन की एक अभिन्न अंग होने के नाते यहॉ के लोकगीतों में सन्निहित सौन्दर्य पर अनुसंधानात्मक अध्ययन मेरे लिये दुष्कर कार्य नहीं था । लेकिन जब इसकी गहराई में प्रविष्ट हुयी तो उन्हीं अनेकानेक कठनाईयों का सामना करना पड़ा जिनसे लोक साहित्य का कोई भी संकलनकर्ता अपरचित नहीं रहता । फिर भी इस शोध प्रबन्धन में कुछ अभाव रह गये होगें, कुछ त्रुटियॉं रह गई होंगी । इसमें से जो अच्छा हैं वह मेरे निर्देशक, बुन्देली विद्धतजनों व बुन्देली साहित्य के कारण हैं और जो भूलें त्रुटियॉं एवं अपूर्णता है उसके लिये मेरी अल्पज्ञता उत्तरदायी हैं ।

किसी देश का लोक साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उद्‌गार है । वह उनकी धार्मिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है । यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना है तो सर्वप्रथम 'उसके लोक साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा । लोक साहित्य जन समाज की वस्तु हैं अतः उसमें जनता का हृदय लिपटा रहता है। भारत वर्ष लोक साहित्य की सम्पत्ति में संसार के अन्य देशों से सबसें अधिक धनवान हैं । बुण्देलखण्ड संस्कृति एवं साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध प्रदेश हैं । कवि कुल गुरू- महर्षि बाल्मीकी, वेद व्यास, भवभूति, कृष्णदत्त आदि संस्कृत कवियों से लेकर गोस्वामी तुलसीदास, कवीन्द्र, केशवदास, पद्‌माकर, मतिराम, भूषण, बिहारी जैसे महाकवि तथा आधुनिक काल में राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त, वियोगी हरी, नाथुराम माहौर, कवयित्री श्री मती राजकुमारी चौहान, लोक गायक ईसुरी आदि अनेकों भाषा कवियों ने बुण्देलखण्ड में जन्म लेकर काव्य कौशल से जनता को मुग्ध किया है । इसके अतिरिक्त इतिहास के महान लेखक उपन्यास सम्राट डा0 वृन्दावन लाल वर्मा और प्रसिद्व समालोचक डा0 रामविलास शर्मा इसी बुन्देली लोक जीवन की सामूहिक चेतना का फल होते है और वे जनता के सामाजिक प्रयोजन से निर्मित होते हैं।

लोकगीतों को समझने से लोकजीवन की संस्कृति और परम्परा को समझा जा सकता हैं । लोक साहित्य के अर्न्तगत लोकगीतों का प्रमुख स्थान हैं, क्योंकि इसके माध्यम से लोक जीवन अपनी अनेक आवश्यक स्थितियों कों विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं, मासों, व्रतों, पर्वों के अनुसार अभिव्यक्त करता हैं । लोकगीत लोक भावना के स्वच्छन्द प्रवाह के साथ प्रस्तुत हुए हैं । इन गीतों में प्रमुख भावना जीवन की अभिव्यक्ति की हैं जो लोक जीवन की जीती जागती सम्पत्ति है। लोकगीतों में मनुष्य अपने आसपास की दुनियां की पूरी कहानी सुनता-सुनाता है।, देखता-दिखता है ।आदमी के चारों ओर की दुनियां की सच्ची धड़कन लोकगीतों में रहती है ।

आदिकाल से भारत का जन जीवन धार्मिक भावनाओं सें अनुप्रमाणित रहा है । इसका ज्ञान हमें तत्सम्बन्धी लोक साहित्य से सहज ही प्राप्त होता है । यह एक वास्तविकता है कि लोक साहित्य का प्रासाद धर्म से सुदृढ़ नींव पर आधारित है । लोक साहित्य जैसा कि हिन्दी साहित्य कोष में स्पष्ट किया गया हैं - "वास्तव में लोक साहित्य वह मौलिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी

हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाली साधना सामाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है जो क्षेत्र विशेष के जनसामान्य की आस्थाओं, परम्पराओं एवं संस्कृति का बोधक है ।

बुन्देली लोक साहित्य पर गत लगभग 50 वर्षो से शोधकार्य हुआ तो हैं किन्तु लोकगीतों के प्रकाश में इस क्षेत्र के जनसामान्य की लोकगीतों में सौदर्य शास्त्रीयनिरुपण, धर्म, संस्कृति, मान्यताओं, लोककाव्य की व्यापकता व उपादेयता का सम्यक आंकलन और सार्थक विवेचन करने का प्रयास नहीं किया गया हैं, इस दृष्टि से प्रस्तुत विषय पूर्ण मौलिक है ।

लोक साहित्य के अर्न्तगत लोकगीत एक महत्वपूर्ण अंग हैं । प्रस्तुत शोध विषय का आधार बुन्देली लोकगीतों को रखा गया हैं । जिसमें लोकगीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय निरूपण शोध का प्रमुख उद्देश्य है इससे अज्ञात तथ्यों एवं विस्मृत प्रायः रीति-नीति परम्परा संस्कृति धर्म का उद्घाटन होगा ।

बुन्देली लोकगीतों के अध्ययन से लोकजीवन के धार्मिक भावों, मान्यताओं, अलौकिकता के प्रति गहन श्रृद्धा समर्पण का पता चलता है। व्रतों, पर्वो, उत्सवों के आयोजन की विधियॉं पर्व के प्रत्येक महिनों के धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तृत स्वरूप लोकगीतों में विद्यमान है। लोकगीतों में सौन्दर्य उनके विभिन्न रूपों में है। किन्तु यह एक तथ्य है कि ऐसे लोकगीत अपनी एक विशिष्टता को अक्षुण रखने में बड़ी सीमा तक सहायक है। इन लोकगीतों में आदिम युगीन देवताओं सूर्य, चन्द्र, इन्द्र आदि पर विश्वास, भक्तिपरक श्रद्धा और समर्पण के अनेक भाव एक साथ विद्यमान है। इसका अध्ययन, विश्लेषण अपेक्षित ही नहीं अपितु लोकगीतों में सौन्दर्य को सदृश्य रूप में अभिव्यक्त करने के लिये अनिवार्य भी है। शोध प्रबंध "बुन्देली लोकगीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन" पर अनुसंधान की दृष्टि से अध्ययन करने का मैंने विनम्र प्रयास किया है। इस दृष्टि से उन्हीं लोकगीतों को लिया गया है जो परम्परागत संचित सम्पत्ति हैं, तथा जो लोक कण्ठों की मौलिक परम्परा के द्योतक है। लेकिन लोकगीतों को कालानुसार भूत, भविष्य और वर्तमान की विभाजक सीमा रेखाओं में नहीं रखा जा सकता । इनमें युगों से संचित अनुभूति या युग-युग के इतिहास का सत्य अभिव्यक्त हुआ है। बुन्देलली लोक गीतों के संकलन द्वारा इनमें निहित सौन्दर्य के स्वरूप का सांगोपांग चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पृष्ठभूमि सहित छैः अध्यायों में विभक्त किया गया है। सर्वप्रथम भूमिका के अर्न्तगत लोक काव्य की पृष्ठभूमि में लोकगींतों की परिभाषा, विकासक्रम और तत्व, भाषागीत वाद्य तथा नाट्यगीत, परम्परा, कला और संस्कृति, लोक साहित्य के विविध रूप- काव्य, गीत, कहानी, हास्य-व्यंग्य आदि का समावेश किया गया है। जिसमें बुन्देली मानव जीवन में लोकगीतों का विकास, परम्परा और संस्कृति का पता चलता हैं । प्रथम अध्याय में लोक काव्य में लोकगीतों का वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया हैं । समस्त वर्गीकृत लोकगीतों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति शोध का प्रधान उद्देश्य रहा है।

बुण्देलखण्ड की अपनी एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा रही हैं । इन परम्पराओं को अक्षुण्य बनाये रखने का अधिकांश श्रेय यहॉं के लोकगीतों को है । समय-समब पर होने वाले अनुष्ठानों, तीज, त्यौहारों में अब भी गीत गाये जाते हैं, जो अद्भुत उल्लास, स्वाभाविक उद्गार और सरस भाव लिये होते हैं । बुण्देलखण्ड लोक संगीत का प्रमुख केन्द्र रहा हैं। यहॉं सामूहिक नृत्य, सामूहिक गान, तथा भोज आदि उत्सव और त्यौहारों के रूप में आज भी प्रचलित हैं। होली, दीपावली, बसन्त, रक्षाबन्धन जैसे कुल 20 पर्वो का उल्लेख किया गया हैं। जिनके स्वाभाविक चित्र लोकगीतों में परिलक्षित हुए हैं। इस प्रकार लोकगीतों में सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का

पूरा-पूरा प्रभाव हैं। द्वितीय अध्याय में बुण्देलखण्ड के 18 प्रसिद्ध लोक कवि और उनके काव्य में साहित्यिक सौन्दर्य आदि बातों पर प्रमाणिक विचार किया गया है। अध्याय तीन में भाषा सौष्ठव और सौन्दर्यशास्त्रीय निरुपण प्रदान करने हेतु शास्त्र मत और निकष पाश्चात्य और भारतीय संप्रदाय तथा बुन्देली भाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप व विकास रस छन्द, अलंकार व भाषा व्याकरण के वैज्ञानिक अध्ययन को पूर्णतः मौलिक व नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। अध्याय चार में लोकगीतों में समाज व संस्कृति, धर्म व परम्पराओं का सर्वेक्षण किया है। जिससे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण लोकगीत सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकगीतों के माध्यम से लोक संस्कृति के मौलिक अस्तित्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार विविच्य अध्याय में विभिन्न उदाहरणों और लोक गीतों के माध्यम से इस यथार्थ को मूर्तिमान किया गया कि बुन्देली संस्कृति, धर्म, परम्परायें, प्रचलित पर्व, मेले, उत्सव आदि स्थानीय होते हुए भी विशद सीमाहीन, भारतीयता तथा मौलिकता से परिपूर्ण हैं। अध्याय पाँच ब्रज भाषा काव्य का प्रभाव में ब्रज भाषा के कवि आचार्य केशवदास, सेवकेन्द्र त्रिपाठी, कृष्णदेवकर तथा बुण्देलखण्ड के खड़ी बोली काव्य में राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त व स्व0 लाला भगवान दास के व्यक्ति व कृतित्व का विवेचन किया गया है। अध्याय-छैः 'उपसंहार' में बुन्देली काव्य का महत्व व भाषा की उपादेयता व प्रकाशित-आप्रकाशित ग्रन्थों की खोज की गयी है। प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रंथों का उल्लेख लोक कवियों के प्रसंग में भी किया गया है। अतः **"बुन्देली लोकगीतों का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन "** नामक यह शोध-प्रबंध अपने आप में मौलिकता एवं नवीनता लिए हुए है।

अथक परिश्रमोपरान्त यह नहीं कहा जा सकता कि बुन्देली का समस्त लोक काव्य इस लघु अध्ययन की परिसीमा में बंध गया है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बुन्देली साहित्य के शोध क्षेत्र में यह अद्ययतन अपने ढंग का अनूठा व मौलिक प्रयास है।अनेक पुस्तकों का मंथन, विद्वतजनों का मार्गदर्शन, वर्षो की शोध साधना, सैकड़ों बुन्देली जनों से साक्षात्कार और लोकगीतों का संचयन व लोकगीतों के मर्म के दर्शन करने का ध्यानमय प्रयास इस शोध-प्रबंध के रूप में प्रकट हुआ है।

अपनी पूज्य माता श्रीमती सुशीला देवी जैन अध्यापिका व पिता श्री प्रेमचंद्र जैन, बहन श्रीमती ममता जैन व श्रीमती सवीता जैन के प्रति आभारी हूँ जिनकी सतत प्रेरणा से कार्य पूर्ण हो सका। साहित्य सामग्री एवं स्टेशनरी व यात्रा हेतु साधन उपलब्ध कराने में श्री फूलचंद्र सिंह, उप निदेशक समाज कल्याण झाँसी व निलय जैन तथा श्री अनिल कुमार मिश्रा, जिला विद्यालय निरीक्षक झाँसी का महत्वपूर्ण सहयोग मिला है। श्री भरत खरे व सुशील समाधिया जिन्होंने इतने कम समय में अपने कम्प्यूटर टाइपिंग कार्य से यह शोध कार्य पूरा किया । इसके साथ ही जिनका मार्गदर्शन, निर्देशन, संकलन और सहयोग प्राप्त हुआ है उन सभी के प्रति श्रद्धा और आभार का कुछ ऐसा भाव है मेरे मन में जिसे व्यक्त करने में शब्द समर्थ नहीं हो पा रहा है।

मैं प्रस्तुत शोध कार्य के लिये साहित्य के मर्मज्ञ, सुयोग्य एवं आदरणीय निर्देशक डा0 जवाहरलाल कंचन पूर्व रीडर बुण्देलखण्ड कालेज झाँसी के प्रति हृदय से आभारी हूँ क्योंकि मेरे इस शोध कार्य में उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इसे सम्पादित कराने में आवश्यक सुझावों से अवगत कराकर, मुझे सहायता प्रदान की । मेरे लिये यह गर्व का विषय है कि मुझे उनके मार्ग मिर्देशन में शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ ।यह शोध कार्य बिना मेरे निर्देशक के सहयोग, निर्देशन और सहायता के बिना मेरे लिए इसे पूरा करना असंभव था।

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या

भूमिका
लोककाव्य की पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय
लोक काव्य में लोकगीतों का वर्गीकरण

द्वितीय अध्याय
बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोकगीतकार

तृतीय अध्याय
भाषा सौष्ठव और सौन्दर्य शास्त्रीय निरूपण

चतुर्थ अध्याय
बुन्देली लोक काव्य में समाज और संस्कृति

पंचम अध्याय
बुन्देली लोक काव्य की व्यापकता

षष्ठ अध्याय
उपसंहार

बुन्देली लोकगीतों का सौन्दर्य
शास्त्रीय अध्ययन

भूमिका

लोक काव्य की पृष्ठ भूमि

भूमिका
लोक काव्य की पृष्ठभूमि

बुन्देली लोक काव्य का का परिचय प्राप्त करने हेतु हमें बुन्देलखण्ड की पृष्ठभूमि के अध्ययन की आवश्यकता है।

बुन्देलखण्ड में आर्य-अनार्य संस्कृति से प्रभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र जातियों की संख्या पर्याप्त है। यहाँ ब्राह्मणों में सनाढ्य, कनौजिया, जुझौतिया, आदि, क्षत्रियों में - बुन्देला, चौहान, चन्देल, पवार, परमार, राजपूत, सेंगर आदि शूद्रों तथा अन्य जातियों में अहीर, चमार, कोरी, भंगी, केवट, काछी, धोबी, ढीमर, आदि जातियाँ बुन्देलखण्ड में निवास करती हैं। ईसाई व मुसलमानों के अतिरिक्त आदिवासी जातियाँ भी यहाँ है। यहाँ की बुन्देली भाषा बहुत ही कर्ण प्रिय एवं रस भरी है। बुन्देली भाषा यहाँ के शिक्षित समाज से लेकर निरक्षर व्यक्ति तक गर्व से बोलते हैं। शहरों की अपेक्षा गाँवों में बुन्देली भाषा का मूल रूप सुरक्षित है। यह बोली आदरभाव विनम्रता, लालित्य, लोच आदि में ब्रज भाषा से भी आगे है। कर्णकटु शब्दों के आभाव के कारण ही यह बोलने, सुनने में मधुर है। बुन्देलखण्ड में 4-5 लाख बुन्देली भाषा भाषी है।

विभिन्न भाषाओं के सम्पर्क से तथा वर्णो के कोमलीकरण से विभिन्न स्थानों की बुन्देली के कारकों और विभक्तियों में परिवर्तन हुआ है। पर उसकी ऋतिमधुरता में कोई अन्तर नहीं आया है। इस भाषा के गद्य में लोककथाएँ, लोकोक्तियाँ या मुहावरे तथा पद्य में पवारैं सम्पन्न हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बुन्देलखण्ड के साहित्य, साहित्यकारों, कवियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। "बुन्देलखण्ड का साहित्य अपने पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों ही विभागों में प्राचीन काल से बढ़ा चढ़ा है। "आज भी यहाँ के साहित्य को समृद्ध करने बाले सुकवि और लेखक विद्यमान है। बुन्देलखण्ड के साहित्य को समझने से पूर्व हमें उसकी जातीय, सामाजिक, सामयिक परिस्थितियों तथा मानवीय क्रिया कलापों का तद्‌युगीन चेतना के आधार पर मूल्यांकन करना आवश्यक है। जिनसे बुन्देलखण्ड की जनता जनार्दन के विराट स्वरूप का बोध होता है।

प्राचीन से आज तक बुन्देलखण्ड असाधारण कवियों की लीला भूमि रही है। काव्य विधाओं में महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघु पद्य कथायें, मुक्तक, प्रबन्ध आदि भाव प्रवण रचनायें यहाँ के कृतिकारों की मन प्रवृत्ति की परिचायक हैं। बुन्देलखण्ड में काव्य की अपेक्षा गद्य का विकास विलम्ब से हुआ है। उन्नींसवी शताब्दी के अंतिम चरण में जब देश का शिक्षित समुदाय अंग्रेजी से प्रभावित हो रहा था, तब ऐसे समय में लोक संस्कृति के जागरण हेतु भारतेन्दु जी ने निबन्ध नाटकों, भाषणों के माध्यम से जागरण का संदेश दिया । आज साहित्यकारों ने गद्य की प्रत्येक विधा नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रिपोर्ताज, आलोचना, जीवनी साहित्य आदि को स्थिर ही नहीं किया वरन् जीवन उपयोगी साहित्य की शेष संम्भावनायें भी प्रवर्तित की। इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड का गद्य एवं पद्य सर्वाधिक प्रौढ़ और समृद्ध है और यहाँ का लोक जीवन भावात्मक एकता और लोक संस्कृति के समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

क. लोकगीतों की परिभाषा, विकासक्रम और तत्व

बुन्देली लोक गीतों में सौन्दर्य शास्त्र को समझने के लिये सर्वप्रथम लोकगीतों की परिभाषा विकासक्रम और तत्व का अध्ययन आवश्यक है--

क.1 परिभाषा

लोकगीत की उत्पत्ति विषयक मान्यताओं के आधार पर निर्धारित पाश्चात्य एवं भारतीय अध्येताओं की लोकगीत की निम्न परिभाषायें विचारणीय है :-

1. ग्रिम के मतानुसार- 'लोकगीत तो अपने आप बनते हैं।'

2. चेरी के अनुसार- 'आदिकालीन मानव का स्वतः स्फुर्त उल्लासमय संगीत लोकगीत है'।

3. 'लोक गीत अशिक्षित जन में अज्ञात रूप से निर्मित गेय गीत है जिनका प्रचलन शताब्दियों तक रहा'।

4. 'अज्ञात निर्माता द्वारा रचित मौखिक प्रक्रिया द्वारा प्रवाहमान संगीत लोकगीत है'।

5. 'लोकगीत ऐसे जन समूह की संगीतात्मक काव्य रचनायें हैं जिसके साहित्य का निर्माण लेखनी और छपाई से नहीं, अपितु मौखिक परम्परा से हुआ'।

6. 'लोकगीत न पुराना होता है और न नया । वह एक जंगली वृक्ष की तरह है जिसकी जड़े गहराई से दूर तक दबी पड़ी हैं । लेकिन जिसमें नित्य नवीन शाखायें, पल्लव, फूल लगते रहते हैं'।

7. 'लोकगीत के बीज जातीय संगीत में मिलते हैं'।

8. 'लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं। वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास-प्रश्वास हैं। सहजानंदन सच्चिदानंद में विलीन होने वाली आनंदमयी गुम्फायें है'। डा0 सदाशिवकृष्ण फड़के

9. 'लोकगीत पूर्ण रूप से अनुखुदी खानें हैं। उनमें से एक भी पंक्ति ऐसी नहीं, जो यदि प्रकाशित हो जाये तो भाषा विज्ञान की किसी न किसी समस्या के समाधान हेतु मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत न करें'।

10. 'गीत मानो कभी न सूखने वाले रस के सोते हैं।' वासुदेव शरण अग्रवाल

11. 'ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार है। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, द्वन्द नहीं केवल लय है । लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नायक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है, प्रकृति के वे ही गान ग्राम गीत है'।

12. 'ग्राम गीत संभवतः यह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है । गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है'। सुधांशु

13. 'वे गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हों अथवा जिसमें लोकमानससाभास भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा' । सत्येन्द्र

14. 'गीत लोकगीत भी होते हैं और साहित्यिक भी । लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी करते हैं। वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो भी निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामानता कुछ अधिक रहती है'। बाबू गुलाबराय

15. 'लोक जीवन में लोकगीतों की एक चिन्तन धारा अनादिकाल से चली आ रही है। मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन प्रधान होते हैं '। शांति अवस्थी

16. 'ग्राम गीत आर्येत्तर सभ्यता के वेद हैं' पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

17. 'आदिम मनुष्य हृदय के गानो ' का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की उसके रुदन की उसके समस्त सुख-दुःख की कहानी इसमें चित्रित है ।

उपयुक्त परिभाषाओं के विभिन्न मतों से जो निष्कर्ष निकलते हैं, उसकी परिणति इस प्रकार है -

1. लोकगीतों का रचनाकाल एवं रचियता अज्ञात होता है ।
2. लोकगीतों में भावाभिव्यक्ति लयात्मक होती है ।
3. लोकगीत मौखिक प्रक्रिया द्वारा प्रवाहमान होते हैं, अतः परिवर्तित एवं संशोधित होते रहते हैं ।
4. लोकगीतों में सामान्यीकरण की अद्‌भुत शक्ति होती हैं ।
5. लोकगीत अकृत्रिम होते हैं, इनमें विभिन्न प्रकृत भावनायें अभिव्यंजित होतीं हैं ।
6. लोकगीतों से सामूहिक गान द्वारा मनोरंजन होता है ।
7. लोकगीतों में प्राचीन संस्कृति चित्रांकित रहती है ।

• बुन्देलखण्डी लोकगीत- श्री शिव सहाय चतुर्वेदी, भूमिका लेखक- श्री वासुदेव शरण अग्रवाल

8. लोकगीतों की प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति प्रायः प्रत्येक कड़ी के बाद होती है ।
9. लोकगीत प्रायः अतुकान्त होते हैं ।
10. लोकगीतों में संगीतात्मकता होतीं है ।
11. लोकगीतों में मूल रूप का अभाव या परिवर्तन हो जाता है ।

उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर लोंकगीतों की एक सुनिश्चित परिभाषा निर्धारित की जा सकती है। मेरे दृष्टिकोण से लोकगीत की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है–

"लोकगीत अज्ञात रचियता द्वारा मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की लयात्मक सहज अभिव्यक्ति है। लोकगीतों में ऐसी लोक संस्कृति समाविष्ट है जो लिखित साहित्य में दुर्लभ है ।"

क.2 लोकगीतों का विकास क्रम

"लोक साहित्य को लोक का लोक के लिये लोक की सम्पत्ति कहा गया है। अतः लोक का साहित्य अतीत की गूंज के साथ वर्तमान की सशक्त आवाज भी है। यह एक ऐसी खान है जिसमें बहुरंगी संस्कृति की परतें अत्यन्त दयनीय दशा में दफन है।" लोक साहित्य के प्रमुख रूपों लोक कथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्तियों आदि में लोकगीत विशिष्ट और अभिन्न अंग है। लोक साहित्य की विधाओं में लोकगीत की सर्वाधिक समृद्धि के कारण व्यावहारिक जीवन में उनकी व्यापाकता, गेयता और स्त्रियों द्वारा संरक्षण ही प्रमुख है। लोक अंग्रेजी के "फोक" का पर्याय तथा समूचे जन साधारण के लिये प्रयुक्त शब्द है। गीत वह कृति है जो गेय हो । लोक गीत लोक जीवन की सहज गेय अभिव्यक्ति है।

लोकगीत किस युग में किन क्षणों में कैसे सृजित हुये इनका निर्माता कौन है? आदि विवादास्पद प्रश्न जिज्ञासुओं को निरन्तर अन्वेषण की ओर प्रेरित करते है। लोकगीतों को किसी युग विशेष की संकुचित सीमा में बांधना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। " वास्तव में लोकगीत उतना ही पुराना है जितना आदि मानव"। जब मानव आनन्दातिरेक से हृदयोद्वेलन की स्थिति में पहुँचता है तो गीत स्वतः निस्तृत होने लगते हैं। मानव शिक्षित हो या अशिक्षित उनकी हर्ष विषाद की भावावेशमयी तीव्रतम अवस्था का स्वरूप जब वाणी द्वारा मुखरित होने लगता है तभी गीतों की सहज उत्पत्ति होतीं है। गीत सृजन की यह सहज वृत्ति ही लोकगीतों का निर्माण करती है। लोकगीतों का जनसामान्य की अनुभूति से त्वरित तादात्म्य हो जाने से रचना लोक प्रिय होतीं जाती है। नाम, लिपिबद्ध न होने से निर्माता अज्ञात होता जाता है। इस तरह लोकगीत "व्यक्ति विशेष की रचना न होकर समूह की रचना हो जाती है। लोकगीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के विचार युक्ति संगत प्रतीत होते हैं--

" कहॉ से आते इतने गीत ? स्मरण विस्मरण की ऑख-मिचौनी से, कुछ अट्टहास से और कुछ उदास हृदय से । जीवन के खेल में ये गीत उगते है, कल्पना भी अपना काम करती हैं , रागवृत्ति भी भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी"

पण्डित राम नरेश त्रिपाठी विश्लेषण करते हैं कि-" जैसे कोई नदी किसी घोर अन्धकारमयी गुफा से बहकर आती है और किसी को उसके उद्गम का पता न हो ठीक यही दशा गीतों की है"। पाश्चात्य मतानुसार- लोकगीत मानव हृदय का उद्वेलित एवं स्वतः स्फूर्जित संगीत है। विलियम ग्रिम ने सामूहिक उत्पत्ति के सिद्धान्त द्वारा लोकगीतों की उत्पत्ति होना सिद्ध किया है"

लोकगीतों की उत्पत्ति विषयक विभिन्न मतों के विश्लेषण से सिद्ध होता है कि लोकगीतों की उत्पत्ति न तो सामूहिक रूप से होतीं है और न ही जाति विशेष द्वारा। इनका रचयिता एक व्यक्ति होता है। लोक गायकों द्वारा प्रक्षेपण के कारण सामूहिक रूप हो जाता है, मूल रूप लुप्त हो जाता है"।

लोकगीत लोक मानस की नैसर्गिक अभिव्यक्ति है। ये मौखिक परम्परा में प्रवाहमान होते है और कभी-कभी गायक भी अपना नाम प्रक्षेपित कर देता है, तब लोकगीत मूल रूप में सुरक्षित न रहकर संशोधित हो जाते हैं। इस मौखिक प्रक्रिया में ही गीत लोकप्रिय हो जाता है और गीतकार अज्ञात। इस तरह हमें ज्ञात नहीं हो पाता कि कब किसने रचना कर दी । फिर भी लोकगीत अनन्त व्यापी है, अमर है। उनमें अपनापन है। वे पराये नहीं लगते, क्योंकि उनमें हमारी अन्तस्थल की गहनतम अनुभूतियाँ अभिव्यंजित रहतीं हैं।

क.3. लोकगीतों में तत्व

लोकगीतों में निम्न तत्व समाहित है -

1. गेयता (क) गीत
   (ख) वाद्य समर्थित गीत
2. छन्द - टेक
3. रस

क.3.1. बुन्देली लोक साहित्य में गेयता

बुन्देली लोक साहित्य में गेयता को हम दो रूपों में देखते हैं - गीत के रूप में एवं वाद्य समर्थित गीत के रूप में ।

⇨**गीतः-** बुन्देली का समग्र साहित्य गीतात्मक है । इस जनपद की कृषक बालायें खेतों में काम करते समय, फसल बोते समय, काटते समय अपनी सुरीले कोकिल कण्ठ से परम्परागत लोक काव्य श्रोत प्रवाहित करती है । कृषक गण राग लमटेरा के बोलों के साथ बैलों को हॅाकते बुबाई करते जाते हैं । रात्रि में अलावों पर ढोला मारु, नल दमयंती, महाभारत, रामचरित्र तथा लोक कथायें भी गेय तथा गद्य के काव्यात्मक क्षेपकों में ही होतीं हैं । यद्यपि लोक साहित्य की विशालता को नकारा नहीं जा सकता, चाहे वह परंपरागत रूप से प्राप्त लोक साहित्य हो या लोकोक्तियाँ हो, चाहे लोक कथायें हो चाहे कहावतें हो, चाहे कृषि हो या सामाजिक अथवा धार्मिक काव्य हो । प्रत्येक क्षेत्र में गीतात्मकता अभिन्न रूपमें मिलेगी । इसका कारण यह है कि लोक काव्यकारों ने इसे मार्मिक तथा प्रभावशाली बनाने के लिये गेयता देकर मधुरता प्रदान कर दी हे तथा हृदयग्राही बना दिया है ।

उदाहरण के लिये - बारामासी गीत, बसंत गीत, अक्षय तृतिया (अखती) गीत, आषाड़ी देवता पूजन के गीत, सावन के राछरे, भादों के मेला जल बिहार, जन्माष्टमी गीत, दुर्गा भजन, कार्तिक, होली गीत आदि सब में अनहोनी गेयता, गोर्वधन पूजा, दीपावली, चाचर आदि के गीत बड़े लयात्मक होते है। इन बुन्देली गीतों की गेयता पर मन मयूर मुग्ध हो जाता है और उन्मुक्त होकर नृत्य करने लगता है ।

उदाहरणार्थ - ग्रामीण बालायें श्रृंगार किये हुये मेला जाती है तथा झूम झूम कर गाती हैं-

खालो गुइयॉ पान हरीरे वसना के
हरीरे वसना के ,हरीरे वसना के
खालो गुइयॉ पान हरीरे वसना के

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मोरे महाराज दमक रई बिंदिया,
दमक रई विंदिया, दमक रई विंदिया,
मोरे महाराज दमक रई बिंदिया ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कार्तिक गीतों में जब सखियॉ गातीं हैं -

बिहारी लाल जमुना में कूद परे हो

तथा

आ जाऊंगी बड़े भोर
दहीरा लै के आ जांऊगी बड़े भोर ।

अतः बुन्देली के राछरे आदि गीतों को सुनकर ब्रह्ममानंद की अनुभूति होती है। यह इस लोक काव्य की गेयता के कारण ही है । गेयता लोक काव्य का प्राण है। लयात्मकता उसके जीवन की गति है । बुन्देली साहित्य में कृषि काव्य, घाघ भड्डरी की उक्तियों का भी बड़ा महत्व है। वे भी काव्यात्मक हैं। यथा-बैल की पहचान देखिये -

हिन्न पेटिया लगे मुतान ,
जे काटे घुरवन के कान ।
बैल देखो चैंरिया
उडेल दियो थैलिया ।
नीला कंधा बैंगन खुरा ,
कभी न निकले कंता बुरा ।।

यहॉ तक कि बालक खेलों में भी परम्परागत रूप से गेय काव्य प्रस्तुत करते हैं, और इस काव्य को वे स्वयं रचते जाते हैं । जैसे- बालकों के खेल काव्य की तुकबन्दियॉ देखिये -

पानी में स्नान करते समय -
प्रश्न - इत्ती ककरी कीनें खाई ?
उत्तर - मैनें ।
प्रश्न - किये लगाई
उत्तर - किसी का नाम - - - - खां ।
- - - - खां बड़े बड़े इल्ला लगे ।।

यह संवादात्मक चम्पू काव्य भी गेय है -

मगर के ताल में लोरुं

इसी प्रकार बालक कहते हैं कि -

हलकैंया के दो गैयॉ ,
जिनसे दूघ कड़त नैयॉ ।।

कबड्डी में -

कबड्डी तीन तारा ,

बुड्ढे ने ज्यान मारा ।
बुड्ढे की टूटी लाठी ,
लगा दे चूना माटी ।।
❖ ❖ ❖ ❖
अटकन चटकन धाई चटोकन ,
बाबा लाओ आवरी एक आवरी टूट गई --
सास बहु रूठ गई ।

आदि सैकड़ों गीत है जो परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं और भाव उर्मियों से आंदोलित हो नये बनते मिटते चले जाते हैं । टेसू गीत नौरता गीत आदि इसी लोक काव्य में गेयता का गुण है, इस गेयता से माधुर्य तथा उल्लास उत्पन्न होता है और लोक गीतों का प्रभाव मानव जीवन पर स्थाई रूप में पड़ता है ।

⇨ **वाद्य समर्थित गीतः-** बुन्देली का लोक काव्य गाने के लिये गायक गण उसे सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिये लय, ताल, स्वर के साथ अनेक वाद्य यन्त्रों का प्रयोग करते हैं। जिनमें प्रमुख अग्रलिखित है -

1. **लकड़ियॉं** - दो छोटी-छोटी चपटी लकड़ियॉं जिन्हें अंगुलियों में लगाकर दूसरे हाथ के सहारे से बजाते हैं । अधिकतर भिखारी सरमन की कथा को गाने में प्रयोग करते हैं ।

2- सारंगी (रोकड़िया)
3- ढोलक
4- झांझ
5- मंजीरा
6- कसावरी
7- मृदंग
8- झींका
9- करतालें
10-चमीटा
11- लोटा
12- नगड़िया
13- नक्काड़ा
14- पपीरा
15- ढोल
16- हरमौनियम
17- घुंघरु (चौरासी)
18- झेला
19- रमतूला
20- टुनटुना
21- बांसुरी
22- ढपली
23- अलगोजा
24- बीनबाजा(तुमड़ीका)
25- कार्नेन्ट (किलांट)
26- चुटकी, तालियॉं तथा मुंह से स्वर निकालना
27-गागर

लोक साहित्य के काव्य की गेयता में प्रभाव उत्पन्न करने हेतु सामान्यतः इन्हीं वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है । इनमें विशेष वाद्य यंत्र विशेष प्रकार के गीतों में प्रयोग किये जाते हैं। जैसे - कछया भजनों में खंजड़ी, ढिमरया राग में रांकड़िया, मृदंग, लोटा ,ढोलक आदि, फाग राग में झींका, झांझ, नगड़िया, ढोलक आदि ।

इस प्रकार जनपदों में जातीय राग रागनियों में भी प्रथक-प्रथक वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता है तथा इन राग रागनियों में संबद्ध वाद्य यंत्र भी प्रथक-प्रथक होते है। इन वाद्य यंत्रों के प्रयोग से गीतों में अलौकिक आनन्दानुभूति होतीं है। यथावसर इन लोकगीतों को गाया जाता है । वाद्ययंत्रों का स्थान

बड़ा महत्वपूर्ण है । यद्यपि रमतूला में कोई खास लय स्वर नहीं है परन्तु लोक जगत के प्रत्येक कार्य में शुभ माना जाता है। वाद्य समर्थित गीतों का एक उदाहरण --

⇨छन्द :-

शंकर के उर में राम, राम के उर में,
शंकर ध्यान धरें ।
शंकर मन में सियापत जपत ,
सतीपत को भगवान ।
शंकर राम अनाद पुरुष हैं,
इनका है कुछ आद ना अंत
एक ब्रह्म है ऐ दोउ कहत
सकल ज्ञानी बुध बंत
नई माने कुछ वेद भेद
कथ कहें युगल पूरन भगवंत
एक शक्ति दोनों की एक मत
सदा एक ही रहें दोउ ये ,
हैं एक रस प्रलय परंत
विलग विलग कहते नादान
शंकर मन में सियापत जपत
सतीपत को भगवान ।

क.3.2. बुन्देली काव्य में छन्दः-

बुन्देली लोक काव्य में मिश्रित छन्दों का समावेश है। कुछ छन्द पिंगल शास्त्र से प्रमाणित है। कुछ छन्द तुकबन्दी लिये हुये तथा यति, गति, लय तथा तुकमय रूप में ललित और लावण्यता लिये हैं । प्रमुखता बुन्देली लोक साहित्य में निम्नलिखित छंद प्रयुक्त होते हैं -

1- दोहा	11- टिप्पे	21- गोटे
2- साखी	12- विलवाई	22- कजरी
3- पद	13- आल्हा	23- दिनरी
4 -ख्याल	14- दादरा	24- छन्द
5- लावनी	15- सोहर	25- रसिया
6- शैर	16- गारी	26- लांगुरिया
7- फागें	17- होली	27- ठुमरी
8- कहरवा	18- भजन	28- रमटेरा
9- रामा	19- कार्तिक	29- अछरी
10- राछरे	20- रोला	30- चोकड़ियां

उक्त प्रमुख छन्दों के अतिरिक्त अनेक गौण छन्द भी है। इन छन्दों की बहुत सी शाखायें हैं जिनके अनेक भेद विभेद भी है जैसे- ख्याल, पद, फागें गारी अनेकों भेदों वालीं होतीं हैं । परन्तु यह निश्चित है कि साहित्यिक परम्परा में छन्दों की दृष्टि से बुन्देली का लोक साहित्य पर्याप्त समृद्ध हैं। इन प्रमुख छन्दों के उदाहरण देखिये जो इस जनपद में प्रमुख लोक काव्य की जान है -

⇨दोहाः-

समय समय की बात है - 13 मात्रा
समय होत बलवान - 11 मात्रा
भीलन लूटी गोपिका - 13 मात्रा
बेई अर्जुन बेई बान - 11 मात्रा

⇨साखीः- यह आल्हा छंद की तरह होता है। गाने में कुछ शब्दों को सम्पुटित कर देने से दूसरी दूसरी लय हो जाती है जैसे -

नाजन की बाडी काय तुमने लई ,
काय तुमने लई - ओ भइया
रुपयन के लये ब्याज
भइया कनाये अब ना देओ
तुम रख लेव हमारी लाज ।

⇨ ख़याल :-

बिन काज आज महाराज लाज गयी मोरी ,
लाज गयी मोरी
दुख हरो द्वारका नाथ शरण मैं तोरी
शरण मैं तोरी ।

⇨फागें:- फागों के अनेक रूप होते हैं जैसे - छंदयाऊ, चौकड़िया, लतापक्षी, डिडखिरयाऊ, गतागत आदि अनेक प्रकार की है। बुन्देलखण्ड का यह छन्द बहुत विख्यात तथा मिश्रित छंद है। एक चौकड़िया देखिये -

पैला गुरू गनपत को गाऊं चरनन शीष नवाऊं
आरत करों मोद में आके, मोदक पेल खिलाऊं
धूप कपूर चढांऊ कर से, कर जोरे हरयाऊं
दयाराम जै विघन विनाशन, पैलां तुमें मनाऊं ।

⇨बिलवाईः-

दिन बूड़े से भरा दई लम्बी मांग किसान दद्‌दा
बेरा तो भई घर जावे की

ये अरे हो, हो किसान दद्दा बेरा तो भई घरे जावे की।
ये अरे हां हो मोड़ी मोड़ा तो बिलखत हुइयें द्वार हो
किसान दद्दा - बेरा तो भई घर जावे की ।

कार्तिक गीत तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं जिन्हें कार्तिक के महीने में गोपियों का रूप धारण किये हुये स्त्रियां अपनी कोकिल कंठी ध्वनि में गातीं हैं । जैसे -

तुम घनश्याम - गहौं न मोरी बइंया ,
गहौ न मोरी बइंया - तुम घनश्याम ।

इसी प्रकार -

" जिनके हम दासी बेई ना मिले "

इस प्रकार कार्तिक गीत अनेकों लयों से युक्त होते हैं और कृष्ण काव्य को अधिक सजीव और मधुर बनायें हुये हैं । विषय विस्तार के भय से यहॉ छन्दों का नामकरण करना ही पर्याप्त माना गया है और प्रमुख लोक छन्दों की बानगी उक्त रूप में प्रस्तुत है ।

क.3.3. रस

जब हम समग्र रूप से बुन्देली लोक साहित्य को रसों की कसौटी पर कसते हैं तो हमें नव रस की तरंगों के ज्वार भाटों का साम्राज्य दिखाई देता है । राजा महाराजाओं के यश वर्णन में रासो काव्य को लोक कवियों ने अनेक लोक छन्दों में प्रस्तुत किया है । और उसमें वीर रस का सुन्दर निरुपण है । यथा - आल्हा खण्ड के प्रसिद्ध पात्र आल्हा, ऊदल, मलखान, इंदल, पृथ्वीराजचौहान, परमाल, ढेवा, मछलारानी, फुलवारानी आदि पात्रों की गाथायें वीर रस से ओत प्रोत हैं । *उदाहरण* स्वरुप वीर रस पूर्ण लोक काव्य बानगी प्रस्तुत है -

दोहा - चारउ ओरन दल परे, घेरो सिरसा कोट ,
गज मोतिन कयै भूप सब ,चड़े बांद के गोट।
शेर - बैरिन जा आंख कंत दाई मोरी फरकती
माथे से गिरी बिंदिया सिर सारी सरकती ।.
टेक - आया पृथ्वीराज नृप चढ़के कंत जियाजो धड़के
छन्द - देखो तोपन की धंदकारन, लागे हथियान सो चिंगारन
सुन लो टापन की ठनकारन, घोड़ा हीसें ।
उठान -बारई से कोउ भीतरों आ ना पावे गडके
चारउ कोंद बंदे हैं नाके बाहर पांय न कड़के

तात्पर्य यह है कि लोक मानस में वीर रस का भाव राष्ट्रीय प्रेम जागृत कराने में ऐसी पराक्रम व साहस पूर्ण कहानियों का अत्यधिक महत्व है। अपनी आन बान पर मिटना भारतीय जन के लिये एक सरल खेल है । लोक काव्य में शान्त रस की प्रधानता है। अधिंकाश कवियों ने किसी न किसी रूप में अपने काव्य में भक्ति भाव को स्थान दिया है । इसका प्रधान कारण यह है कि हमारी संस्कृति में धार्मिक भावनाओं की प्रचुरता है । बुन्देली लोक काव्य में श्रृंगार रस का भी अभाव नहीं है। इस श्रृंगार वर्णन में नायिका वर्णन, नख, शिख वर्णन, प्रेम लीलाओं का मर्मस्पर्शी श्रृंगारिक प्रसंगों का बाहुल्य है । इस श्रृंगार वर्णन में संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों की पर्याप्त विवेचना है। लोक कवि श्री भोगीलाल जी द्वारा रचित ख्याल का उदाहरण प्रस्तुत है -

सोउत में सेज पै गिर गई आज बिन्दुलिया ,
कोउ देखी होय तो हम खां बता दो हम खां बता दो
नातर कटा दो हुलिया कटा दो हुलिया
सोउत में सेज पै गिर गई आज बिन्दुलिया ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
(मन तरंग सागर' भोगीलाल सेठ)

कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा बुन्देली लोक काव्य श्रृंगार, वीर शांत रसों की प्रधानता लिये हुये समस्त रसों का परिपाक करने वाला है । इस ओर अलंकारों की दृष्टि से यह साहित्य अपने में बहुत ही उत्कृष्ट है । लोक साहित्य का इसी कारण से जन सामान्य में आदर तथा प्रचार है ।

(ख) भाषागीत और वाद्य तथा नाट्य

प्रत्येक बोली अथवा भाषा में नित्य प्रति कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। यही परिवर्तन उस भाषा का विकास या जीवन भी कहें तो अनुचित न होगा । भाषा का यह परिवर्तन एक ग्राम से दूसरे ग्राम पहुँचने पर ही बदल जाता है। अतः बुन्देली में भी कहावत कही गयी है , यथा -

चार कोस पै पानी बदले ,
आठ कौस पै बानी ।।

भाषाओं में धीरे धीरे परिवर्तन होता रहता है । और एक समय ऐसा आता है कि एक पीढ़ी की कही या लिखी बात दूसरी पीढ़ी को समझ नहीं आती इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जागनिक कवि (सन 1165 ई0) कृत 'आल्हा खण्ड' है ।

ख.1. भाषागीत

लोकभाषा के रूप में बुन्देली का विकास गद्य व पद्य में समान रूप से हुआ । पद्य के रूप में लोकगीतों के क्षेत्र में विकास हुआ व गद्य में लोकगाथा, लोककथायें, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, बुझौबलों आदि के रूप में विकास हुआ ।

डा0 कृष्णलाल 'हंस' ने बुन्देली भाषा के विकास को तीन रूपों में विभक्त किया है । यथा -

1- लोक भाषा
2- राज भाषा
3- काव्य भाषा

काव्य भाषा का विस्तृत अध्ययन अध्याय-तीन में किया गया है। यहाँ केवल लोक भाषा व राज भाषा का ही अध्ययन किया गया हैं।

- बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन-डा0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल पृष्ठ सं. 9
- बुन्देली लोक साहित्य- राम स्वरूप श्रीवास्तव स्नेही पृष्ठ सं. 20

ख.1.1. लोकभाषा

बुन्देली भाषा का लोकगीतों के रूप में काफी विकास हुआ लोकगीतों के रूप में हमारी प्राचीन संस्कृति व सभ्यता आज भी बहुत कुछ उसी रूप में हमें प्राप्त होतीं है । लोकगीतों में यहाँ के तीज, त्यौहार, क्रिया कलाप सभी का अपने स्वाभाविक रूप में वर्णन मिलता है । इन लोकगीतों की परम्परा अत्यंत प्राचीन है । मानाव ने जब से बोलना सीखा तभी से अपने मनोभावों को गीतों के रूप में व्यक्त किया, गेयशैली में होने के कारण वे धरोहर के रूप में एक दूसरे के पास सुरक्षित रहे व आज भी कुछ परिवर्तन के साथ वे ही भाव प्राप्त होते हैं। इन बुन्देली लोकगीतों का वर्गीकरण हम निम्नप्रकार कर सकते हैं -

जैसा कि कृष्णानंद गुप्त ने लोकगीतों को उनके विषय व गाने के अवसरों की दृष्टि से वर्गीकरण किया है :-

1. ऋतुगीत
2. श्रमगीत
3. त्यौहारगीत
4. संस्कारगीत
5. यात्रागीत
6. बालगीत
7. विविध गीत

उक्त वर्गीकरण का विस्तृत वर्णन अध्याय एक में किया गया है ।

⇨ **लोक कथायें:-** हिन्दी की अन्य बोलियों की भाँति बुन्देली मे भी लोककथाओं का अक्षुण भंडार भरा पड़ा है। इनमें अधिकांश कथायें सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय प्राप्त होतीं हैं । बुन्देली भूमि प्रारंभ से ही वीर पुरुषों की क्रीड़ा स्थली रही है, अतः वीर चरित्र विषयक कथायें लोग बड़े चाव से कहते व सुनते हैं । जन साधारण धर्म में आस्था रखने वाला है,अतः व्रत एवं त्यौहार से संबंधित कथायें भी अत्यधिक प्रचलित है। इस संबंध में प्रत्येक घर को लोक साहित्य का भण्डार कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त पशु पक्षियों से संबंधित कथायें, जादू की कहानियाँ, परियों व अप्सराओं की कहानियाँ, राजा रानी की व राजकुमारों की कहानियाँ जिसे श्रृंगार एवं प्रेम विषयक कथायें भी कह सकते हैं , किन्तु बुन्देली कथाओं के श्रृंगार में अश्लीलता का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त अन्ध विश्वास से पूर्ण कथायें भी प्राप्त होतीं है ।

⇨ **लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे:-** बुन्देली लोक साहित्य में कहावतों का भी अपार भण्डार प्राप्त होता है। इनमें से कुछ लोकोक्तियों एवं मुहावरे कुछ परिवर्तन के साथ हिन्दी व उसकी अन्य बोलियों में भी प्राप्त होते हे। सामान्य रूप से इन्हें दो भागों में भी विभक्त किया जा सकता है ।

1- सामान्य , 2- स्थानीय

सामान्य लोकोक्तियाँ वह हैं जो कुछ परिवर्तन के साथ देश-विदेश में प्रयोग की जाती है यथा - बुन्देली की कहावत -"उड़ौ चून पुरखन के गॉव" का अंग्रेजी भाषा में भी रूप देखने को मिलता है। जिसका अर्थ है खोई हुई वस्तु ईश्वर को अर्पित । इसी तरह से बुन्देली कहावतें "घर में नइंया दाने, अम्मा चली भुनाने", हाथ न मुठी, खुरखुरा उठी ।

हिन्दी की कहावतें - "एक अनार सौ बीमार" से अधिक सरस व सरल है। इसी तरह कुछ लोकोक्तियॉ स्वास्थ्य संबंधी है तो कोई कृषि संबंधी । उदाहरण के रूप में कुछ लोकोक्तियॉ प्रस्तुत है -

- हर्र बहेरों आंवरों, घी शक्कर में खाय ।
  हाथी दावे बगल में सात कौस लै जाय ।।
- निते खेती दूसरे गाय, जौ न देखे ताकी जाय
- खेती करै रात घर सौवे, काटे चोर मूड घर रोवे ।
- उल्टों गिरगिट ऊपर चढ़े, वर्षा सौ थल बूड़ो परै ।

➪**पहेली (बुझौबल):-** बुन्देली भाषा में बुझौबल (पहेली) का भी अभाव नहीं हैं। कुछ तो अनुवादित बुझौबल है व बुन्देली के अपने मौलिक बुझौबल की भी न्यूनता नहीं है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1- एक रूप ऐसौ दरसानौ, तरें श्वेत ऊपर हरयानौ ।। (मूली)
2- घाम लगे सूखे नहीं, छांह लगे मुरझाय ,
   कहो कौन सी बस्तु है, पवन लगे मर जाये ।। (पसीना)

ख.1.2. राजभाषा

डा0 कृष्णलाल हंस का कथन है कि हिन्दी की बोलियों में बुन्देली ही एक ऐसी बोली है जिसे लगातार चार सौ वर्षो तक राज भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। जब से बुन्देलखण्ड बना और इस भूभाग पर बुन्देलों का शासन आरंभ हुआ बुन्देली ही इनकी राजभाषा रही । बुन्देलखण्ड के राजाओं का राज-काज, हिसाब-किताब व परम्परा का पत्र व्यवहार सभी बुन्देली में होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। डा0 हंस जी को जो भी सामग्री प्राप्त हुई उसमें सनदें, इकरारनामें, ताम्रपत्र, शिलालेख, राजकीय एवं व्यक्तिगत पत्र व्यवहार से संबंधित पत्र आदि सभी कुछ उपलब्ध सामाग्री का रूप निम्न प्रकार है

➪**सनद:-** प्राचीन उपलब्ध सामग्री में सनद सबसे प्राचीन है। यह दतिया राज्य के प्रथम शासक महाराजा भगवान रायजू प्रथम देव उनके राज गुरु गुसांई जगजीवनदास जी को दी गयी थी। इस सनद के द्वारा उन्हें दो गॉव इमीलिया और बामौर गुरूदक्षिणा में दिये गये थे। सनद श्री गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल जी दतिया के पास सुरक्षित है । सनद इस प्रकार है :-

" प0 श्री गुसाई जगजीवन दास जू को दिवान भगवान राय जू देव आपर गुरू दछिना दाषल पादरर गौर दियो तुमको परगने डमरौन के मौजौ हिमलिया मौजो बगमौरा रकम हुबूब माफ परवानगी रौहबरौ मुजाहिन ना हू है बरकरारि बैदखल आशाढ़ बदि संवत 1635 मुक्त जैरोन लिषत प्र0 मषन "

➪**ताम्पत्र:-** एक ताम्रपत्र जो महाराजा छत्रसाल द्वारा गुसाई धरनीधर को दिया गया है । इसमें महाराजा छत्रसाल के द्वारा उन्हें पड़वारी परगने का सहतरी मौजा देने का उल्लेख किया गया है । यह ताम्रपत्र कुंजविहारी लाल गोस्वामी चरखारी के पास सुरक्षित है। ताम्रपत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है-

सील : श्री महाराजधिराज श्रीमहाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव ये ते पं0 श्री गुसांई धरनीधर जू कौ ग्राम कस्नापने कर दयौ पादरष परगने पडवारी के मौजे सतहरी महारने सुपा सो बरकरार बेदबल पावै वापे जाइ सर्व सुधा माधव दिन संवत् 1764 ।

⇨**शिलालेख** :- बुन्देलखण्ड के कुछ स्थानों में बुन्देला शासनकाल के कुछ शिलालेख प्राप्त हुए है । जो बुन्देली के राजभाषा होने के कारण इसी भाषा में लिखे गए हैं। प्रसिद्ध पुरातत्ववेता स्वर्गीय राजबहादुर डा0 हीरालाल ने अपनी पुस्तक में अनेक शिलालेखों तथा सती स्तंभ लेखों का परिचय दिया है । इसमें एक शिलालेख बुन्देलखण्ड से भी संबन्धित है। यह सागर के मिशन कम्पाउण्ड में प्राप्त हुआ था। यह नागपुर के म्युजियम में अभी भी सुरक्षित है । इसकी लंबाई साढ़े सत्रह इंच और चौड़ाई पौने सत्रह इंच है ।

ख.2 वाद्य तथा नाट्यः-

भरत मुनि ने कहा कि - "मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति जन्मजात होतीं है । अनुकरण ही नाट्य है। जैसे शिशु बड़ा होता है, अपनी बाल जीवन की लीलाओं में लोक नाट्य करता दिखाई देता है। यह नाट्य वह अपने संस्कारों के अनुसार करता है । लड़कियॉं भी इसी के अनुसार कभी अपने घरगूला बनातीं हैं। रसोई घर बनातीं है, गुड़िया बनाती हैं, उनकी शादी का नाट्य करती हैं, सास बहू की नकल करतीं हैं। बुन्देली लोक नाट्य का यह श्री गणेश है जो पारिवारिक जीवन के प्रारम्भ में दिखाई देता है इस लोक नाट्य के उद्गम में एक बात विशेष महत्व की है कि यह नाट्य भी काव्यात्मकता को साथ लिये चला आता है । बालक बालिकाओं की इस नाट्य शैली में बडी मनोरम एवं चमत्कारिक तुकबंदी, कवितायें मिलती हैं, जिन्हें बालकवि तथा कवियित्रियॉं ही बनाती हैं । उदहारणर्थ -चोर ढूड़ने के लिये -

अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो,
अस्सी नब्बे पूरे सौ
सौ में लागा धागा
चोर निकल के भागा ।

एक बालक दूसरे बालक पर, तीसरे पर क्रमानुसार उंगलियॉं रखता है तथा अंतिम टूट जिस पर पड़े उसे चोर माना जाता है । यह अभिनय हैं। इसी प्रकार से -

ईक सौंक सिक्का
चिलम तम्माखू हुक्का
साहब चोर उचक्का ।

इस प्रकार अभिनयात्मक काव्योंक्तियॉं लोक जीवन के लोकनाट्य में भरी पड़ी हैं, जिन्हें समयानुसार बालक या बालिकायें स्वयं गढ़ लेते हैं। कुछ परम्परागत है जैसे- क्रीड़ा का नाट्य - प्रारंभ दो बालकों से -

हिली मिली दो बालें आईं,
प्र0 का भर ल्याई ?
उ0 गुड़ चना

प्र0 का दओ भाव
उ0 टके पसेरी
प्र0 लाव सार
उ0 कोउ ले लो राम, कोउ ले लो लछमन ।

तात्पर्य यह है यह लोक नाट्य ग्राम्य और जनपदीय संस्कृति में प्रथक-प्रथक होते हैं । जैसे - बुन्देलखण्ड में टेसू राजा, नारे सुआटा, मामुलिया, दान लीला, गौचारण (ग्वाल) आदि नाट्य परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं । बच्चों से लेकर युवा वृद्ध सभी के प्रथक-प्रथक लोकगीत हैं । हमारे बुन्देलखण्ड में लोक नाट्य के अनेक स्वरूप प्रचलित हैं जिनमें प्रमुखतः निम्नलिखित हैं -

ख.2.1. बाबा नाट्य

इसी प्रकार जनपद में बुन्देली लोकनाट्य का अत्यंत आनन्द जब लड़के की बारात जाती है तब "बाबा" (जुगिया) नृत्य में आता है। एक दंतकथा के अनुसार यह बाबा किसी कन्या की भांवरें नहीं होने देता था और जबरन अपहरण कर उसे उड़ा ले जाता था। औरतों ने इस समस्या का निराकरण सोचा और उन्होंने इस बाबा (जुगिया) की शादी रचाने का स्वांग (नाट्य) रचा और उसे यहाँ रोक लिया । जिस दिन भांवरे होतीं है बाबा नृत्य उसी दिन या रात में किया जाता है। एक स्त्री दुल्हिन तथा दूसरी दाढ़ी मूंछ बाला बाबा (जुगिया) बनती है तथा श्रृंगारिक गीतों सहित विवाह अभिनय सम्पन्न होता है। बाबा प्रायः पड़ौस में तथा कुटुंबी परिवारों में द्वार द्वार ले जाया जाता है । उसका टीका होता है। नारियाँ श्रृंगारिक गीतों के साथ अश्लील गीत भी गातीं हैं। अपना लोक नाट्य प्रस्तुत करतीं हैं। तथा व्याह के कार्यक्रम सम्पन्न करके अपना समय व्यतीत करतीं हैं।

ख.2.2. स्वांग

"इसमें जिन विषयों को उठाया जाता है वे सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों से सम्बद्ध होते हैं। स्वांग का विषय ज्ञात से ज्ञात की ओर उन्मुख होता है। स्वांग के विषय विसंगतिपूर्ण, धर्मनेता, पाखंडी, कंजूस सेठ, सामाजिक रूढ़ियों, असामाजिक वृत्तियाँ, अंध विश्वास, असंस्कारी मानव आदि होते हैं।" डा0 वलभद्र तिवारी ।

"प्राचीनतम होते हुए भी उसमें बिल्कुल नई आधुनिकता से जुड़ने की विलक्षण क्षमता है। और अभिनय के पुराने मूल तत्व अनुकृति को आज तक पकड़े हुए भी वह व्यंजना और अनेकार्थता क्रि अपार क्षमता में छिपाये है।" डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त

नकल स्वांग की मूल भावना है । यह एकांकी लोक भाषा के लोकनाटक (प्रहसन) कहे जा सकते हैं।

ख.2.3. रावला

एक प्रकार का लोक नाट्य है। इसमें छोटे-छोटे प्रहसन 4-5 व्यक्तियों की सहायता से होते हैं। झीका, मृदंग, कसावरी, रांकड़िया, मंजीरा आदि इसके वाद्य यंत्र सहायक है। इसमें नाट्य में स्वांग नाटक करने वाले प्रायः अशिक्षित या अल्प शिक्षित होते हैं। एक पुरूष स्त्री वेष में लोक नृत्य भी करता है तथा स्त्री पात्र का अभिनय भी करके दो पात्रों का कार्य करता है। एक विदूषक भी होता है। आज से लगभग 30-40 वर्ष पूर्व इसकी अधिक प्रथा थी।

ख.2.4. नौटंकी

नौटंकी (संगीत मंडली) बुन्देलखण्ड का एक प्रमुख नाट्य है। पं0 नथुराम शर्मा की नौटंकी बुन्देलखण्ड में पर्याप्त ख्याति प्राप्त थी। इसमें नक्काड़ा, ढोलक, हरमौनियम, नगड़िया, मंजीरा आदि : प्रमुख वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है। सत्य हरिशचंद्र, सुल्ताना, मूरध्वज, सत्यवान, सावित्री, हरदौल चरित्र, अमर सिंह राठौर आदि यहॉं के नौटंकी के प्रमुख खेल रहे हैं। पात्रों को चौबीला, छंद, दोहा, संवाद आदि के माध्यम से नाट्य सिखाया जाता है। विदूषक नृत्यकार स्त्री तथा पुरूष दोनों होते हैं।

ख.2.5. रामलीला

राम चरित्र को अभिनीत करना राम लीला है। इसमें ढोलक, हारमौनियम, मंजीरा आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है। 20-25 व्यक्ति अधिकतम अच्छी रामलीला मंडली चलाते हैं। एक व्यास का कार्य करते हैं। दोहा चौपाइयों को लय से साज बाज में पढ़ते हैं इसमें भी नृत्य गान विदूषक भी होता है।

ख.2.6. ढोला

ढोला मारू की कथा का भी नाट्य बुन्देलखण्ड में पर्याप्त प्रचलित है। ढोलक, मंजीरा, झीका आदि के साथ राजा नल की कथा को गायक प्रस्तुत करते हैं तथा नाट्य अभिनय भी करते हैं।

ख.2.7. रहस

कृष्ण चरित्र की यह लीला है। गोपियां कृष्ण के रूप में पात्र सजकर कृष्ण लीलाओं का अत्यधिक सरस ढंग से अभिनय करतीं हैं।

ख.2.8. दान लील

यह भी एक प्रकार का नाट्य है। कार्तिक व्रत स्नान करने वाली गोपियॉं तथा दही का दान मांगने वाले ग्वाल कृष्ण के रूप में अत्यधिक सुन्दर संवाद प्रस्तुत करते हैं।

ख.2.9. बहुरूपिया

यह भी बहुत सुन्दर नाट्य बहुरूपिया जैसा कि इसका नाम है। एक व्यक्ति अनेक रूपों में अपने को बना कर प्रदर्शित करता है। अंग्रेजी में इसे (मोनोप्ले) कहतें हैं। कभी पुलिस, कभी सेठ, कभी देवी आदि के रूपों में सुन्दर नाट्य प्रस्तुत करते है।

ख.2.10. टेसू नाट्य

वालकों की मंडली टेसू राजा को पलाश के पुष्पों से सजाकर गीत गाते हुए दान मांगते हैं।

(ग) परम्परा, कला और संस्कृति

ग.1. परम्परा

भारतीय इतिहास में बुन्देलखण्ड के भू-भाग को भारतवर्ष का हृदय स्थल माना गया है। भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन करने पर भी भारत की वही स्थिति प्राप्त होती है। अपने प्राकृतिक साधनों शौर्य तथा साहित्यिक गरिमा के बल पर यह जनपद युग परम्परा से प्रशंसित रहा है । वैदिक काल से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम की संचालिका महारानी झाँसी वीरांगना लक्ष्मीबाई की साहित्यिक रचनाओं से देश-विदेश के साहित्य प्रेमी परिचित है। विगत शताब्दी में राष्ट्र व विश्व को चेतना देने वाले कार्यो में इस जनपद के साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

बुन्देली लोक परम्परा का परिचय प्राप्त करने हेतु बुण्देलखंड का सामाजिक जीवन जाति, भाषा, धर्म, त्यौहार, पर्व मेले, सामाजिक रीतियों के अध्ययन की आवश्यकता है । जिसका वर्णन अध्याय एक व चार में किया गया है।

ग.2. कला

अनेक लोक कलायें अपना अस्तित्व लोक काव्य के कारण ही बनायें हुये हैं । जैसे- लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक गायन कला आदि का सुन्दर समन्वय लोक काव्य से ही एक के आभाव में दूसरे का अस्तित्व नगण्य है । लोकगीतों के गायक चलने के साथ साथ कलाओं का प्रसारण व उनका परम्परागत रूप चलता जाता है । उदाहरणार्थ- चौक पूरना, गुदना गुदवाना, जौरतें लिखना, सुआटा श्रृंगार, गौरी पूजन (तीजा) व्रत आदि अवसरों पर लोक कलाओं का लोक काव्य के साथ समन्वय दिखाई देता है ।

विवाह आदि के शुभ अवसरों पर मैर की पूजा मैर देवता को चित्रांकन, गोबर गनेश की प्रतिमा बनाना, संक्रान्ति के अवसर पर हाथी घोड़े (घुल्ला) घुड़ला आदिके मिट्टी व मिठाई के बने आकार, अक्षय तृतीया के अवसर पर चक्की व पुतले पुतलियों की मूर्तियाँ आदि चित्र तथा मूर्ति कलाओं के जनक यही लोक काव्य हैं । पिसे हुये रंगों, घुले हुये रंगों, आटा, हल्दी आदि पदार्थो का प्रयोग इस लोक चित्रकारी में होता है । लोक जीवन का सौन्दर्य इस सांस्कृतिक कला कृतियों से द्विगुणित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि लोक काव्य में ही इन कलाओं के रक्षक की क्षमता स्वमेव है । एक के प्रयोग में दूसरे का सम्मान स्वतः निहित है। इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में लोक काव्य के माध्यम से यह कलायें युगों से चली आ रही हैं तथा चलती रहेंगी । यहाँ पर कुछ प्रमुख कलओं का वर्णन इस प्रक्रार हे -

ग.2.1. बुन्देली नृत्य कला

संगीत तथा नृत्य जीवन की विकसित आनन्दानुभूति के आदर्श अंग है ।'मानव प्राचीन काल से संगीत व नृत्य जैसे आमोद-प्रमोद के साधनों द्वारा लोक आनंद प्राप्त करता आ रहा हैं । समय-समय पर होने वाले इन लोक नृत्यों के संबंध में बुन्देलखण्डी लोकनृत्य विशेषज्ञ श्री मोहनलाल श्रीवास्तव का मत है कि -" लोकनृत्य लोककला का एक आदर्श अंग है।शब्द के

माध्यम से जिस सत्य की अभिव्यक्ति हो ी है वह साहित्य है और गति के म
प्रस्फुटन होता है वह नृत्य है। साहित्य साधना साक्ष्य है वाणी का तप है। स्व भू
अधिक स्वाभाविक है। साहित्य में जीवन सत्य की अनबोली छाया स्वर पाती न नृत्य
शक्ति का आनंदात्मक आन्दोलन चिन्हित होता है । नृत्य शिशु की शैशव क्रीड़ तरह स्व
उसमें तारुण्य है यौवन है उभार है गति है और सबसे परे सृजन की तल्लीन । यदि सा
की तरह वृक्ष है तो नृत्य ब्रह्मचारी की तरह तरुण वीर्यवान है ''

सभी जगह के लोक नृत्य अपनी विशेषता रखते हैं, क्योंकि लोक लाओं में
संस्कृतियों, रुढ़ियों, देशगत मान्यताओं को अपने में गला लेने की तथा फिर तीकों में
की अदभुत क्षमता रहती है । दीवाली नृत्य में यही क्रम देखने को मिलता है ग्वालों क
तथा अन्य प्रान्तों में भी होता है । अन्य प्रान्तों में यह व्यक्ति नृत्य है । बुन्देलखण्
समूह नृत्य तो हैं ही साथ ही यहाँ की वीरता को समेटकर बहुत ही वीरत्व क और पौर
नृत्य हो गया है । अन्य स्थानों पर यह श्रृंगार नृत्य है पर बुन्देलखण्ड में लाठी के
उत्कृष्ट नट-नाट्य हो गया है ।

⇨ **करमा नृत्य** :- जीवन के हर कौने में इस नृत्य की पैठ है। यहाँ तक कि किसी की
के बाद भी आदिवासी करमा नाचते हैं । अवश्य ही यह नृत्य महासृजन और जीवन पर अटूट
का नृत्य है ।

⇨**शैला नृत्यः-** यह पुरुष नृत्य है । पौरुष की प्रतीक लाठी यहाँ अपना अनगढ़पन खोकर हे
गयी है । यह नृत्य सहायक संगीत का सृजन करती है । पुरुष अपनी पगड़ी में मोरपंख खों कर
सज बज कर हाथ हाथ भर की दो गढ़ी सवारी डंडियाँ लेकर नाचते हैं । ढोल या माढर इस भी
बजता है। इसके कई प्रकार है ।

1- भरौली शैला
2- हरौनी शैला
3- लहकी शैला
4- भुलनिया लहकी शैला
5- बैठक शैला
6- शिकार शैला

⇨**राई नृत्यः-** बुन्देलखण्ड में राई नामक लोक नृत्य भी अत्यधिक प्रचलित है । इसमे गाये जाने
वाले लोकगीतों में सकयाउ फागों को प्रमुख स्थान मिला है । गायक ढोल नगड़िया बजा बजा कर गाते
हैं । यह गीत देर तक चलते हैं । इसमें नृत्यिका का अंग संचालन इस गीत के गाते समय देखते ही
बनता है । वह दूनर हो जाती है । इसके एक लोकगीत में जायसी व बिहारी की छाप देखते ही
बनती है ।

लकरी जल केवला भई, केवला जब भयो राख
मैं पापन ऐसी जरी, केवला भई न राख ।

➪**अहीर नृत्यः-** वस्तुतः इसे नृत्य न कहकर नटों का खेल कहना उपयुक्त है। इसमें घेरे में एक-एक व्यक्ति के कन्धों पर एक-एक पुरुष खड़े रहते है। और एक दूसरे का हाथ पकड़े रहते हैं। नीचे के व्यक्ति कूल्हे मटका मटका कर नाचते हैं ।

➪**बरेदी नृत्यः-** बुन्देलखण्ड में बरेदी नृत्य काफी लोकप्रिय है । दिवाली के दूसरे दिन ढोर चराने वाले बरेदी इस नृत्य को करते हैं । बरेदियों का यह नृत्य काफी आकर्षक होता है -

गैया की करों आरती, भैसों का करो श्रृंगार
बैलों के पग पूजिये, ये धरती के उठावनहार
प्रीति को ऐसो करिये जैसे लौटा डोर
अपनो गलो फसांय के पानी लाबें बोर ।

इस प्रकार बुन्देली लोकनृत्यों में उनकी संस्कृति और सभ्यता के दर्शन आज भी उसके प्राचीन रूप में देखने को मिलते हैं।

ग.2.2. काव्य कला

मानव का यह प्राकृतिक गुण है कि वह सुख में अधिक सुखी व दुख में अधिक दुखी हो उठता है तथा उसके यही भाव जब शब्दों के रूप में अभिव्यक्त हो उठते हैं तो वही काव्य बन जाता है हिन्दी साहित्य की भाँति बुन्देली लोकसाहित्य में भी काव्यकला का अपना विशिष्ट स्थान है । यहाँ भी काव्य कला में रस, छन्द, अलंकार, प्रकृति वर्णन, नायिका भेद आदि का अत्यंत हृदयग्राही वर्णन प्राप्त होता है। समय परिवर्तन के साथ लोकगीतों व काव्य में भी परिवर्तन के लक्षण प्राप्त होते हैं जो उत्तम काव्य का प्रमुख गुण है । मुंशी अजमेरी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डा0 वृन्दावनलाल वर्मा आदि ऐसे महान कवि और लेखक हुये जिनकी साहित्यिक कला को विस्मृत नहीं किया जा सकता है ।

बुन्देली लोक काव्य में रस, छन्द, अलंकारों के बड़े सुन्दर रूप पाये गये हैं । बुन्देली लोकगीतों में हिन्दी काव्यकला की भाँति दोहा, छन्द, सोरठा, चौपाई, कविता, कुडरिया, साकी, सिहर आदि सभी का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है । दोहा का उदाहरण देखिये -

अवला वृंद विलौक बहु नख सिख सजै सिंगार
हाट-वाट पुर देख सब लागों करन विचार ।

इस प्रकार बुन्देली काव्य में भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है ।

ग.2.3. मूर्ति कला एवं चित्रकला

कला के विभिन्न क्षेत्र जैसे - नृत्यकला, संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला और काव्य के सभी क्षेत्रों में बुन्देलखण्ड ने सदा ही स्थान बनाये रखा है । मूर्तिकला और चित्रकला के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड और विशेषतः झाँसी ने तो अपना अलग ही रूप निखारा है । बुन्देलखण्ड के महान क्रान्तिकारी मास्टर रुद्रनारायन प्रसिद्ध मूर्तिकार तथा चित्रकार रहे हैं। इनके समस्त चित्रों में आज के प्रयोगवाद, प्रतीकवाद, धनवाद, उत्तम जनवाद, सूक्ष्मवाद आदि के दर्शन नहीं

होते, परन्तु उनके चित्र राजा रवि वर्मा की शैली से प्रभावित होते हुये भी भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं । इनके चित्रों में रंगों का सुन्दर संयोजन है। इनके बनाये चित्रों में लक्ष्मीबाई तथा आजाद के चित्र भी है । जिसमें वह अपनी मूँछ ऐंठ रहे हैं, जो बड़ा ओजपूर्ण है । मूर्तिकला-मास्टर रुद्रनारायन मूर्तिकला के क्षेत्र में पहले कलाकार थे जिन्होंने छेनी हथोड़े एवं हाथों के कौशल से बुन्देलखण्ड को गौरवान्वित किया है। इनकी मूर्तियों में सजीव मुद्रा तथा झाँसी की रानी के मुख का ओज, उनका भाव एवं हस्त तथा पाद मुद्रायें दर्शकों को मन मुग्ध कर लेती हैं । इनके द्वारा बनायी गई मूर्तियों में गाँधी की दाण्डी यात्रा नामक मूर्ति भी बड़ी सजीव व आकर्षक है। शारीरिक अनुपात एवं संजीव विज्ञान के वे कुशल शिल्पी थे । इसी गुण के कारण उनके चित्रों एवं मूर्तियों में पूर्ण सजीवता मौलिकता उत्पन्न हुई । वास्तव में बुन्देली चित्रकला की परम्परा का स्रोत चित्रों में है। निम्न लोकगीत में इसका वर्णन किया गया है -

आम अमलिया की नन्हीं नन्हीं पत्तिया ,
निमिया की शीतल छांय
तेहि पर बैठी ननद भौजाई
चले लागी रावन की बात
तुमरे देश भौजी रावन बनत हैं
रावन डर हें दिखाय

ग.2.4. संगीत कला

गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं। वास्तव में ये तीनों कलायें एक दूसरे से स्वतंत्र हैं किन्तु स्वतंत्र होते हुये भी गान के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नर्तन है । प्राचीन काल में इन तीनों कलाओं का प्रयोग अधिकांशतः एक साथ ही हुआ करता था । बुन्देलखण्ड में संगीत का विकास भारतीय संगीत के विकास के साथ ही हुआ है । बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध संगीत कलाकार तानसेन का भारतीय संगीत में अधिक योगदान रहा है । तानसेन ने अपनी संगीत साधना द्वारा भारतीय संगीत में अनेक रागों को जन्म दिया । झाँसी के अंतिम महाराजा गंगाधर राव के शासनकाल में संगीत का अधिक विकास हुआ । राजा स्वयं प्रसिद्ध नाटक्कार एवं कुशल संगीतज्ञ थें अंतः उनके राज्य में समय समय पर संगीत सम्मेलन, संगीत दरबार आदि का आयोजन होता था । इससे संगीत के विकसित होने में बड़ी सहायता मिली है । झाँसी में झाँसी महोत्सव तथा नुमाइस स्थल पर संगीत सम्मेलन होते हैं जिसकी पृष्ठभूमि में यहाँ के कलाकारों की संगीत साधना से प्रेम दृष्टिगोचर होता है। इस तरह झाँसी में संगीत कला का काफी विकास हुआ । यहाँ पर प्रत्येक उत्सव व पर्व पर स्त्रियाँ जो लोकगीतों को गातीं हैं तथा बालक के जन्म से लेकर विवाह तक जो भी लोकगीत गाये जाते हैं, सभी संगीत के अन्तर्गत आते हैं । माता अपने बालक को सुलाने के लिये जो गीत गाती है उसे लोरी कहा जाता है। संगींत का रूप हमें इस लोरी में भी देखने को मिलता है

सौ जैयो छैया। छुटक रई तरैंयाँ
सुवाऊं मै लै लै के तोरी बलैयां
चन्दन का पलना है रेशम की डोर

तामें लिखी मन्जू मोरे चकोर ।
चन्दा खिलौना में मोरऊ मंगाऊं
सुरजमल के घुडबन पै तौको बिठाऊं

ग.3. संस्कृति

किसी देश स्थान के रीति-रिवाज, आचार-विचार, खान-पान, पहनावा, वेश-भूषा, चाल-चलन आदि का समग्र यौगिक स्वरूपसंस्कृति कहलाता है। लोककाव्य में इन्हीं का चित्रण होता है। इसी संस्कृति के पावन चित्र की झाँकी लोक काव्य ही प्रस्तुत करता है । प्रकृति का अनेक रूपों मे वर्णन लोक काव्य में भरा पड़ा है । जनपद की समस्त संस्कृति का चित्र लोक काव्य में मिलता है । इस प्रकार यह निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि लोककाव्य लोक संस्कृति का रक्षक उन्नायक तथा आधार है ।

यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो विश्व बंधु बापू का यह विचार वास्तव में लोकगीत लोक संस्कृति के रक्षक हैं पूर्णतः सत्य है। लोक संस्कृति लोकगीतों में लोक काव्य में ही सन्निहित है। जनपदीय लोक काव्य में ही लोक जीवन की विशद व्याख्या है । संक्षेप में यदि यह कहा जाये कि लोक संस्कृति ही लोक काव्य है और लोक काव्य ही लोक संस्कृति है तो अतिश्योक्ति न होगी । लोकाचार, जन्म, संस्कार, रीति-रिवाज, विवाह, उत्सव, देवी देवताओं के पूजन, पहनावा, खाना-पान, फसलें, प्रकृति वर्णन आदि सजीव चित्र ही तो लोक काव्य की विषय सामग्री हैं और यही लोकजीवन है । लोक संस्कृति को सजीव रखने में लोककाव्य का निराला स्थान है । सांस्कृतिक मूल्यों का रक्षक यही लोककाव्य है लोक साहित्य हमारी सांस्कृतिक कसौटी का एक अनिवार्य स्तंभ है । कहीं ऋतु गीतों का वर्णत तो कहीं बुन्देले वीरों की शोर्य गाथायें, कहीं धार्मिक गीतों की भरमार, कहीं हरदौल के गीत, कहीं कारसदेव के गीत, कहीं सास-ननद, देवर-भाभी आदि के रोमांचकारी प्रसंग, कहीं जन्म के दादरे सोहरें, कहीं विवाह संस्कार गीत तो कहीं प्रयाण गीत इस लोककाव्य के कलेवर हैं। यही हमारी लोकसंस्कृति है। इसकी विशद व्याख्या लोक साहित्य करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक संस्कृति के प्राण लोक साहित्य में समाये रहते हैं । हमारी लोक संस्कृति ग्रामों में निवास करती है और इन्हीं ग्रामों में लोक कवि अपने इष्टदेव गणेश, शारदा आदि को स्मरण कर अपना राग अलापने लगता है। यथा -

सदा भवानी दायनी, सनमुख रात गनेश ,
तीन देव रक्षा करें, ब्रह्मा ,विसुन महेश ।

लोक साहित्य का संबंध लोक से तथा संस्कृति से इस प्रकार जुड़ा है कि एक नापने में दूसरा नप जाता है। और दूसरे को तौलने में पहला अपने आप तुल जाता है । संक्षेप में लोक साहित्य में ही लोक संस्कृति का चित्र प्रतिविम्बित होता है और लोक संस्कृति का सुव्यवस्थित स्वरूप लोक साहित्य के रूप में ही होता है। संस्कृति और साहित्य अन्योन्याश्रित है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अतः सांस्कृतिक धरोहर यदि है तो वह हमारा लोक साहित्य ही है और उसके प्रणेता लोक कवि इसके जागरूक प्राणी हैं ।

(घ) लोक साहित्य के विविध रूप काव्य, गीत, कहानी, हास्य-व्यंग आदि

"वाक्यं रसात्मक काव्यं" आचार्य विश्वनाथ का यह कथन बड़ा ही सारगर्भित है। उनके अनुसार चाहे वह गद्य हो या पद्य अथवा चम्पू । जो वाक्य रसात्मक है वह काव्य कहा जायेगा । इस परिभाषा ने समग्र साहित्य को अपने में बांध लिया है। लोक साहित्य के चाहे गीत हो, चाहे लोकवार्ता हो, चाहे लोक कथा हो ,यदि उसमें भाव रसानुभूति कराने की क्षमता है तो वह लोक काव्य के अन्तर्गत आयेगा ।

"साहित्य समाज का दर्पण होता है" साहित्यकार जनमानस का सजग अध्येता होता है । तभी उक्त उक्ति की सार्थकता सिद्ध होती है । लोक शब्द में सामान्यतः ग्रामीण अंचल का भाव है तथा साहित्य का अर्थ -हितस्य भावः इति साहित्यं "अर्थात कल्याकारी विचार ही साहित्य है" ।

लोकसाहित्य में किसी जाति के उत्थान-पतन, सुख-दुख, हास-परिहास, खान-पान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि के भाव सुमन संजोये जाते हैं। लोकाचार को हृदयंगम किये बिना समस्त ज्ञान अपूर्ण है। अतः लोकाचार की पृष्ठभूमि वहीं से तैयार होतीं है जहाँ से शिशु भ्रूण अवस्था में आया । बधाई, हंसी, खुशी, अहलाद के लोकगीत वहीं से अपना अस्तित्व बनाकर प्रस्फुटित होने लगते हैं। लोक जीवन की व्याख्या करने वाला लोक साहित्य ही है । विदेशी विद्वानों ने भारतीय ग्राम गीतों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । कर्नल एल.ए.बेबर ने कहा था-"मुझे हिन्दुस्तान के गाँव के गीत-यूगोस्लाविया, नार्वे, डेनमार्क, रूस, इटली, फ्रांस और इंग्लैंड के ग्राम गीतों की अपेक्षा अधिक सजीव और हृदय स्पर्शी प्रतीत होते हैं ।

ग्राम गीतों की भांति ग्राम कथायें, किवदंतियाँ, लोकोक्तियाँ, लोकवार्तायें आदि सब सरल व रसानुभूति कराने में समर्थ हैं । इसलिये यह सब लोक साहित्य की विधायें अथवा लोकसाहित्य के विविध रूप कहें जा सकते हैं । समग्र रूप से कहा जा सकता है कि लोक माानव अपने हृदयोद्‌गार लोकभाषा में ही व्यक्त करते हैं और यही लोक भाषा किसी न किसी रूप में लोक साहित्य की संज्ञा अभिधारणा करती है । मानव अपने भावचित्र, काव्य, नाट्य, संगीत, मूर्ति एवं अन्य कलाओं के माध्यम से व्यक्त करता है। लोक काव्य भी लोक मानस के भाव-विभाव अनुभाव एवं संचारी भावादि को व्यक्त करने का सशक्त व सिद्ध साधन है। बुन्देली लोक साहित्य में भाव सौम्यता तो सर्वत्र एक ही है क्योंकि रसानुभूति एक सी ही होतीं है परन्तु स्थानीय भिन्नता बोली व बानी में आने के कारण भाषागत भिन्नता होना स्वाभाविक ही है । लोक साहित्य अपनी स्थानीय भाषा में ही होता है। और इसी से अधिक प्रभावशाली बन पाता है ।

बुण्देलखण्ड के लिखित अलिखित साहित्य को लिपिबद्ध करने में अनेक भागीरथी प्रयास किये जा चुके हैं तथा अनवरत चल रहे हैं । परन्तु लोक साहित्य का भंडार इतना विशाल है कि जितना अधिक खोदा जायेगा उतना ही अधिक मधुर रस का आस्वादन होता जायेगा । लोक साहित्य की प्राचीनता निर्विवाद सत्य है । आनें, कहावतें मुहावरें, कथायें अटकें आदि की प्राचीनता को नकारा नहीं जा सकता । यह समग्र लोक साहित्य क्षेत्रीय भाषा की अमूल्य धरोहर है।

"अतीत से लेकर आज तक की समस्त बौद्धिक, धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृतियों का विकासशील इतिहास लोक साहित्य में मिलता हैं।"

"लोक साहित्य में जो रचनायें मिलती है वह लोक जीवन को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित करतीं हैं । उनकी पंक्तियों में लोक हृदय का स्पंदन सुन पड़ता है। स्त्रियों और पुरुषों की भावनायें छलक पड़ती हैं। प्रस्तुत आकांक्षायें और वेदनायें मुखरित हो उठतीं है।"

लोक साहित्य उसको उस धरती के निकट अवश्य रखता है जो बुद्धि को बल देती है, संस्कृति और सभ्यता का सहारा प्रदान करती है, अतीत से जोड़ती और अनागत के लिये संपत्ति देती है।

इसी प्रकार लोक साहित्य के अंतर्गत लोक जीवन की विवेचना सन्निहित होती है । लोक जीवन का हास-परिहास, खेल, नृत्य, रोना-गाना, सुखद-दुखद अनुभूतियों का मार्मिक वर्णन लोक साहित्य ही करता है । प्रकृति के अधिक निकट लोक कवि ही रहता हैं। वही पहाड़ ,झरना, पेड़-पौधों, पशु-पक्षी, वर्षा-गर्मी, मेघ-चन्द्र, तारिका चांदनी, आदि का जीवन में लोक कवि समायोजन करता है । तात्पर्य यह है कि लोककवि जीवन के समस्त पक्षों सामाजिक धार्मिक, लौकिक परलौकिक, राजनैतिक, प्राकृतिक , आर्थिक, सांस्कृतिक आदि का वर्णन लोक साहित्य में करता है। लोक व्यापार की वर्णनशैली इस साहित्य में होती हैं । जन्म के समय सोयरे, दादरे, बधाई गीत, विवाह गीत, बन्ना-बन्नी, सजन-समधी, समधिन के गीत, टीका द्वारचार यानी कि क्षण-क्षण प्रतिक्षण के लोकगीतों से लोक काव्य भरा पड़ा है। यह सब लोक साहित्य की देन है ।

हमारी संस्कृति तथा हमारा जीवन गीतात्मक है । यहाँ तक कि इसमें सम दरसी भावना का स्वरूप दिखाई देता है । यदि जन्म के समय प्रसन्नता है तो मृत्यु के समय भी आशातीत दुःख नहीं । अस्थियाँ गंगा में विसर्जित करने हेतु घर से जाते समय भी हम उन्हें गा-गा कर विदा करते हैं यथा -

चलन-चलन सब कोउ कहे ,
चलबो सहज न होय
अब के गये कब मिलो हो,
कब हुइये हमारी तुम्हारी भेंट रे ।

यह उपर्युक्त पंक्तियाँ वेदान्त के गम्भीर विचारों से परिपूर्ण है । इसमें गीता उपदेश जैसी गरिमा है । मोहान्धता के निवारण हेतु ज्ञान चक्षु प्रदान करने की क्षमता है। सदियों से परम्परागत रूप में इस लोक साहित्य की मान्यता है तथा रहेगी । लोक साहित्य के विविध रूपों में यहाँ काव्य, गीत, कहानी, हास्यव्यंग आदि का उल्लेख इस प्रकार हैं -

ध.1 लोककाव्य के विविध रूप

बुन्देलखण्ड में लोक काव्य का अजस्त्र श्रोत हजार धाराओं के रूप में प्रवाहित है । लोक काव्य की पर्याप्त विधायें हैं। लोक काव्य में बहुल्ता के कारण इसका वर्गीकरण करना असंभव नहीं तो दुःख साध्य अवश्य है। लोककाव्य लोकगीतों का पर्याय कहा जा सकता है। यह लोककाव्य जनपदीय परिस्थितियों से अवश्यमेव अनुप्रमाणित होते है। यह परिस्थितियाँ भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक; धार्मिक आदि अनेकों प्रकार की हो सकती हैं।

अतः यह कहना समीचीन होगा कि प्रत्येक जनपद के लोककाव्य में परिस्थितियों के धरातल के आधार पर भिन्नता होना संम्भव हैं। भाव भूमि के आधार पर जनपद क्या समस्त देश के लोक काव्य में समरसता मिलेगी। लोककाव्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

घ.1.1. बुन्देली का ग्वालकाव्य

श्री कृष्ण की गौचारण लीला में ग्वाल उसके मित्र थे। आज भी वह ग्वाल बनने की परम्परा चली आ रही है। ग्वाल की वेषभूषा में या श्री कृष्ण की वेषभूषा में मोर मुकुट पीताम्बर धारण कर हाथ में लाठी लेकर गौचारण की याद दिलाते हैं। इस स्वांग में ग्वाल सुन्दर लोक काव्य प्रस्तुत करते है जैसे-

"डिर्र.............
ग्वाल की चराई देव
नाऊ की नवाई देव
धौरी गैया घेरी ती
कजरी गैया घेरी ती
जमुनिया, खरगिया, ललतिया
पुनिया, रम्वइया मनकुइयां

आदि गीत गाकर नृत्य भी प्रस्तुत करते हैं। श्रोता व दर्शक उन्हें धार्मिक भावना से प्रेरित होकर दान दक्षिणा आदि देते हैं।

घ.1.2 श्रवण कुमार (सरमन) का लोक काव्य

कुछ भिखारी (मात्र) श्रवण कुमार की कथा को लोक काव्य में गाकर प्रस्तुत करते हैं। उनकी यह कविता बुन्देली में होती है। यह बुन्देली कविता उन्हें परम्परागत रूप से मिली हैं। गाने के साथ मंजीरा, लकड़ी की पटरियाँ, सारंगी आदि वाद्ययंत्र भी बजाते है। अतः यही बुन्देली साहित्य का लोककाव्य है।

उदाहरण -

यश धन बेटा बड़े तुमार,
हमें देव भिक्षा को दान-जै गंगा
अंधी अंधा कही सुनाय,
बेटा हमको तीर्थ कराव-जै गंगा
सरमन डगर बनई की लीन
कांवर कंधा पै धर लीन-जै गंगा
बेटा सरमन पानी ल्याव
हम खां पानी जल्द पिलाव-जै गंगा-2

इस प्रकार दृष्टव्य है कि बुन्देली संस्कृति को संजीव रखने के लिये इस प्रकार के बुन्देली साहित्य की विधायें बुन्देलखण्ड में बिखरीं हैं।

घ.1.3. बुन्देली में आल्हा काव्य

बुन्देलखण्ड में एक कहावत है कि- आल्हा को गाइये
चतुर लवरा चाइये।

परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है आल्हा छन्द वीर छन्द है। इसे सुनकर बुन्देलखण्ड के वीरों का शौर्य याद आता है। वीरता की कहानियाँ सुनकर वीर रस का उद्रेक होता हैं और उत्साह उत्पन्न होता है। राजा परमाल (चंदेल वंश) की वीरता, आल्हा उदल की वीरता, मलखान, मछला, जागन, ढेवा, ब्रह्ममा, इंदल, फुलवा, हिरिया, मालिन आदि स्त्री पुरूष प्रमुख पात्रों की सुन्दर कथायें आल्हा काव्य में हैं। यह काव्य बुन्देली संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। आल्हा की वंदना देखिये-

प्रथम सुमरूं परमेश्वर को जो सबका है पालन हार।
दूजैं सुमरूं मात-पिता को पाल पोष जिन कियो तैयार।
तीजैं सुमरू जनम भूमि कौ जिसकी रज में खेले आय।
चौथे सुमरूं गुरू दाता कों, जिनने मारग दिये बताय।
छोड़ सुरमनी दई आगे की अब आगे को सुनौ हवाल।

घ.1.4. नट-भाटों का लोक काव्य

शादी आदि के शुभ अवसरों पर नट और भाट लोग अपना सुन्दर लोक काव्य प्रस्तुत करते हुये दिखाई देते हैं। यह नट तथा भाट लोग मुखाग्र, सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर छन्द सुनाते हैं तथा इनाम प्राप्त करते हैं। वर पक्ष की उपमाओं से सुशोभित करते है और सुन्दर लोक काव्य सुनाते है। कविता की कला तथा वाक् चातुर्य से पुरस्कार व उपहार प्राप्त करते हैं।

जैसे-

"मर्दन से हम माँगते मर्दन से हम लेंय।
उनसें हम न मांगते जिनकी वाझें नार।
"वानी को स्वाद बुरयें बोलिये ना काऊ से।
काया को स्वाद जब निरोगी तन पाइये।
घर कौ स्वाद जब घर में लागो रहै,
जस कौ स्वाद श्री राम गुन गाइये।
धन को स्वाद शीशे नीचे नाभ रहो,
खावे को स्वाद जब और को खबाइये।।

इस प्रकार उत्साह वर्धक प्रेरणा प्रद काव्य सुनकर लोक इनाम प्रसन्नता से देते हैं। कुछ नट कलाबाजी का भी प्रदर्शन करते हैं।

घ.1.5. बुन्देली का गप्प साहित्य

लोक साहित्य के प्रणेताओं ने अब तक अनेक तथ्यों पर द्रष्टिपात नहीं किया है। उनमें गप्प साहित्य भी एक है और ऐसा झूठा कथन जो अदभुत रस की सृष्टि करें। गप्प में विस्मय के साथ हास्य भी होता है। उदाहरणार्थ एक परम्परागत पद्य काव्य देखिये-

सुनो भाई गप्प, सुनो भाई गप्प,
नाव मै नदिया डूबी जाय।
एक अचंभों ऐसो देखो कुँआ में लग गयी आग ।
पानी-पानी जर गओ, मछली खेलें फाग।
सुनो भाई गप्प सुनो भाई गप्प।।

इस गप्प साहित्य को यदि विधिवत रूप से संजोया जाये तो मनोरंजन का स्वस्थ साधन तथा ज्ञान वर्धन के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जायेगी।

घ.1.6. मन्त्र तन्त्र का लोक काव्य

भारत में मंत्र तन्त्र तथा यत्रं बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त हो रहे हैं। वेदों में भी मन्त्रों का निर्देश है। मन्त्रों से षटकर्म मारण, मोहर आदि करने का विधान बताया गया हैं। फोड़ा, फुन्सी से लेकर लगभग समस्त रोगों की चिकित्सा मन्त्रों द्वारा की जाती हैं। इन मन्त्रों में भी काव्यात्मकता हैं। बुन्देली साहित्य की यह विचित्र विधा है। यह मन्त्र काव्य कहीं तो चम्पू के रूप में कहीं शुद्ध बुन्देली काव्य के रूप में है। कुछ उदाहरण देखिये -

वन में व्याई बानरी काचा वन फल खाय।
आन की हनुमंत की आधा शी शी जाय।।

झाड़ने वाले ओझा लोग नीम की डंड़ी लेकर या राख लेकर मन्त्रोंच्चारण करके फूंकते हैं। इस प्रकार बुन्देली लोक काव्य में मन्त्रोच्चारण का बहुत अधिक महत्व है। इस विधा के बड़े-बड़े शास्त्र हैं। एक विच्छू का मन्त्र देखिये-

कुदवन की रोटी भेंस कौ दई
उतर रे विच्छू हनुमान ने कई

इन मन्त्रों के रचयिता भगवान शिव माने जाते हैं। इस प्रकार का मन्त्र साहित्य ग्रामों में पर्याप्य रूप में भरा पड़ा है। जो स्वतन्त्र रूप से शोध का एक प्रथक क्षेत्र हैं। अतः मन्त्र काव्य हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग हैं यह मन्त्र भी एक सशक्त लोक काव्य है।

घ.1.7. बुन्देली लोक साहित्य का नीति परक काव्य

अनुशासन व व्यवस्था बनायें रखने के लिये प्राचीन विद्वानों ने अनुभव सिद्ध रीति-नीति परक सूक्तियाँ निकाली जो आज तक

समाज में अनवरत रूप से चली आ रहीं हैं। और समाज उनसे उपदेश ग्रहण करता है। नीति-परक सूक्ति देखिये-

पंचायत उर परसवौ, पर घर दोवै जाय,
इनमें अपजस होत है कोटन करौ उपाय।"

अर्थ- पंचायत करने में, परोसने में, दूसरे की दौनी करने में अपयश अवश्य लगता है"।

व्यापारी और पावनों, तिरिया और तुरंग,
ज्यौ ज्यौ जे ठनगन करें, त्यौ त्यौ बाढ़े रंगा।
खेर, खून खांसी खुशी, वैर प्रीत, मदपान
जे दस दावे न दवै, पाप पुण्य और स्थान
दगा किसी का सगा नहीं है ना मानौ तो कर देखौ।
जिसने दगा किया है पैले, उसका उजड़ा घर देखौ।

घ.1.8. बुन्देली के अन्य लोक काव्य

उक्त उल्लिखित बुन्देली लोक काव्य के अतिरिक्त पल-पल और क्षण क्षण के क्रिया कलापों से सम्बन्धित बुन्देली लोक काव्य है जो हमारी संस्कृति के प्राण हैं। मानव जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक , लौकिक तथा पारलौकिक जीवन पर इस लोक का प्रभाव है। प्रत्येक क्षेत्र में हजारों लोक कविता के छन्द हैं।

घ.2. - गीत

मानव जीवन के चारों आश्रमों में लोक गीतों का प्रभाव हैं। शिशु अवस्था, वाल्यवस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, जरावस्था, आदि अनेकों स्तरों को पार करता हुआ जीवन व्यतीत करता हैं। लोक गीत भ्रूणावस्था से ही शिशु के जन्म के साथ से अस्थि प्रवाह तक चलता है। आगन्यों के गीत में बधाइयॉं, जन्म के बाद शिशु को खिलाने मन बहलाने के अनेकों गीत है। झांसी जनपद में बच्चों को लोरियॉं गा-गा कर सुलाया जाता है और संरक्षण गण गाते हैं-

"सोजा राजा भइया वीर,
सोजा सोजा बारे वीर
तोई मताई मम्मन कें गयी,
तो खां धर गई खीर।
सोजा सोजा बारे वीर।

ऐसे परम्परागत सैकड़ों लोकगीत है जो जीवन के साथ चले आ रहे हैं। बच्चों को बहलाने का निम्नलिखित गीत भी परम्परागत है-

"तेली के भाई तेली के,
पन्द्रह पसेरी के,

उड़ गये तीतर बस गये मोर,
सरी डुकइयॉं ले गये चोर,
चोरन के घर खेती भई
बरा डुकइयॉं मोटी भई,
मन मन कातै मन मन खाय,
बड़े गुरू के जूजन जाय,

अतः यह लोक साहित्य है जो आनन्द से भरा है, भावना मय है तथा प्राचीन हैं। प्रत्येक भाषा व बोली में इन लोकगीतों का लोक काव्य के रूप में अपना निराला स्थान हैं। ज्यों ज्यों जीवन सुमन का रूप विकसित होता हैं। लोक साहित्य की सुरभि उसमें स्वतः समाहित होतीं जाती है।

बुन्देलखण्ड का समग्र लोक साहित्य गीतात्मक हैं। इस क्षेत्र में कृषक बालायें खेतों में काम करते समय फसल बोते समय, काटते समय, अपने सुरीले कोकिल कंठ से परम्परागत लोक काव्य स्रोत प्रवाहित करती हैं। तात्पर्य यह है कि बुन्देली के समस्त लोक काव्य में गेयता का गुण है इस गेयता से माधुर्य तथा उल्लास उत्पन्न होता है और लोकगीतों का प्रभाव मानव जीवन पर स्थायी रुप में पड़ता है ।

घ.3. कहानी

हिन्दी की अन्य बोलियों की भॉंति बुन्देली में भी लोक कथाओं का अक्षुण भण्डार भरा पड़ा है इसमें अधिकांश कथायें सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय व्याप्त होतीं हैं । बुन्देली भूमि प्रारम्भ से ही वीर पुरुषों की प्रमुख क्रीड़ास्थली रही अतः वीर चरित्र विषयक कथायें लोग बड़े चाव से कहते व सुनते हैं । यहॉं का जन साधारण धर्म में आस्था रखने वाला है अतः व्रत एवं त्यौहारों से संबंधित कथायें भी अत्यधिक प्रचलित है। इस संबंध मं प्रत्येक घर को लोक साहित्य का भंडार कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त पशु-पक्षियों से संबंधित कथायें ,जादू की कहानियॉं, परियों व अप्सराओं की कहानियॉं, राजा-रानी व राजकुमारों की कहानियॉं, जिसे श्रृंगार एवं प्रेम विषयक कथायें भी कह सकते हैं । किन्तु बुन्देली कथाओं में श्रृंगार में अश्लीलता का सर्वथा अभाव रहता है । इसके अतिरिक्त अन्धविश्वास से पूर्ण कथायें भी प्राप्त होतीं है । यह कहानियां देश विदेश में भी प्राप्त होतीं हैं जो उक्त प्रदेश के लोगों की सरलता को व्यक्त करती है । सार रूप में हम कह सकते हैं कि यह कहानियॉं जातिगत रागद्वेष, सत्य की विजय, असत्य की पराजय, परोपकार के महत्व का प्रतिपादन, त्याग की श्रेष्ठता व मंगल कामनाओं को प्रतिपादित करतीं हैं । कहानियों में नैतिकता धार्मिकता का समावेश व अन्त अधिकतर सुखान्त के कारण ये कथायें सारे दिन के थके कृषकों व रोजगारों को शक्ति प्रदान करतीं हैं । इन्हें घर का बड़ा बूढ़ा बाल मंडली के आग्रह पर सुनाता है ।

इन लोक कथाओं को चम्पू काव्य कहा जाता है । ढोलामारु की कथा ,हरदौल की कथा, जगदेव की पमारी, आल्हा तथा अन्य सामाजिक उपदेश परक कथायें इस क्षेत्र में आती हैं । अलाव या चौपालों पर बैठकर गद्य तथा पद्य में वर्णन करते हैं । इन लोक कथाओं में बड़ा आनंद आता है, ।

घ.4. हास्य व्यंग

हमारे बुन्देली लोक साहित्य में हास्य व्यंग के अंतर्गत आने वाली- आने अटकें और कहावतें इस प्रकार है -

घ.4.1. आने, अटके और कहावतें

आने और अटकों पर अभी शोध की तीव्र आवश्यकता है । समाज के लोक साहित्य में आने (मुहावरे, कहावतों) का तथा अटकों का अपना निराला स्थान है। इसका विशाल भंडार जन श्रुतियों में पुराने लोगों से चौपालों पर वार्तालाप तथा वाद विवादों से प्राप्त होता हैं । यह आने अनेक प्रकार के हैं । परन्तु उनकी गहगई में जाना उचित नहीं है। कुछ मनोरंजक आनों का रसास्वादन कीजियें -

1- अपने अटकें सौंत के मायके जाने आउत
2- कये कयें धोबी गधा पै नई चड़त
3- ऊंट पै चड़ के सबै मलक आउत
4- नाऊ देखे गठइंया नई चलत
5- मांगे कुर्मी बाल न देय , घींच मरोरें सबरी देय
6- जाट गड़रिया गूजर, तीनऊ देखें ऊजर
7- रेवन ककवारे की कुतिया
8- बनो गड़रिया सौ को , मिटौ काछी नौ को
9- गओ बराती सौ मन कौ
टीका भयें भओं दस मन कौ ।
10- गुजरो गवाह उर लौटो बराती कोऊ नहीं पूँछत

कुछ अटकों की छटा देखियें जिसमें वेदांत या गूढ़ार्थ की समस्यात्मक गाथायें निहित हैं -

1- जहाँ पवन न संचरै , रवि का उदय न होय
जो घट विरमा न रची, अवला माँगे सोय ।
2- छै रितवारा मास के रित बसंत के अंत
वो दिन हमें बताइयों, त्रिये न भावै कंत ।
3- चार बांस चौबीस गज, अंगुल आठ प्रमान
इतने में सुलतान हैं अब न चूक चौहान ।
4- अस्सी मन को गक्कड़ा जी पे बैठो मक्कड़ा
रत्ती रत्ती खात तो, कै दिन में बड़ाय ।

घ.4.2 उपमायें

बुन्देली लोक साहित्य की कुछ उपमायें इस प्रकार हैं -

1- चरखी सो मौ चलाउत
2- कुतिया सी दौंकत
3- अरा सो मों बाउत

4- नीम सो करओ लगत
5- सत्तुर सो सूजत
6- करिया सो फूंसत
7- घूरिया सी हिन हिनात
8- भारई सी भन्नात
9- ततइया सी चिपकत
10- गिजाई सी टिरकत

तात्पर्य यह है कि बुन्देली लोक साहित्य में हजारों लोकोक्तियां एवं कहावतें (कैनावतें) बुन्देली लोक साहित्य का भंडार हैं । इसी तरह बुन्द`ली लोक साहित्य में उपमाओं का अपना निराला स्थान है। ये उपमायें लोक साहित्य में नवीन प्राण फूंक कर उसे मधुर तथा रसानुभूति में सुगम बना देतीं हैं । लालित्य बढ़ा देती हैं। ऐसी सहस्त्रों उपमायें हैं जिनमें कालिदास की उपमायें भी फीकी मालुम पड़तीं हैं ।

घ.4.3. काव्यात्मक पहेलियाँ

बुन्देली का काव्यात्मक साहित्य भी अत्यधिक समृद्ध हैं। बुन्देलखण्ड में इन कथाओं को बुझौअल या 'बतौअल' किस्सा कहा जाता है ।

उदाहरणार्थ -

1- नाय गयी मॉय गयी,
जाने दाई क्यॉय गयी । - (गैल)
2- नांय टटिया मांय टटिया
जी में बैठी चटू बिटिया । - (जीभ)
3- नाय तक्का मॉय तक्का
जी में बैठे भोले कक्का । (बेड़ा)
4- तनक सौ लरका बम्मन कौ,
तिलक लगायें चन्दन को । (उरदा)
5- संगें गयी ती संगें ना आयी ,
संगें मिलों जब संगें आयी । (मटर)
6- जब हती मैं भोरी भारी जब सउतती मार ,
अब मैनें लाल घघईया पैरी, अब न सैहों मार । (गगरी)
7- गैल गैल दो राड़े जायं ,
धैरा घूंसा करतीं जायें । (पनंईया)
8- सास बऊ हाटें गयी,
लाल बटइया गाड़ गयी । - (आंगी)
9- जोती ना बोई करी ना बिरवाई ,

घरी भर को कस करलो, जनम भर को हरयाई। (गुदना)

10- टेरे से वो ना बौलें, मारे से चिल्लाय,
एक जानवर ऐसों देखों, कच्ची रोटी खाय । (ढोलक)

इस तरह बुन्देली लोक साहित्य में हास्य व्यंग अथवा मनोरंजन के साहित्य में पहेलियों का अधिक महत्व है । यह हमारी सांस्कृतिक व साहित्यिक धरोहर है ।

प्रथम अध्याय
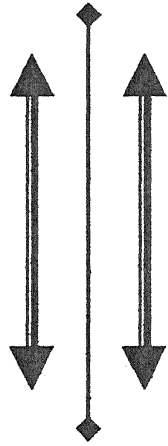
लोक काव्य में लोकगीतों का वर्गीकरण

प्रथम अध्याय

लोक काव्य में लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों की विपुल संख्या, वर्ण विषय की व्यापकता के कारण इनका क्षेत्र विस्तृत है। यह व्यापाकता मानव समाज से संबंधित है । कोई विषय ऐसा नहीं जो लोकगीतों के लिये वर्जित हो । कोई ऐसा स्थान नहीं जो कभी न कभी लोकगीतों से गूंजा न हो । कोई ऐसा कण्ठ नहीं जिससें कोई गीत न मुखरित हुआ हो । जीवन की संख्यातीत क्रियाओं के अनुरूप ही लोकगीतों में मानव मनोविज्ञान का आत्मेंक्य दिखाई देता है। व्यापाक निस्सीम गीतों को वर्गीकृत कर संकुचित सीमा में बांधना अत्यंत दुष्कर कार्य है । कुछ विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण कर उन्हें किसी न किसी वर्ग के अंतर्गत रखने का प्रयास किया है। पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम्य गीतों का वर्गीकरण इस तरह किया है -

1- संस्कार संबंधी गीत
2- चक्की चरखे के गीत
3- धर्मगीत
4- ऋतु संबंधी गीत
5- खेती संबंधी गीत
6- भिखमंगी
7- मेले की गीत
8- जाति गीत
9- वीरगाथा
10- गीतकथा
11- अनुभव के वचन

उपर्युक्त वर्गीकरण वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता । पं0 सूर्यकरण पारीक का वर्गीकरण निम्नवत् है-

1- देवी देवताओं और पितरों के गीत
2- ऋतुओं के गीत
3- तीर्थो के गीत
4- व्रत उपवास और त्यौहारों के गीत
5- संस्कारों के गीत
6- विवाह के गीत
7- भाई बहिन के प्रेम के गीत
8- साली-साले के गीत
9- पति-पत्नी प्रेम के गीत
10- पनिहारियों के गीत
11- प्रेम के गीत
12- चक्की पीसते समय के गीत

13- बालिकाओं के गीत
14- चरखे के गीत
15- प्रभाती गीत
16- राधाकृष्ण के प्रेमगीत
17- धमालें-होली के अवसर पर पुरूषों द्वारा गेयगीत
18- देशप्रेम के गीत
19- राजकीय गीत
20- राजदरबार, मज़लिस, शिकार, दारूगीत
21- जिमने के गीत
22- सिद्ध पुरुषों के गीत
23- क- वीरों के गीत
    ख- ऐतिहासिक गीत
24- क- ग्वालों के गीत
    ख- हास्यरस के गीत
25- पशु पक्षी संबंधी गीत
26- शांतरस के गीत
27- गॉव के गीत
28- नाट्य गीत
29- विविध गीत

इनके वर्गीकरण में क्रम का अभाव है। कई श्रेणीयों के गीतों को एक वर्ग में अन्तरमुक्त किया जा सकता है। डा0 श्याम परमार ने गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार है।

1- जातियों की दृष्टि से
2- संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से
3- धार्मिक विश्वास की दृष्टि से
4- कार्य के संबंध की दृष्टि से
5- रस सृष्टि की दृष्टि से

जार्ज सेम्पसन ने गीतों को आठ भागों में विभक्त किया है

1 ऋतु उत्सव के गीत परम्परा त्यौहार के गीत
2 खेल के गीत
3 पालने के गीत
4 आध्यात्मिक गीत
5 धार्मिक गीत
6 मद्यपान के गीत
7 प्रणय भावना के गीत

डा0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने लोकगीतों को निम्न वर्गों में विभाजित किया हैं -

1- संस्कारों की दृष्टि से वर्गीकरण
2- ऋतु संबंधी गीत
3- व्रत संबंधी गीत
4- जाति संबंधी गीत
5- विविध गीत

बुण्देलखण्ड के वयोवृद्ध साहित्यकार साहित्यप्रणेता श्री कृष्णनन्द गुप्त जी का वर्गीकरण -
1- ऋतु गीत
2- त्यौहार गीत
3- श्रम गीत
4- संस्कार गीत
5- यात्रा गीत
6- धार्मिक गीत
7- बाल गीत
8 -विविध गीत बताये हैं ।

परन्तु इस विभाजन में भी लोक काव्य को बांधा नहीं जा सकता है। इसी आधार पर डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' जी ने स्त्री पुरूष के अवस्था भेद को दृष्टिगत रखते हुये (1) बालक एवं बालिकाओं के गीत (2) स्त्रियों के गीत एवं पुरूषों के गीत आदि तीन प्रमुख प्रकार के लोक काव्य माना है।

परन्तु बुण्देलखण्ड के बुन्देली लोक काव्य की विभिन्न धाराओं को समग्र रूप से समाहित करने बाला वर्गीकरण अधिक उपयोगी होगा उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक व्यवस्थित और सरल वर्गीकरण इस प्रकार है-
1- प्रकृति परक गीत
2- धार्मिक गीत
3- संस्कार गीत
4- पर्व गीत
5- लोक नाट्य गीत
6- रीति-नीति परक गीत

इस प्रकार हम देखते है की लोकगीतों के वर्गीकरण के कई आधार हैं । किसी एक आधार का वर्गीकरण करना असंगत होगा क्योंकि उनमें एक साथ कई भावनाओं, भाषाओं, क्रियाओं तथा तत्वों का समन्वित होना आवश्यक है। प्रकृति, धार्मिक, नैतिक, संस्कार, व्रत, पर्व, त्योंहार, ऋतु, जाति एवं रसानभूति के सर्वमान आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण युक्ति संगत है। केवल संस्कार सम्बन्धी गीतों के आधार पर विभाजन नहीं किया जा सकता है क्योंकि कई भावनायें इस प्रकार वर्णित है जिन्हें एक वर्ग के अर्न्तगत नहीं रखा जा सकता है । रसात्मक दृष्टिकोण से लोकगीतों को किसी एक रस के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही गीत कई रसों के अधिकारी होते हैं । यही हाल जाति गीत, ऋतु गीत एवं श्रम सम्बन्धी गीतों का है। स्त्रियों पुरूषों और बच्चों के गीतों को

प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। लेकिन नारी मानस की भावनाऐं व्रत, त्यौहार संस्कार के गीतों में इस तरह दूध में पानी की तरह घुल मिल गई है कि उनको विभाजित करके परखना कठिन है।

समग्र रूप से विवेचन करने पर वस्तुतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न संस्कारों पर प्रचलित लोकगीतों का विषयानुसार वर्गीकरण पर्याप्त नहीं है। देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी।

वर्गीकरण के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का निम्न कथन उपयुक्त जान पड़ता है-''यह कहा जा सकता हैं कि लोकगीतों का बचपन धर्म की छाया में व्यतीत होता है। अनेक गीत ऐसे मिलेगे जिनका जन्म, पूजा, पर्व, त्यौहार या व्रत के साथ होता है। कुल देवता के पूजा गीतों में शत्-शत् पीड़ियों की आत्मा प्रतिबिम्बित हो उठती है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी विश्वास, शकुन, अपशकुन, भूत प्रेतों की पूजा के मन्त्र और गीत, जादू टोने पशु पक्षियों और वृक्षों सम्बन्धी विश्वास इन सबके अध्ययन से हम देश की विचारधारा से परिचित हो सकते हैं। बुण्देलखण्ड के लोक काव्य के परिपेक्ष्य में लोकगीतों का उपर्युक्त वर्गीकरण को विस्तार से जानना आवश्यक है।

1. - प्रकृति परक काव्यगीत

(सूर्य, नदी, वृक्ष, तीर्थ आदि)

आदिम मानव में प्राकृतिक तत्वों-सूर्य, नदी, वृक्ष आदि के प्रति भय, कौतूहल, विस्मय, अज्ञान अन्य विवश्ता के कारण पारलौकिक तत्व महतपूर्ण रहा है उन्होंने प्रकृति में पारलौकिक शक्ति के दर्शन ही नहीं किये वरन् जीव जगत की व्याख्या अपने दृष्टिकोण, भावना और विश्वास से जानकर की। उन्होंने जड़ चेतन के प्रति प्रार्थना उपासना एवं अनेक धार्मिक अनुष्ठानों की सृष्टि की जो आज भी समूचे हिन्दू जाति की धार्मिक मान्यताओं के रूप में पल्लवित है। बुण्देलखण्डके सामान्य धार्मिक विश्वास हिन्दु जाति के परम्परागत विश्वास से अलग नहीं है । यहाँ शास्त्र-सम्मत् धर्म और लोक धर्म की परम्पराऐं समान रूप से अस्तित्व में हैं। बुन्देली लोक जीवन में धर्म, पूजा, व्रत, त्यौहार, धार्मिक संस्कार आदि में ऐसी प्रारम्भिक धार्मिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान है, जिनका सम्बन्ध वहाँ के मूल निवासियों से है। आधुनिक बुण्देलखण्ड में सूर्य, नदी, वृक्ष सम्बन्धी लोकगीतों का प्रचलन सैन्धव-सभ्यता की शुद्ध भारतीयता को सिद्ध करता है।

1.1. सूर्य सम्बन्धी काव्यगीत

भारत में ही नहीं सृष्टि के अनादिकाल से ही मानव जाति में सूर्य सम्बन्धी काव्यगीतों का विशिष्ट स्थान रहा है। ग्रीक, मिश्र, ईरान, मैक्सिको आदि देशों के धर्मो में भी सूर्य सम्बन्धी गीतों का उल्लेख मिलता है। भारत की विभिन्न उपासना विधियों में सूर्य उपासना अति प्राचीन और सर्वोच्च है। "वेद" "पुराण" "रामायण" "महाभारत" आदि में सूर्य उपासना के महत्व

- राजस्थानी लोकगीत - पं0 सूर्यकरण पारीक पृष्ठ 22- 25
- Cambridge History of English Literature Page - 106

पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। बुण्देलखण्डमें सूर्य उपासना अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है। यहाँ जन्मोत्सव, विवाहोत्सव तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर अनिष्ट निवारण हेतु सूर्य उपासना के गीत गायें जाते है। बालक जन्म के दसवें दिन यदि महूत शुभ न हो तो ग्यारहवें या बारहवें दिन प्रसूता एवं बालक को मांगलिक स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहनाकर मंगलघट और सूर्य की पूजा कराई जाती है। सूर्य को अर्क दिलाया जाता है। सूर्य उपासना के पश्चात प्रजनन सम्बन्धी अशुची की भावना एवं सूतक का परिमार्जन हो जाता है। ज्वार, गेहूँ की उबली हुई घुंघरी (कौंरी) सूर्य भगवान के प्रसाद रूप में वितरित की जाती है। यज्ञोपवीत संस्कार के समय भी सूर्योपासना का विधान है-

सतव तन्त अस्थान पवन कौं।
सूरज कौं है आठौं सूत ए मेया ।।

इसके अतिरिक्त बुण्देलखण्ड में प्रतिदिन दिन में तीन बार-सूर्योदय, मध्यान्ह, सूर्यास्त के समय कामनापूर्ति एवं सूर्य लोक की प्राप्ति हेतु पूजा की जाती है। बुन्देली जन धारणा के अनुसार निश्चित समय की सूर्य उपासना से स्वर्ग ही नहीं मोक्ष तक अनायास सुलभ हो जाता है। सूर्य ग्रह की शान्ति हेतु हरिवंश पुराण का श्रवण माणिक्य धारण, गेहूँ, गुड़, गाय, ताँवा, सोना, दान किया जाता है।

वर्ष भर में प्रत्येक रविवार, मार्गशीष के चारों रविवार, पौषमास की सप्तमी, चैत्रशुक्ल की षष्ठी और सप्तमी आदि शास्त्र सम्मत् तिथियों पर भी सूर्य पूजा एवं व्रत का प्रचलन है। सूर्य सम्बन्धी धारणाऐं, मान्यताऐं तथा विश्वास सगुण-साकार रूप में आज भी बुन्देली लोकगीतों में यत्र-तत्र दृष्टव्य होते है-

जब राजाराम विहाउन चले माता सूरज खौं माथा नवा रईं।
राम बिहा कैं जब घरें लौटैं तोय चढाउं दूध की धार रे।
मचिया बैठी सासो वों सूरज मनावैं।
अरे मोरे सूरज मेंहरी के चाकर मरद अम्बा ढूढंन गये कबै आहैं।
कोपभवन राजा दशरथ सूरज मनायं आदित मनांय हो।
आदित आज भोंर न कढिऔं तौ राम मोर न जागैं, न जागैं हो।
धरती माता सुध-बुध दानी सूरज देत गियान हों माँ।
चन्दा तलफैं, सूरज तलफैं, तलफैं नौ लख तारे।
चन्दा पै खेती करौं सूरज पै करौं खरयान।
चन्दा-सूरज और तरईयां धरती ऊबै बुला दऊं रे।
दुनियाँ में दो ज़ोड़ा बड़ें, एक चन्दा दूजौं सूरज।
चन्दा-सूरज मोरे साख सखिनियाँ, बिरछा देत जमान हो माँ।
जब मोरो कान्हा खिलौना माँगे चन्दा-सूरज की जोडीं।
चन्दा बनाई चाँदनी सूरज बनाव कैसौ तेज।
सारी रात अरज चन्दा सें, सब दिन सूरज ही सैं।
चन्दा थके सूरजा थके मौं की जोत निहार।
ये मोरी भाभी अंचरे में तिल लै चाँवर सूरज मना लेव।
नहाय धोय जब ठांडी भई सूरज मना रईं।
ये मोरे सूरज हम पर होऔं दयाल सजन बोली बोलैं।

सूरज मनाई न पाई ललन भूमि लोट रये।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सूरज देवता तुम्हीं बड़े अरे रैयो, तुमसें बडौ रे कोऊ नैया।
गंगा पैठि बाबा सूरज सें बिनते मोरे बूते बेटी जिन देइयों।
चाँद सूरज किरनी बसत हैं निहुरैं न कन्त हमार।
हँस हँस पहरैं, ओढैं, सूरज मनावैं।
बढ़े बाबुल तोरी बेल मान मोरे राखे ।
जब बरतिया अबधपुर में आये, माता सूरज खौं माथा नावें रे ।
बेटा बहू धन नैन भर देखे, धन-धन भग्य हमाय रे।।
आज सोंहरा की रात, चन्दा तुम उंगिओ।
चन्दा तुम उगिऔ, सूरज जिन उगिऔ।
सूरज के उगत किरणें छिटकीं सीता माथा नवांय।
पूरे हुये मन के मनोरथ राम वर पाइओ।
कुन्ती लागी फुआ तुम्हारी उनने सूरज मंत्र विचारी।
तिनसे करन भये बलधारी, फिर भई पंडा भूप की नारी।
चन्दा मोरे आंगे, सूरज मोरे पांडे देवता सजि हैं बरात हों।
आगूँ आगूँ सूरज पीछूँ रानी तुलसा ठांड़ी जमुना जी के तीर मोरे लाल।
चन्दा तौ सिरहाने रख लेव सूरज रख लेव पांवन जू।
राजे चन्दा सूरज से मोरे भनजे, जा चढ़ जाँय ननद सुख पांय।

बुन्देली मानव हृदय प्रकृति के साथ एकात्म्य रहा है। सूर्य उनके लिये प्रत्यक्ष देवता है। बुन्देली लोकगीतों में सूर्योपासना सम्बन्धी गीतमानव जीवन के विकास की महान प्रेरक शक्ति है। इनमें लोक जीवन की सुख-समद्धि एवं क्रियाशीलता का अति प्राचीन भारतीय आदर्श व्याप्त है। इन गीतों के प्रतीकों में भारतीय संस्कृति एवं वेद मंत्रों की आत्मा बोल रही है। सूर्योपासना सम्बन्धी लोकगीत ज्ञान एवं शान्ति के शक्ति केन्द्र हैं।

बुण्देलखण्ड में प्राचीनकाल से ही सूर्योपासना प्रचलित है। उन्नाव (दतिया) कालपी, बरूआसागर, महोबा और टीकमगढ़ जनपद के जीर्ण-क्षीर्ण. सूर्य मंदिर आज भी इसके प्रमाण की ऐतिहासिक गाथा गा रहे हैं। सूर्य मंदिर कालपी में प्रतिवर्ष अगहन के अन्तिम रविवार को सूर्य यात्रा का मेला लगता है। कहते हैं एक वर्ष यह मेला नहीं लगा था तो उस वर्ष अनाज का एक दाना भी नहीं हुआ था।

जल को देवता कहा जाता है। देवत्व अधिष्ठान के फलस्वरूप जल को अपवित्र करना पाप माना जाता है। नदियों के प्रति पूजा, पवित्रता और मातृस्वरूपा भाव भारतीय हिन्दू लोकधर्म की एक विशलेषता है। वेद, पुराणों में गंगा, यमुना के महात्म्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। हेमद्रि में उल्लेख है कि सरस्वती नदी को पूजा करने से सात प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि होती है ।

आदि बदरी के मंदिरों में गंगा और यमुना का चित्रांकन हुआ है। गंगोत्री में गंगा के मंदिर और मूर्तियाँ हैं । पन्ना से 21 मील दूर अजयगढ़ दुर्ग में गंगा-यमुना की मूर्तियाँ और मंदिर हैं तथा

● (क) सूर्य आत्मा जगतः- ऋगवेद (शाकल) संहिता-1-115

विधिवत उनकी पूजा होती है। प्रायः सभी धार्मिक पर्व, उत्सव, मेले आदि नदी, कुण्ड, तालाब के किनारे सम्पन्न होते हैं। नदी-स्नान पवित्र और पापों को मुक्त करने वाला माना जाता है। नदी तट पर मंदिर स्थापना भी इसी देवत्व-अधिष्ठान की विशेषता है। दशहरा, कार्तिक, पूर्णिमा, संक्रान्ति पर्व पर पवित्र नदियों में स्नान आज भी विशाल जन समूह श्रद्धा पूर्वक करता है।

बुण्देलखण्ड में गंगा, यमुना, नर्मदा, बेतवा आदि पतित-पावन नदियाँ देवियों के रूप में समादृत हैं । उनके जल में आचमन, स्नान, करने से पाप, क्षय, एवं सुख-समृद्धि होती है ऐसी धारणाएँ प्रचलित हैं। नदियाँ शक्ति की विविध रूप समझी जाती हैं अतः इनके बारे में ऐसी मान्यता है कि ये प्रकट होकर शाप या वरदान दे सकती हैं। स्नानार्थियों को बाधा पहुँचाने पर पाप लगता है। बुण्देलखण्ड में लोक धारणा व्याप्त है कि त्रिपथ गामिनी, मृत्यु लोक और पाताल लोक में प्रवाहित होकर त्रिलोक वासियों का उद्धार करतीं हैं। बुन्देली नारियों ने इन नदियों की सम्मानित स्वरों में बड़ी महिमा गायीं हैं। पुराणों की कथा का स्वरूप निम्न गारीं में प्रस्तुत हैं।

भागीरथ ने करी तपस्या, गंगा आन बुलाई मोरे लाल ।
भागीरथ के पुरखा तर गये तर गऔ सब संसार मोरे लाल ।
सरग लोक सें गंगा निकरीं शंकर जटा समानी मोरे लाल ।
शंकर जटा से निकसी गंगा जमुन मिलन कौ धई मोरे लाल ।
मिलती बिरियाँ गंगा झिंझकी हम लुहरी तुम जैठी मोरे लाल ।
जौ बेन हम तुमसें मिल हैं नाव हमारौ मिट जैहे मोरे लाल ।
कायखौं बेन पलट घर जातीं हम तुम मिलकैं रहियें मोरे लाल ।
तुम लुहरी हम जेठी कहिये राखे तुमारौ दुलार मोरे लाल ।
इतनी सुनकैं गंगा उमड़ी दोई मिल संगे हो गई मोरे लाल ।
गंग-जमुन दोई बहिनें मिलकैं जगतरिन हो गई मोरे लाल ।
जो कोऊ संगम आन नहा है तर बैकुण्ठ जैहै मोरे लाल ।

उक्त गारी को सुनकर सहज विश्वास नहीं होता है कि यह अशिक्षिता के मानस की उपज है। पुराणों की ओर भी बुन्देली नारी मानस आकिर्षित हुआ है। बुण्देलखण्ड में बेतवा को सद्गति प्रदायिका, पापों की विनाशकर्ता और कलियुग की गंगा समझा जाता है। धार्मिक मान्यता है कि उसमें स्नान करने से ब्रह्म हत्या, सुरापान जैसे कल्मष भी विनष्ट हो जाते हैं। नदियों के प्रति सगुणोपासना का यह शाश्वत स्वरूप लोकगीतों में निखरा अवश्य है किन्तु उसमें सम्पूर्ण चित्र की अपेक्षा विविध रेखाओं के अंकन से ही हम जन मानस में प्रचलित ईश्वर-आस्था, विश्वास एवं लोक रूढ़ियों का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। निम्न पंक्तियों में नदियों का महत्व, दिव्यत्व अभिघोषित हुआ है-

गढ़ परवत से उतरी गंगा टोरत कोट बिनासत लंका ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

गंगा हनैवे को बरजे, को बुडकी कौ लेय सराप ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

गंगा जमुन को बालुई रेत में, देवी ने हिंडोले बुलाय हो माँ मइया

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

बिच गंगा बिच जमुना , तीरथ बड़े है पिराग ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जस-जस दसरथ दौड़त जाय , गंगा मैया सकलित जाय ।
दूर से गंगा करै जबाव पापी खौ दरसन न देव कि हर गंगा ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गंगा एक ललनवा कै लाने कोख दुख रोवत हों ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
मोय गंगा उबारै लै जाय कामल बारे ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गंगा जमुना दो बेन बनी जगतारन मोरे लाल ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गंगा जी देवी हिलोरत , सरजू डफोरत हो ।
सास तिरबेनो नहातन बिनको ओली गजाधर हो ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गंगा तोरी माता , सरजू बहिनियाँ तोरो हो ।
तिरबेनो भोजी तुम्हारी जाकी ओली भतीजो है ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
हनि हनि कटाये खम्बा और करतुलिया बांस ।
जाय हिंडोलना गडवाय, गंगा जमुन बालू रेत ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गैरी जमुना के तीर चन्दन घने बिरवा हो ।
ओई तरै ठाड़े उनके बाबा पूरैं जनेउआ हो ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गंगा किनारे बबुला सें एक बरूआ पुकारै ।

1.2. वृक्ष संबंधी काव्य गीत

नदियों की तरह वृक्ष संबंधी काव्यगीत भी अति प्राचीन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त वह नग्न उत्तान पदा की मूर्ति है जिसके गर्भ से एक छोटे पौधे को प्रस्फुटित होते दिखाया गया है आदिमानव ने भयग्रस्त अवस्था में नदियों कीं भाँति वृक्षों में भी देवत्त और अलौकित्व भाव उपार्जित किया होगा। प्रकृति के प्रति निकटता स्थापित करने के प्रयास में उन्होंने वृक्षों के प्रति मानवीय प्राणतत्व का समावेश ही नहीं किया प्रत्युत उसे विशिष्ट आत्मीयता और देवत्वपूर्ण व्यक्तित्व भी प्रदान किया । यही परंपरागत गौरव हिन्दु लोकमानस में आज भी व्याप्त है। वेद, पुराण तथा अन्य ग्रन्थों में भी वृक्षों की पूजा अर्चना के उदाहरण मिलते है।

बुण्देलखण्ड में वृक्षों के प्रति श्रद्धा-विश्वास और पुज्यभाव प्रचलित है। देवताओं से संबद्ध होने के कारण वृक्षों में देवत्वभाव और पुज्यभाव स्वाभाविक है। बुण्देलखण्ड में वट, पीपल, शामी, चन्दन, बिल्व, केला, तुलसी आदि वृक्षों का धार्मिक महत्व है। पीपल वृक्ष बोधी वृक्ष के रूप में बौद्ध धर्म में भी श्रद्धा का विषय बना हुआ है। महुआ को शताब्दियों से यहाँ के निवासी मेंवा और मिठाई के रूप में रूचिपूर्वक ग्रहण करते है । बेरी वृक्ष का बेर जिसका गाथा शबरी और बुन्देलखण्ड के : टेर कवि - के रूप में स्मरणीय है। निम्न लोकगीत की पक्तियाँ वृक्षों की उपादेयता एवं स्वरूप को भलिभाँती लक्षित करतीं हैं-

तुलसा बो रईं दो जनी, बैनई बैनें आय ।
तुलसा पूजैं बामना, बोबई नन्द के लाल रे ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चन्दन के रथला बने रेशम डरे है बुनाव ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चन्दन की झंझ ओवरी मोतिन जड़ी है किवारी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

उधौ ल्याय जोग कौ अडुवा, बुरूओ नीम सौ करूवा ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मोरे अंगना में तुलसी कौ बिरछा खाजा राम ध्वाई।
तुलसी कौ बिरछा नित ढारौ, तब भुनसारो होय ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अख्ती खेलन कैसे जाऊँ री वर तरै मेरे लिबौआ ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चन्दन के विरछन सौ लिपटी बरवस बायें पसार ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जैसे पीपर केर पत्ता डोलत है
तैसे पुरूष विन नारी । कौन समुझावै ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

महुआ मेंवा, बेर कलेवा गुलगुल बडी मिठाई ।

1.3. तीर्थ संबंधी काव्यगीत

तीर्थ को धर्म स्थान भी कहा गया है। बुण्देलखण्ड में तीर्थो का विशेष महत्व है यहाँ धार्मिक विश्वास व्याप्त है कि तीर्थो में तीर्थयात्री कर्म कलष धोकर पुण्य लाभ कमाते हैं । तीर्थो से अनन्त फल की प्राप्ति और भटके मन को शांती मिलती है। बुण्देलखण्ड नाना अवतारों की उदय स्थली तथा लीला भूमि होने के कारण यहाँ के तीर्थो की यात्रा का विधान उपादेय और महत्वशाली है। कुण्डेश्वर, उदयेश्वर, कालिजंर, जागेश्वर, चित्रकूट, ओरछा आदि बुण्देलखण्ड के प्रसिद्व तीर्थ स्थल है। जैन तीर्थो में खजुराहो, अहारजी, पपौराजी, देवगढ़, सीरौन, सोनागिरी आदि अतिशय मनोज्ञ जिन बिम्बों के दर्शन भव्य जीवों को अपनी और आकर्षित कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थों पर मुण्डन कराना शुभ माना जाता है । बुन्देली लोकगीत तीर्थों के स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते है। ये गीत मुक्तक या दोहे के रूप में होते है –

गंगा बडी गोदावरी , तीर्थ बड़ा प्रयाग ।
महिमा बड़ी समुन्द्र की, पाप हरैं हरद्वार ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

वृन्दावन बसबौं तजौ उर होन लगी अनरीत ।
तनिक दही के कारने फिर बइयाँ गहत अहीर ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

यही रे भीख के कारने हमें चलने बनारस रे ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

बिच गंगा बिच जमुना तीरथ बड़े हैं पिराग ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

काशी के पण्डित बुलैयौ वेद बचवैयौ महराज ।

बाबागीत या रमटेरा बहुधा तीर्थ यात्रा के अवसर पर ही गाये जातें हैं–

सुरत मोरी तोही से लगी रे ।
तोही से लगी रे, बन्शी वारे से लागे दौउ नैन हो ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सपर लेओ काशी जू की झिरिया हो ।
तोरे कट जैहें जनम के पाप रे ।

मकर संक्रान्ति पर्व के प्रसंग में बाबा गीत या तीर्थयात्रा के गीतों का उल्लेख किया गया है अतः विस्तार युक्तियुक्त नहीं ।

2. धार्मिक गीत

हमारा देश धर्म प्रधान देश है। विशेषकर हिन्दू संस्कृति अनेक प्रकारों के धर्मों से अनुप्राणित है। बहुपासना का प्रभाव इस संस्कृति पर है अतः लोक मानस भी इससे अछुता नहीं रह पाया । हमारे बुण्देलखण्ड में विभिन्न धार्मिक महोत्सव सम्पन्न होते हैं। दूर्गा पुजा, रामनवमी, दशहरा, दीपावली, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, एकादशी, गणेश चतुर्थी, मकर संक्राति, शिवरात्री, होली, तीजा आदि प्रमुख पर्व धार्मिकता के कलेवर को धारण किये है। समस्त पर्वो का आधार धर्म है। इन प्रमुख पर्वो के अतिरिक्त अनेक व्रतों का भी विधान है। अतः जन मानस के चारों ओर धार्मिक चक्र घूमता रहता है। धार्मिक ग्रंथ गीता, राम चरित मानस, वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृतियों, श्रुतियों आदि धार्मिक साहित्य की बहुलता के कारण लोक साहित्य में एक स्वतंत्र विचार धारा धार्मिक लोक काव्य की है। इस काव्य के अन्तर्गत धार्मिक आख्यानों का लोक काव्य में सहज व सुन्दर वर्णन मिलता है। भक्त ध्रुव प्रहलाद, मूरध्वज, हनुमान, भरत आदि के चरित्रों का वर्णन भरा पड़ा है। सती सावित्री, अनुसुइया आदि के आदर्शों से लोक साहित्य भरा पड़ा है। राम, कृष्ण निर्गुण के लोक साहित्य की सबसे अधिक मात्रा है। इष्ट देवता और कुल देवताओं तक का लोक काव्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है । जैसे - कारस देव की गोटें, दुर्गा के भजन आदि इसके प्रमाण है। राम विवाह का लोककाव्य देखिए जिसमें प्रत्येक वर :राम- तथा प्रत्येक वधू सीता बनती है-

बने दूला छवि देखों भगवान की ,
दुलहिन बनीं सिया जानकी
जैसइ दुला अबध बिहारी,
जैसइ दुलहिन जनक दुलारी,
जामें तन मन की बलिहारी
मंशा पूरन सबके अरमान की।
दुलहिन बनीं सिया जानकी ।
सिर पै मोर मुकुट की धारें,
वागौ बारम्बार समारे ।
हो रई फलन की बौछारें,
शोभा बरनी न जाए धनुष वाण की,
दुलहिन बनीं सिया जानकी ।
राजा खड़े जनक के द्वार

संग में चारउ राज कुमार
देखन आए सब नर नार
धूम छाई है डंका विशान की
दुलहिन बनीं सिया जानकी
बने दूला छवि देखों भगवान की ,
दुलहिन बनीं सिया जानकी ।

इसी प्रकार से शिव, कृष्ण आदि से संबंधित सहस्त्रों मोहक काव्य माला है । पूजन तथा धार्मिक अवसरों पर गाए जाने वाले गीत धार्मिक गीत या भजन कहे जाते हैं। भजन में ईश्वर स्मरण और उसकी महिमा का बखान होता है।भटके मन को भजन से शान्ति मिलती है भजन रहस्यवादी तथा सगुण निर्गुण उपासना परक होते हैं। उनमें चेतावनी उपदेश नीति वचन के विभिन्न दृष्टान्तों का समावेश रहता है। ये स्फुट और पौराणिक कथाओं के रूप में भी गाए जाते हैं । परन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सम्प्रतिस्वरूप उदाहरण मात्र ही प्रस्तुत करना तर्कसंगत माना गया है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है की लोककाव्य में धार्मिक लोककाव्य का बाहुल्य हैं।धार्मिक अवसरों पर गाए जाने वाले निम्नलिखित भजन उपर्युक्त भावों की विशद विवेचना करते है-

हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
पहली बिपत राजा दशरथ पै आइ , राम भये बनवासी ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
दुजी बिपत राजा सरबण पै बीती, बाण लगौ उनकौ छाती ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
तीजी बिपत रानी सीता पै आई, हर लै गयौ रावण पापी ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
चौथी बिपत राजा रावण पै बीती, सोने की लंका बिनासी ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
फिर सैं बिपत रानी सीता पै आई वन में खाई वनपाती ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।
बन ही में उन लवकुश जाये, धरती में अन्त समाती ।
हर बिन कोऊ न विपत कौ साथी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

दुविधा कब जैहै जा मन की ।
इन पाउंन परकम्मा देउ छाया गोबर धन की ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चरखा परै हटालै री, मोरी सुरत राम सी लागी ।
ना बोए हमने बाग बगीचे , ना बोई हमनें बाड़ी ।
औरों की बाड़ी, पीढ़ी छोड़ी छोड़ौं कातवौ सूत ।
औरों की बाड़ी से क्या पाड़ा आप ही फिरै उघाड़ी ।
चरखा छोड़ों पीढ़ी छोड़ीं छोड़ौं कातवौ सूत ।
संग की सहेली सबरी छोड़ी छोड़ दऔ सास कौ पूत ।

मीरा की सासो उठ बोलीं, सुन ले मीरा बाई ।
हमरे घर में राम नहीं था, राम कहाँ से लाई ।
मीरा बोली सुन मोरी माता, मोरी सूरत राम से लागी ।
सावरियाँ गिरधारी आंगे, बांध घूंघरू नाची ।
रामई राम रटन लगे जिभिया ।
मुख कहे हम हरि गुन गावैं ,
कान कहैं हम सुनत पुरान
रामई राम रटन लगे जिभिया ।
अखियाँ कहें हम दर्शन करवॉय,
मनुआ कहे हम धरत ध्यान
रामई राम रटन लगे जिभिया ।
गोड़े कहैं हम तीरथ करवांय,
हाथ कहैं हम देबैं दान
रामई राम रटन लगे जिभिया ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सखी री मैंने लये किसन जी मोल ।
काय की डण्डी, काय के पलवा , काय की डरी है डोर
सखी री मैंने लये किसन जी मोल ।
नेह की डण्डी धर्म का पलवा, सत की डरी है डोर ।
सखी री मैंने प्रेम की डारी है डोर ।
सोनौं चांदी सबही चढ़ाओं तबई नई भये पूरे मोर ।
एक पत्ता तुलसी को चढ़ाओं , सखी री वे तो हो गये पूरे मोर ।
वृन्दावन की कुन्ज गलन में सखी री सखियन से किल्लोल ।
सखी री मैनें लये किसन जी मोल ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तैनें मोरो दूध लजायौ पवन सुत, तैनें मोरो दूध लजायौ ।
होतउ से सूरज खौ लीलौ ? लाला जग कर डारौ अंधयारौ ।
देवन जाय करी जब बिनतौ भैया देवन कष्ट निवारौ ।
काहे कौ सजी है रीछ बन्दरिया, काहे कौ खौ कटक सजायौ ।
सात समुन्दर तुमने नाके , काहे खौं सेत बंधायौ ।
मारी उचाट सुरज खौ लीलौ, बो बल कहाँ गवायौ ।
लंका बात तनक सी कहिये, राम चन्द्र भटकायौ ।
बोलौ नै मारो मोरी माता अंजनी, सेंट पियन नहीं पायौ ।
तुलसी दास आशा रघुवर की हरि चरणों चित्त लायौ ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

राज करम के राजा जैहैं, रूपवन्त सी नारी ।
वेद पढ़न्ते ब्रहमा जैहे, नारद मुनि से ज्ञानी ।
ये जाएगा रे जौ तन हम जानी ।
योगी , तपी मुनिश्वर जैहै उर जैहै अभिमानी ।

एक समय धरणी चली जैहैं जैहैं पवन औ पानी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

ये जाएगा रे जौ तन हम जानी ।
चार जनी जुर चली बजारैं , एक से एक सयानी ।
उठ गई हाट भई न सौदा, मन ही मन पछतानी ।
ये जाएगा रे जौ तन हम जानी ।
कहत कबीर सुनौं भई साधौं, जौ पथ है कंटकानी ।
जोई पथ कौ जो करै निवारौ वो पथ हैं निरवानी ।
ये जाएगा रे जौ तन हम जानी ।

चैत्र के प्रत्येक सोमवार को जगन्नाथपुरी से लाए वेंत और कलश के साथ जगन्नाथ जी की पूजा करते समय निम्न गीत गाया जाता है-

भले बिराजे जू उड़ीसा जगन्नाथपुरी में। तुम तो भले विराजे जू ।
कब से छोड़ी मथुरा वृन्दावन, कब से छोड़ीं काशी ।
झारखण्ड में आन बिराजे, वृन्दावन के वासी । तुम तो भले बिराजे जू
अठारा चौकी लागैं जात्री जान न पावैं ।
गुजरिया कौ झारौ लव है नागा लटट बजाबें । तुम तो भले बिराजे जू
नील चक्र पैं ध्वजा बिराजैं माथे सौहे हीरा ।
स्वामी आगे सेवक नाचे, कह गए दास कबीरा। तुम तो भले बिराजे जू
उड़ीसा जगन्नाथपुरी में। तुम तो भले विराजे जू ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जम ठाडें द्वार हंसा कठैरा नहीं छोड़ रये ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

राधा तुम बडभागिनी वर पाये भगवान ।
काशी जू में तप किये दै दै कंचन दान ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

धनुष चढ़ाए राम ने व्यक्ति भयें सब भूत ।
मगन भई सिया जानकी, देख राम के रूप ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

भला कहीं संसार में सोने कौं मृग होय ।
होनी होकर के रहैं मेंट सके न कोय ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

नाव गरीब निवाज कहौ तौ कैसे कैं तारहौ ।
अंका तारौ बंका तारौ तारे सधन कलाई ।
सुआ पढ़ावत गनका तारी तारे सदन कसाई ।
लंका गरजे अरे रावना, अवधपुरी भगवान ।
इन दोउन के वे भैया, बीच में गरज रये हनुमान ।

उपर्युक्त भजनों एवं धार्मिक गीतों में भगवान के प्रति भक्त हृदय की कोमल भावनाओं का

●सम्पूर्ण भजन के लिए देखिए - बुन्देलखण्डीय लोकगीत - शिव सहाय चतुर्वेदी -1959 पृष्ठ संख्या- 62

अध्यात्मिक समर्पण तथा एकनिष्ठ श्रृद्धा भावना अभिव्यंजित हुई है । बुन्देली लोक जीवन में ईश्वर उपासना के विभिन्न रूपों में भजन, नाम स्मरण ही मुक्ति प्राप्ति की सरलतम अभिव्यक्ति हैं। सांसारिक विषय वासनाओं एवं मिथ्या प्रलोभनों के समस्त सामान्य जन ईश्वरोन्मुखी हो जाता है तब धार्मिक गीतों का स्वतः ही जन्म होता है ।

हिन्दी के आदिकाल में वैदिक यज्ञ, मूर्ति-पूजा, हठयोग-साधना जैन, बौद्ध आदि उपासना पद्धतियाँ एक साथ प्रचलित थी । भक्तिकाल तथा रीतिकाल में उपासना के सगुण निर्गुण दोनों स्वरूपों को ग्रहण किया गया । जिसमें पौराणिक युगीन उपासना का प्रसार ही अधिक परिलक्षित होता है। आधुनिक काल में उपासना के नवीन परिष्कृत 'लोकसेवा' को स्वीकार किया गया है । साथ ही सगुण निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचना आधुनिक सन्दर्भो में किया गया है इस प्रकार भारतीय स्ववरूप के अन्तर्गत सैन्धव युग से लेकर काल तक की उपासना का पर्याप्त पर्यवेक्षण किया गया है। वर्तमान भारत में पौराणिक उपासना का प्रचलन है । सनातन आचार्यों ने भी पौराणिक रूप की उपासना की हैं। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से धार्मिक आराधना गीतों के विभिन्न स्वरूपों का पृथक-पृथक विवेचन इस प्रकार है :-

2.1. शक्ति उपासना के गीत

उपनिषद काल में शक्ति का प्रादुर्भाव पौराणिक युग में स्वरूप निर्धारण तथा परवर्ती युगों में उत्तरोत्तर विकास हुआ । शक्ति आदि काल या वीरगाथा काल की बहुजन आराध्या देवी रहीं हैं। । इस युग में कवियों ने उन्हें दुर्गा काली चामुण्डा राधा पार्वती महामाया तथा सरस्वती आदि विभिन्न रूपों में कार्यो को सम्पादित करते चित्रित किया है। इस सृष्टि का अद्भुत विनाश, दुष्टों का दमन और पापों का नाश करने वाली शक्ति ही है। शक्ति अपने सौम्य रूप में मंगल कारिणी संकटहारिणी एवं जगतारिणी है तथा विद्या बुद्धि और बल प्रदान करने वाली है । आदि काल में बली की प्रधानता थी तथा नरसंहार से मनोरथ सिद्धि का विश्वास जनमानस में व्याप्त था । साथ ही यह भी मान्यता थी कि वही विश्व को बन्धन मुक्त तथा बंधन युक्त करती है वह बाझों को पुत्र और शत्रुओं से विजय दिलाती हैं । वह भोग, योग मुक्ति प्रदाता रूप में भी वर्णित है। इस प्रकार सांख्य में पुरूष के साथ, प्रकृति वेदान्त में बृह्ममा के साथ मायातांत्रिक मत में शिव शक्ति तथा पुरूषों में विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्राहमा के साथ सरस्वती, शंकर पार्वती, राम के साथ सीता और कृष्ण साथ राधा की विध्यमानता शक्तिवाद के व्यापक प्रभाव का सूचक है।

शक्तिोपसना की प्राचीनतम रूप सिन्धु सभ्यता ही मातृदेवी पूजा में तथा वैदिक्कालीन आदि शक्ति की प्रतिष्ठा में मिलता है । सिन्धु युग से लेकर पौराणिक युग तक शक्ति और उसके समकक्ष विभिन्न देवियों की उपासना का प्रचलन था । आदि काल से आधुनिक काल तक शास्त्रीय दार्शनिक रूप देने की प्रकिया में विशेष समादर प्राप्त हुआ । शक्ति की स्वतन्त्र रूप से पूजा स्वरूप और उपासना में विविधतायें दृष्टि गोचर होतीं हैं। दुर्गा, क्षप्तशती, और देवी भागवत शक्तोपासना के मुख्य आधार ग्रन्थ हैं ।

शक्ति से समन्वित शिव के सृष्टि, रचना चालन, संहार सम्बंधी कार्यकलापों में शक्ति नियोजित रूप में प्रतिष्ठित है-

शिव से संयुक्त शक्ति जागरित मानवता की जय हो ।
ज्ञान शक्ति से शक्ति श्रेय और सुन्दर से अनुरागे ।।

शक्ति सभी कार्यो के मूल में है। शक्ति का नारी स्वरूप सृष्टि की प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः विशेष महत्वपूर्ण है। पार्वती को आदि शक्ति माना गया है। आदि शक्ति ने विश्व मंगला विश्रुत शैलकुमारी शक्ति की आज्ञा से ही सृष्टि साकार रूप धारण कर सचेतन बनती है-

जिनकी प्रीती उदार चेतना बन जीवन छाई ।
जिनकी कृपा अपार प्रकृति में कृति गौरव बन आई ।

आधुनिक काल में शक्ति की तन्त्रोपासना का घृणित रूप प्रायः निम्न जातियों में प्रचलित है। पूजन में बलिदान चमत्कार तांत्रिकों की शक्ति उपासना में मांस, मदिरा, मैथुन, मुद्रा आदि की और सामान्य जनवर्ग अधिक आकृष्ट हुआ है। परन्तु शाक्तोपासना की विशुद्ध दुर्लभ भक्ति भावना से अनुप्राणित मूलरूप प्रबुद्ध जागरूक उपासकों के प्रयत्न से आज तक सुरक्षित है। आधुनिक काल के जीवन में शील और सौन्दर्य की रक्षा हेतु शाक्तोपासना की आवश्यक्ता है, क्योंकि उन्हीं की इच्छा शक्ति की अनुभूति की परम्परा प्रचलित है।

चिप्तिरूपेण या कृत्सनमेतद व्याप्यस्थिता जगत ।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमों नमः ।

ऋग्वेद, मार्कण्डेय पुराण, देवी पुराण, देवोभागवत महाशक्ति तत्व का प्रतिपादन करता है। शक्ति के मुख्य रूप नौ रूप है- 1. महाकाली 2. महालक्ष्मी 3. महासरस्वती 4. योगमाया 6. शाकान्मरी 7. दुर्गा 8. भ्रामरी 9. चण्ड़िका

बुण्देलखण्ड में देवी उपासना का सर्वोपरि स्थान है। प्रत्येक मांगलिक कार्य शुभारंभ में देवी आराधना के गीत अनिवार्य रूप से गाये जाते हैं। इस प्रकार अनेक मनोकामनायें पूर्ण करने के लिए निम्न गीत गाये जाते है-

लिख लिख पतियॉं भेजी राम ने तुम दुर्गा चली आव मॉं
पतियॉं बाची मन मुखम्यानी काहे कौ राम बुलाव मॉं ।
जाव जाव रे बीस लगडवा बन के सिंह ल्बाय मॉं ।
इक बन ढूढ़े लंगुरा दूजे बन ढूढ़े तीजे पहुँचे जाय मॉं ।
ढूढे सिंह ना मिले मोरा माया लौट भुवन को आय मॉं ।
हाथ लय फूलों की हडिया दूजे हाथन त्रिसूल हो मॉं ।
भूरा सिंह पर पाखर डारी सातऊ सिंह जुए आये मॉं ।
भूरा सिंह पर पाखर डारी भरज मई असवार मॉं ।
छब्बीस कोट के देवता सज रये, दाहिने सजे हनुमान हो मॉं ।
सब देवतन के बजे नगाड़े, देवी जी कौ बाजौ संख हो मॉं ।

देवी के द्वार कोड़ी, अन्धे, निर्धन बाझं अपनी व्यथा कथा कहकर सुख समृद्धि हेतु, प्रार्थना और अर्चना करते हैं । बुण्देलखण्ड में शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक शक्ति नव स्फूर्ति तथा मनोरथ सिद्धि के प्रयोजनार्थ नौ दिन तक देवी गीतों का निरन्तर गायन जारी रहता है। स्त्रियॉं बॉझवन की

कसक और मानसिक पीड़ा से अश्रुपूरित हो जगदम्मा से पुत्र प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती हैं तथा सौभाग्याकांक्षा, धन सम्पत्ति की कामना में भक्ति गीत गाती है। पूर्ण वरदान की याचना करतीं हैं।

अमौ भवन बताव जगदम्वे
मैया कौ भवन बनौ नौरंगा तेरे लेहे गंगा ऊपर विन्दावासिनी
बैठ सिंहासन देवी धरम करत हैं छानत दूध और पानी ।
अंधरन आँखें कोढ़न काया मैया बांझिन गोद बिछायें ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

दूध के कारण मैया जई वन रैहों, पूत की आस लगाऊ
की मैया मोरी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कर में त्रिसूल मैया सुहाई हैं ।
जग की आदि शक्ति भवानी । मानत ब्रह्मा, विष्णु ज्ञानी ।
करियों पूरन मोरो काज रखना जग में जग की लाज ।
काल संकट सब बाधा हटाई हैं, शीश चरणों में नवाई हैं ।

बुण्देलखण्ड का जीवन व्यापक रूप से यह धार्मिक विश्वास प्राप्त हैं। कि देवी के व्रत अुष्ठान से आत्मा को दिव्य शक्ति प्राप्त होती हैं । नवरात्रि भारतीय महत्व के लिये शक्ति पूजन, शक्ति संर्बधन और शक्ति संचय के दिन हैं । नवरात्रि में शक्ति की अराधना तथा शास्त्र विहित व्रतादि के आचरण द्वारा हम विविध शक्ति का संचय कर भावी जीवन यात्रा के मार्ग अग्रसर होते हैं । व्रत के समाप्ती पर कन्या लांगुरा के रुप में लड़की लड़कों कों निमंत्रित किया जाता हैं। यहाँ देवी का अपरम्पार माया का उल्लेख इस गीत में दृष्टव्य हैं -

गंगा जुमुन की बालू रेत में हाल गये नवल हिडोंला हों मॉय ।
काहे के वे बने पालना काहे के दोई खम्भ हो मॉय ।
अगर चन्दन के बने पालना, मलयागिरि दोई खम्भ हो मॉय ।
को जौ झूलै मैया को जो झूलावे, को जो मिचकी लगाये हों माय ।
देवी झूले लंगुर झूलाये, हनुमत मिचिक लगाय हों मॉय ।

कुँवार और चैत्र की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को घर के लिये पुते कमरे में जिसे दीवाला कहते हैं । एक व्यक्ति पवित्रता के साथ टोकरी में या बड़े दोंना में मिट्टी और खाद मिलाकर गेंहूँ बो देता हैं अष्टमी तक ज्वारे बड़े हो जाते हैं। इस दिन इनका पूजन होता हैं । इस दिन स्त्रियाँ सजधज कर देवी के भजन गातीं हैं । देवी कि भक्त व गुनियाँ गालों में त्रिशूल और सांगे छेदकर जुलूस के साथ साथ चलतें है देवी की कृपा ही समझी जाये कि त्रिशूल गालों में छेदने पर एक बूंद रक्त तक नहीं निकलता । क्वार के जवारों में रवि कि फसल का अनुमान लगाया जाता है। रात्री में भक्तगण नौ दिन तक देवी की प्रशंसा में भगतें गातें है-

मैया के गुन गाहयों हो माँ
तैरौ रूप लक्ष्मी तेरो रूप गौरा तैरौ रूप सब संसार हो माय ।

तेतीस कोट सुर तोरे ढिंग मैया, झुक झुक करत जुहार हो माय ।
ब्रह्मा विष्णु संकर तोरी करत रहत मनुहर हो माय ।

इसी प्रकार देवी को प्रसन्न करने हेतु लांगुर गीत गाये जाते है।

निस अधिंयारी कारी विजुरी चमक ।
माई करना खौ सिंध पलानों माँ ।
सिंध पलानौ वीरा लंगुरे पलाये ।
सेवक भुवनों जाय हो माँ ।
लगुरा ने कई दानौ वरधानों देवी मिताय हो माँय ।
तुम जो जाव मोरे लगुरवा, वन खौ सिंहाल्याव हो माँय ।

बुन्देलखण्ड में देवी माँ का सेवक और प्रिय होने के कारण वह भक्त जनों की सेवा भक्ति का अधिकारी है। लांगुरियाँ गाने से लांगुर की सेवा करने में देवी को प्रसन्न करने की भूमिका निर्वाहन ही प्रमुख प्रयोजन है। साथ ही भक्त गणों के कष्टों का निवारण भी होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि देवी गीतों लंगुरिया गातों में शक्तियो उपासना की गहरी आस्था है। लंगुरिया गीतों में सगुणोपासना के अन्तर्गत भक्ति प्रेम तथा श्रृंगार के स्वरूप को अभिव्यक्त करते है। नवरात्री के अवसर पर देवियों की पूजा होती है । गायन, वादन, नृत्य के कार्यक्रम के साथ-साथ मेलों में विशाल आयोजन होते है । इस प्रकार गीतों से ये पता चलता है कि शाक्तोपासना में ही देवी उपासना का महत्व हैं। क्योंकि समस्त देवियों की शक्ति और उनके आराध्यों (भक्त) की सभी मनोकामनायें उनकी उपासना से पूर्ण हो जाती है।

2.2. शैवभक्ति के गीत एवं गणेशभक्ति के गीत

भारतीय शैवभक्ति के क्षेत्र में शिव निर्गुण-निराकार परमतत्व के रूप में ग्रहित है, पर उनका सगुण रूप केवल भक्तिकाव्य में ही वर्जित रूद्र पौराणिक तथा पार्वती काल मे शिव रूप में प्रतिष्ठित होते गये । शिव को परमयोगी कहा गया है। उनकी योग संबंधी प्रवृत्तियों प्रणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण का इस युग में विकास हुआ । इसके साथ ही साथ इस युग के लोक जीवन में अनेक महाशक्तिशाली संहारकारी और परम मंगलकारी पौराणिक रूप की उपासना का भी व्यापक प्रचलन था। शिव उपासना के रूपों का वैदिक परम्परा स्मार्तों में पौराणिक परम्परा के शैव भक्तों में वाममार्गी और दक्षिणमार्गी तांत्रिकों में भावना विश्वास और लक्ष्य के अनुसार क्रमिक विकास होता गया । पौराणिक साहित्यानुसार ज्ञान, वैराग्य, एश्वर्य, तपस्या, क्षमा, सृष्टि योग्यता शासन तथा आत्म संघर्ष के गुण शिव में निहित है। आदिकाल में शिवोपासना के स्वरूप चित्रण में शिवपुराण का आधार ग्रहण किया गया -

महादेव सिर जोरिया, सब जग मान्यों चिप्तु
बनिता सहित प्रसन्न है, किय पुत्री ते पुत्र ।
जाहि धाम चौरंगि सुत हम दिभव वरदान
एक बार समता करै, कर सुर कह धयमान ।

मुनियों के गगन तलक में भी, जो प्रभुवर सहज न आते है
देवों में है, वे महादेव, सारी वसुधा त्राता है ।

बुण्देलखण्ड पुराणों के सगुण रूप ही उपासना का प्रतिपादन है। पौराणिक साहित्यानुसार ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य, तपस्या, क्षमा, धृति, सृष्टि, योग्यता, शासन गुण और आत्मा संबोध ये दस गुण शंकर में सदैव वर्तमान रहते है। वे देवता असुर और ऋषियों में सबसे अधिक तेजस्वी है। इसी से उनका नाम महादेव है। उन्होंने ऐश्वर्य से देवों को, बल से असुरों को और ज्ञान से ऋषियों को पराजित किया है । शिव परमयोगी है । शिव के आठ रूप पाँच तत्व सूर्य चन्द्र और दीक्षित ब्राह्ममण के प्रतीक है।

हमारे क्षेत्र में विभिन्न अवसरों पर शिवोपासना की जाती है। सप्ताह में प्रत्येक सोमवार, पक्ष में प्रत्येक त्रयोदशी वर्ष में एक बार शिव रात्री, हरतालिका तीज आदि व्रतों के अवसर पर पूजोपासना तथा विवाहोत्सव पर शिव विवाह गान की परम्परा यहाँ प्रचलित है। प्रत्येक माह कृष्ण चतुर्थी के अवसर पर दीपावली पर गणेश पूजा विशेष रूप से होती है। वैसे तो प्रत्येक मंगल कार्यो, संस्कारों तीर्थ यात्रा के समय तथा सामाजिक, धार्मिक, व्रत, उत्सव त्यौहारों आदि के विभिन्न अवसरों पर निर्विध्न कार्य की सफलता हेतु गणेश जी प्रथम पूज्यपद के अधिकारी है। शिव और गणेश बुण्देलखण्ड की लोक संस्कृति से पूर्ण रूपेण जुड़े हुये है। इस प्रकार शिव की उपासना सभी लोग गीतों में देखनें को मिलती है।

सिया जू कौ चढ़त मोरे लाल
भीतर से सिय जू को बुलाये के प्रथम गनेश पुजाये मोरे लाल।
हे शंकर करूणा निधान प्रभु लीजौं खबर हमारी रे
भवसागर से पार करो में आयो सरण तिहारी रे।
सीस भोला चढायें गंग निकल, नाग काला लपेटे अंग निकले।
वास पर्वत पै भैाला हमारें करें दीन दुखियों के संकट क्षण में हरे।
कहों शंकर भोले भगवान।
अतुल करूणाकर कृपा निधान।
हो जिस भांति वाहय अन्तर में भगवान व्याप्त समान।
उसी भांति पूजन का भी है सूक्ष्म स्थूल विधाय।
शिवपुर वास करन जो चाहे ।
तो प्रभाव मानस पूजा विधि, बुधि निरमल निरवाहें।

बहुत सारे गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि शंकर जी की उपासना में मिश्रित भक्ति भावना ही प्रमुख है। राम कृष्ण जैसी मैत्री व प्रेम भावना का इनमें आभाव है। शंकर भगवान शीघ्र प्रसन्न और शीघ्र स्पष्ट होने वाले देवता है। मनुष्य अपनी अनेक मनोकामना पूर्ण करने के लिये इनकी उपासना करता है जिसका स्पष्ट रूप लोकगीतों में देखने को मिलता है। लोक जीवन के धार्मिक और उपासनात्मक विश्वासों के चित्रण में शिव व गणेश जी की भक्ति व्यापकता का परिचय मिलता है। बुण्देलखण्ड में मान्यता है कि शिव जी गणेश आशुतोष है। कल्याण करने वाले हैं। वे महादानी है

उनके दरवार से कोई भी खाली नहीं लौटता उनकी भक्ति देवता, मानव, दैत्य, शत्रु दानव आदि सभी करते है व सभी वरदान पाते है।

भारत में शैवोपासना, गणेशोपासना के अनेक प्रचलित रूपों में से बुण्देलखण्ड गीतों में केवल निर्गुण निराकार परमतत्व तथा सगुण साकार रूप की कल्पना में कुछ विधिवत पक्षों की ही अभिव्यक्ति हुई है। शिवलिंग की प्रताकोषसनां है। दास्यभाव की उपासना शैवोपासना का प्रथम स्तर तथा शरण गति द्वितीय स्तर पर उपासना है।

2.3. वैष्णव भक्ति के गीत

भक्तिकालीन वैष्णव मतावलम्बियों में रामानुज और समानन्द में लक्ष्मी नारायण एवं राम सीता के ऐश्वर्य एवं दास्यभाव की उपासना की । बाल्लभाचार्य ने कृष्ण के बालरूप की चैतन्य ने शक्तिमान कृष्ण की और हितहरितवंश ने लीलापुरूषोत्तम कृष्ण के माधुर्य भाव की उपासना की । वैष्णयोपासना का प्रभाव आधुनिक काल की राम कृष्णोपासना में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस युग में चित्त आचित्त विशिष्ट ईश्वर को प्रतिपादन जीव जगत और ईश्वर के रूप में किया गया है। वैष्णोपासना में जीव और ईश्वर की भांति जगत को नित्य मानकर उपासना को ईश्वर प्राप्ति का साधन स्वीकारा गया है। आधुनिक कालीन वैष्णोपासना में राम कृष्णादि के अवसर एवं नवीन परिष्कृत व्यापक स्वरूप की विवेचना हुई है लेकिन इस युग में कई वैष्णवाचार्यो ने शैव और शाक्योपासना के विभिन्न सिद्धान्तों, विश्वासों एवं उपासना पद्धतियों को भी अपने ढ़ंग से रूपांतर कर लिया है। यहाँ कृष्णोपासना व रामोपासना के लोकगीतों का अलग अलग अध्ययन किया जा रहा है।

2.4. कृष्ण भक्ति के गीत

भाद्रपक्ष कृष्ण तृतीय अष्टमी को अर्द्धरात्रि में कृष्ण जन्माष्टिमी का समारोह मनाया जाता है। इस दिन रात्रि बारह बजे धार्मिक कार्यक्रम-कीर्तन भजन गायन वादन प्रवचन में आयोजन के साथ मंदिरों में झाकियों और रासलीलायें अपूर्व आनन्द उल्लास का सृजन करता है। कृष्णजन्म से सम्बंधित लोकगीत इस प्रकार है-

यादों बदी अष्टमी के दिन जन्म लडनों नन्दलाला ।
हातन पावन बेड़ी खुल गई, खुले है जंजीरन ताला ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

ब्रज में जनम लियौ युदुराई ।
गोकुल में आनन्द भओं है घर घर बजत बधाई ।
ब्रज में जनम लियौ युदुराई ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

घर घर बजत है बधैया देखो गोकुल नगरी
रैन अंधेरी यादों अष्टमी श्याम लियो अवतार
ऐसी माया रची श्याम ने सोये पहरेदार ।।
अली भरे है लागत वृन्दावन नीको ।
अली मोहे लागत ब्रन्दावन नीबों
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा दर्शन मोहित जी को

कुन्ज कुंज में घूमत राधिका सब्द सुने मुरली को ।

कृष्ण लीला के गीत-

मोहन बन गये नर से नारी
करकै सोलहु श्रृंगार ।
पहनी चूँडी लगायें है तेरे माथे पर ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

लै गयौ चीर मुरारी मैं कैंसी करौं ।
हमारों हर लै गयों चीर मुरारी ।
लैक चीर कदम पर बैठो में जल मांझ उधारी ।।

कृष्ण भक्ति के गीत

मदन मुरारी घनश्याम सावरे आ जायो ।
मल मल कर असनान कराऊँ घिस घिस चन्दन खौर लगाऊँ
पूजा करौ सुबों शाम दरस दिखा जइयो।

जागरण गीत

निम्न गीत में यशोदा की ममता और मंगलमयी कामना में वात्सल्य शक्ति भावना के शाश्वत चित्र अंकित है।

उठौ भोरे हरजू भये भुनसारे गड्डअन के बंद खोलों सकारे
जागौ हरजू लगावे जसोदा जागौ हो मथुरा के वासी।

श्री कृष्ण मनुष्य की पूर्णता के प्रतीक है उनकी अलौकिक घटनाओं के पीछे मनुष्य की वे कल्पनायें वे इच्छायें छिपी हुई है जिन्हें वह अपने में देखना चाहती है । मनुष्य की सामर्थ्य पूर्ण कामना और संपूर्ण पूर्णता ही श्री कृष्ण के चरित्र में विकसित हुई है।

कृष्ण तुम भूमिभार टारौ
कृष्ण तुम गोवर्धन धारौ
जय हो काली नाग नथैया की ।

2.5. राम भक्ति के गीत

आधुनिक काल में पूर्ववती युगानुसार श्री राम के सगुण निगुर्ण दोनों रूपों की आराधना हुई है श्री मद्भागवत की नवधा भक्ति का रस युग की रामोपासना पर पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। स्वस्थ और गुणों का वर्णन करने से उपासक के मानस में भगवान के प्रति पवित्र भाव और प्रेम उद्भुत हो जाता है।

रामोपासना के जन्ममरण रूप क्षुधा पिपासा की शान्ति हो ही जाती है। मूर्ख भी त्रिकालदर्शी हो जाता है -

बन्दो राम नाम अविनासी। अचल अखण्ड चराचर वासी।

अब सुख कारण रहण दुखभारी। जपैं जाहिं शिव शैलकुमारी।

राम नाम स्मरण के प्रभाव से जीव ईश्वर से साक्षात्कार हो जाता है और उसके जप, तप, योग्य साधना, ज्ञान, तीर्थ, व्रत आदि सार्थक हो जाते है। उपासना के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति निम्न क्रियाओं द्वारा बताई गई है।

प्रभु गुणों का श्रवण कीर्तन स्मरण चिन्तन भाव
चार है ये अंग जिनमें ईश सेवा भाव।

राम के जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले लोक गीत-

जन्में चारों भैया अवधपुरी बाजे बधैया
चन्दा भी नाचें सूरज भी नाचे।
पवन नाचें ता ता थैया। अवधपुरी------------।
ब्रम्हा भी नाचें भोले भी नाचे
नारद नाचें ता ता थैया
चित्रकूट निज धाम, हमको लगत पियारो राम।

विवाह के अवसर पर प्रायः राम और सीता के नाम लेकर ही लोकगीत गाये जाते है-

कंगन छोड़ने के अवसर परः-
जौ न जानौ धनुष को तोखों, कठन कंगन गाँठ ठोकौ।
खूब सुनी तुमरी प्रभुताई, तुमने पाहन नारि बनाई।
करी मुनि यज्ञन की रखवारी
करी मुनि यज्ञन की रखवारी गौतम नार अहिल्या नारी।
मिथला पुर मोहिनियाँ हारी, करें विकल सकल नर नारी।
तुम न जानों सभा बीच चित चोखी, कठन संकन गाँठ छौरयो।

निम्नगीत में जीवन के प्रति अनुराग के साथ आत्म समर्पण का भाव निहित है :-

जग में सुन्दर है दो नाम चाहे कृष्ण कहो या राम।
एक हृदय में राम पढ़ावें एक पाप को ताप हटावें।
दोनों सुख के सागर हैं दोनों करते पूरन काम।।

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते है कि राम कृष्ण के सगुण व निर्गुण रूप की उपासना का प्रचलन आज भी हैं यहाँ की संस्कृति राम कृष्ण मय है। यहाँ के निवासी उनकी माधुर्य ऐश्वर्य पूर्ण लीलाओं के उपासक हैं। बुन्देलखण्ड में प्रत्येक अवसर पर राम कृष्ण के चरित्र से प्रेरणा लेकर अपने मन और हृदय को उनके अधिक नजदीक पहुँचा देते है। लोकगीतों में सामान्य जीवन चित्रण आवास, खान-पान, परिधान, श्रृंगार, प्रसाधन के अतिरिक्त किसी भी हर्षोल्लास के अवसर पर पारिवारिक

भावनाओं एवं आदेशमय मानवीय रूप के साथ उनके देवत्व रूप की भी पहचान अभिव्यक्ति हुई है। जन्म संस्कार, दस्टोन, नामकरण, अन्न तथा जनेऊ, विवाह संस्कार, बन्ना, लगुन, तेल, मण्डप, चढ़ावा, जेवना, भाँवर, विदा तथा दादरे आदि के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों के वर्णनों में राम कृष्ण सीता, राधा तथा कौशल्या दशरथ का ही प्राधान्य है। इसी तरह सामाजिक धार्मिक पर्व उत्सव त्यौहार जन्माष्टमी कार्तिक स्नान, बसन्तोत्सव, होली, राम नवमी आदि अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों भजन, कीर्तनों में भी राम कृष्ण का सर्वोपरि स्थान है। राम कृष्ण बुन्देली लोक जीवन में सहज मानव रूप में अवतरित होते हैं। पर उनकी अद्भुत अलौकित लीलायें ईश्वरीय शक्ति का परिचय देती हैं। जिनसे वे प्रेरणा पाते हैं । अब हम बुण्देलखण्ड के कुछ विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को प्रस्तुत कर रहे है। जिनमें धार्मिकता का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है-

राम भजन हृदय धर लौ कथा सुना दे कान
का ले आये का ले जैहों काहे करो गुमार
मदन मुरारी घनश्याम । साँवरे आ जाइये ।।
मलमल कर असनान कराऊँ , घिस घिस चन्दन खौट लगाँऊ
पूजा करूँ सुवों शाम , दरस दिखला जइयो।
दरसन करेगी ब्रजबान , नेक मुसका जइयो।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
भादौ बदी अष्टमी के दिन जन्म लऔ नन्दलाल।
हातन पावन बेड़ी खुल गई, खुले है जंजीरन ताला ।।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
ब्रज में जन्म लियौ यदुराई
गोकुल में आनन्द भऔ है घर-घर वजत बधाई । ब्रज में ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
राधा दामोदर बलि जइये ।
राधा बूझे बात चतुर्भुज कैसे रे कार्तिक करिये ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
तुलसी हरि की लाडली रामा प्रान आधार ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
तुलसी को ल्याहन आये श्री घनश्याम।
बाजे मधुर मधुर धुनि बाजे, अरे हाँ रे नारद नंगे पाँव जो नाचे।
इन्दर कोटि बराती आये, अरे हाँ रे दुलन श्री घनश्याम ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि हरि चरनन को गुलाम ।

उपर्युक्त गीतों से स्पष्ट होता है कि बुन्देली जन जीवन राम कृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा, प्रगाढ़शक्ति की सहजतम अनुभूतियों से अनुप्राणित है। व्रत, पूजा, विधान करते समय कृष्णजन्माष्टिमी, रामनवमी, कार्तिक स्नान आदि अवसरों पर जो लोकगीत गाये जाते हैं। उनमें पूर्णता राम कृष्ण की भक्ति व उपासना स्पष्ट देखने को मिलती है।

इस प्रकार बुण्देलखण्ड में राम कृष्ण परक गीतों की संख्या अधिक होना स्वाभाविक है उनका हमसे जीवनदायक सम्बन्ध है तथा वे यहाँ के नर नारियों के जीवन पर स्थायी रूप से स्वथ्ये संयत शील और उत्साहोत्पादक प्रभाव डालते हैं। राम का आदर्श मर्यादा स्थापन द्वारा संसार का पथ प्रर्दशन, बचन पालन की प्रतिज्ञा, भातृप्रेम, प्राणिमात्र से प्रेम लोक हृदय में रागात्मक घनिष्टता के रूप में इन

गीतों के द्वारा प्रस्तुत हुआ है। कृष्ण मनुष्यों के साथ मधुर सम्बन्धों के रूप में लीला करते है तथा उनके भीतर स्वयं अपूर्ण रूप में प्रकट होते है गीतों के विवेचन से स्पष्ट है कि राम कृष्ण का बुन्देली लोक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा हैं।

2.6. महावीर भक्ति के गीत

बुण्देलखण्ड में महावीर या हनुमान की पूजा बड़े व्यापक रूप में होती है। ये शौर्य देवता माने जाते हैं । इनकी वीरता के कारण इन्हें बलवीर भी कहा जाता है। इनकी मूर्ति अधिकाशतः पीपल के नीचे मढ़ियों में होती है। कहीं-कहीं मढ़ियों में प्रस्थापित पत्थर के चीरे पर सिन्दूर चढ़ा रहता है। तो कहीं कहीं इनकी मूर्तियों पर सिन्दूर का लेपन रहता है। प्रत्येक मंगलवार शनिवार को श्रद्धालू ग्रामीण जनता नारियल, सिन्दूर, इलायची दाना, चना या मलीदा का भोग लगाते है और चोला चढ़ाते है प्रतिदिन जल, फूल और इलायची दाना से इनकी पूजा होती है।

महादेव के मन्दिरों में भी दीवार पर सिन्दूर से रंगी महावीर की मूर्ति मिलती है। उनकी पूजा देवता रूप में न हो कर राम भक्त के रूप में होती है। महावीर को प्रसन्न करने पर राम कृपा प्राप्त करना आसान है। ऐसा विश्वास यहाँ प्रचलित है। महावीर का भक्त रूप देवी गीतों लागुरियां आदि में भी मिलता है। भूतप्रेत बाधा निवारणार्थ भी इनकी उपासना होती है-

जै हनुमन्त वीर बजरंगी
लों साधे लंका साधे असुरों का पावन साधे
जल का लाल साधे काल की फांस साधे
राम जी कौ दूत महादेव जी कौ सूत
अंजनी कौ जायौ, हनुमन्त वीर बजरंगी
तेरौ ध्यान जागौ।

जालौन में उरई के ठडेश्वरी मन्दिर में इनकी विशाल मूर्ति है। वहाँ दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता है। यहाँ मंगल और शनिवार को चोला चढ़ाया जाता है। दूर दूर से लोग दर्शन हेतु आते है।

हनुमान की उपासना परन्तु रामोपासना के साथ ही सम्बद्ध रही है। वैष्णयों में अराध्य की भक्ति के साथ-साथ आराध्य के पावदों की भक्ति का विकास भी हुआ जिसका लक्ष्य वस्तुतः आराध्य का प्रसाधन रहा है। बिना पार्षदों पासना के आराध्य की उपलब्धि सहज सम्भव नहीं होती है। भगवान राम के पार्षदों में हनुमान की अस्तित्व रामोपासकों में बहुत लोकप्रिय हुआ है।

चन्देलों के सिक्कों को आज भी बुण्देलखण्ड में हनुमन्तैया कहा जाता है। मध्ययुग के हनुमान के रूप में उपासना होने लगी थी और उनकी मूर्तियां सिक्कों पर भी अंकित होने लगी थी । इनकी संकट मोचन हरण स्वरूप ने लोगों को कदाचित बहुत प्रमाणित किया है।

आज भी अनेक भजन कीर्तन गीतों में हनुमान उपासना दिखाई देती है यहाँ के लोग हनुमान जी के पास जाकर अपनी अनेकों इच्छाओं की पूर्ति की कामना करते हैं। व्रत उपवास करते है नियमित रूप से पूजा -
-विधान व दर्शन करते है, मनोकामना पूर्ण होने पर प्रसाद चढ़ाते हैं। उसे अन्य लोगों में बाँटते हैं। सदियों से चले आ रहे प्रचलित लोक गीतों भजनों में हनुमानोपासना स्पष्ट देखने को मिलती है।

भारत धर्म प्रणान देश है अतः उसका दृष्टिकोण आदर्शमूलक और आध्यात्मवादी रहा है। वैदिक युग से लेकर आज तक व्यक्ति और समिष्टी दोनों में भक्ति भावना ओत-प्रोत रही है वेद उपनिषद ने प्रयुक्त भक्ति शब्द और भावगत पुराण आदि में प्रतीपादित उपासना शब्द एक ही शब्द अनुसंधानात्मक प्रवृत्ति का द्योतक है। अतः भक्ति और उपासना में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही सामानार्थ कल्याणकारक है एवं दोनों का एक ही चरम लक्ष्य है मोक्ष 'प्राप्ति' । भक्ति भजनीय की तथा उपासना उपास्य की होती है।

3. संस्कार गीत

बुण्देलखण्ड में वैसे तो अनेक संस्कार मनाये जाते हैं किन्तु इस अध्याय में तीन मुख्य संस्कारों को लिया गया है । वे हैं - जन्म, विवाह और मृत्यु ।

3.1. जन्मोत्सव के लोकगीत

पुत्र जन्मोत्सव पर सोहर, बधावा गाने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वाल्मीकि रामायण में रामजन्मोत्सव पर गन्धर्वी द्वारा गीत गाने और अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का वर्णन है । कृष्ण जन्म पर ब्रज नारियों के गीत तो भारत में प्रसिद्ध हैं ही। रघुवंश में आज के जन्मोत्सव पर गीत और नृत्य का कालिदास ने उल्लेख किया ही है । तुलसीदास ने राम जन्म पर मंगल गान का वर्णन किया है । बुण्देलखण्ड के जन्मोत्सव गीतों में रामकृष्ण की बालक्रीड़ाओं तथा बाल सुलभ चंचलताओं के चित्र हैं । राम कृष्ण के प्रतीक रूप में पुत्र जन्मोत्सव के बधावे गीत हृदय के असीम उल्लास के परिचायक हैं। सोहर गीत के संबंध में श्री इन्दु प्रकाश पाण्डेय का अभिमत है कि हमारे पंडितों और पुरोहितों के मंत्र जिसे अभिसिप्त नहीं कर पाते वहाँ हमारे लोकप्रिय जीवन का स्तवन कर लेते हैं । ये गीत हमारे लोकजीवन के मंत्र हैं प्रेरणाम्रोत है । प्रत्येक माँ कौशल्या, यशोदा बनकर रामकृष्ण जैसे सुपुत्रों को जन्म देना चाहती है । जन्मोत्सव संबंधी बुन्देली गीतों में सर्वत्र इन्हीं भावों की समान रूप से अभिव्यक्ति हुई है । निर्धन व्यक्ति भी पुत्र जन्मोत्सव पर अपने उल्लसित हृदय के वैभव को इन लोकगीतों में निम्न प्रकार अभिव्यक्त करता है --

आज दिन सोने को महाराज
सुरहिन को गोबर मंगाओ ढ़िक ढ़िंक दे अँगना लिपाओ महाराज ।आज
मुतियन चौक पुराओ मोरी सजनी, चंदन पटरी डराओ महाराज ।
कंचन कलश धराओं मोरी सजनी, चौमुख दियला जलाओ महाराज ।
रानी कौशल्या चौके आई, इमरत अटग दुआओं महाराज ।
हीरा मोती लुटाओं मोरी सजनी, रघुवर कंठ लगाओ महाराज ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मुहाये नंन्द के घर आज, बधायें नन्द के घरआज
तेरो-तेरो सगुर नई नियां, नगर बुलौवा देय
सब सखियों से ऐसी कहियो, चलत बिलम नई होय ।
पटिया पारे मौंग सियारे, बेंदी देय लिलार

•कल्याण भक्ति अंक 32/1 पृष्ठ सं. 398, 1958
•कल्याण उपासनांक 41/1 पृष्ठ सं. 695, 1968

बाबा नन्द बजाये जईओं सालू सरद लिटाइयों
पैरो पैरो सब सखियाँ हो, जो जेके अंग गुहारो
पैर ओढ़ ठाडी गई सखियाँ, मुख भर देत असीस
जुग जुग जीवें भाई तोरी ललना, राखे सबई के मान ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

चलो दे आइये जच्चा रानी सो असीस
दूर खेलन जिन जाइयों रे लालन को बैरी को मित्र
जुग जुग जियें तेरो बारो दुलारों, पाटें लासों बरीसा ।
दूध दही की मगर भर लैयों, वैसेई भर ले ओ असीस
कैसे मचल रई दाई, अवध में वैसी मचल रई दाई ।
सुरंग चूनर कौशल्या लयं बई न लेवें दाई ।
सोने को हार कैंकई लयं ठाड़ी फूलो बटोर रई दाई ।
सोने की तिरी कौशल्या लयं ठाड़ी मुखई न बोले दाई
मुतियन पार राजा लयं ठाड़े नजर न फेरे दाई ।
नरा तम्हारो जबई हम छीने दरसन दे रघुराई ।
रूप चतुर्भज प्रभु दरसायों , खुसी भई तब दाई ।
दरसन लैदाई घर खों आई, घर घर बटत मिठाई ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

झुला देव भाई स्याम परे पलरा ।
काऊ गुजरियाँ की नजर लगी है, खेल रये ललना ।
राई नोन उतार जसोदा सुखी भये ललना । झूला
कोई कोहै या तोरो पालना, काटे को बनो झूलना
रतप जतन को बनो पालना रेशम को झूलना ।
को जो झूले को जो बुलावे को जो परे पलना ।
कृष्ण जो झूले जसोदा जो झुलाये स्याम परे पलना ।

जन्मोत्सव संबंधी सभी गीतों में वात्सल्य भक्ति के स्वरूप की निर्झरणी प्रवाहित है। इन गीतों में राम कृष्ण तथा अन्य देवी देवताओं के प्रति निष्ठा पौराणिक आदर्शो के प्रति अटूट श्रद्धा तथा प्राचीन हिन्दू संस्कारों के प्रति आस्था प्रकट की गयी है। पुत्र जन्मोत्सव के गीतों में आशा, आनन्द, उल्लास का विशद वर्णन स्वाभिक है क्योंकि शिशु सृष्टि का अनुपम रत्न, माँ की गोद का श्रृंगार, निर्धन का धन मनुष्यत्व का बाल स्वरूप तथा वृद्ध जनों की विश्रान्ति है।

3.2. विवाहोत्सव के लोकगीत

जन्म के बाद दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार विवाह संस्कार है। विवाह संस्कार वैदिक आचारों के अंतर्भूत लोकाचारों का शाश्वत रूप है संसार की सभी रीतियों में विवाह के रूप में विभन्नता हो सकती है । परन्तु मूल उद्देश्य विवाह मानव जीवन का अनिवार्य अंग है । यह बात सर्वत्र समान रूप से मानी गई है। विवाह यौनाकांक्षा को नियंत्रित करने तथा संतान उत्पत्ति और उसके दायित्वों को निर्धारित करने की पृष्ठभूमि है विवाह मानव तथा समाज तथा ज्ञात

संस्थाओं का केन्द्र बिन्दु है। विवाह संस्कार की परम्परा बहुत प्राचीन है। प्राग्वैदिक काल में वैवाहिक विधान नहीं थे। ऋगवेद काल में इस विधि विधान का सुनिश्चित रूप नहीं था।

सूत्रकाल से अब तक इन प्राचीन प्रथाओं में थोड़ा अन्तर अवश्य आया है, परन्तु वर्तमान हिन्दू वैवाहिक विधि विधानों की प्रमुख रूप रेखा वही है। जो आज से पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व था ।

बुण्देलखण्ड में विवाह संस्कार भारत के विभिन्न प्रान्तों की ही भांती सम्पन्न होता है। कुछ रूढ़ियाँ स्थानीयता से अनुरंजित है। यहाँ की मर्यादित एवं नैतिक जीवनधारा के अनुसार विवाह आत्मा का आत्मा से हृदय का हृदय से और शरीर का शरीर से मिलन है 'युगानुरूप रीति-रिवाजों के अनेक परिवर्तनों उपरांत भी यहाँ की प्रथायें मूलतः वैदिक एवं सूत्रकालीन वैवाहिक विधानों का ही परिष्कृत रूप है। मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियों वैवाहिक गीतों के माध्यम से पुरातन परम्परा का अनुसरण करती हैं । किसका उद्गम वेद, उपनिषद तथा पुराणों में निहित है। हमारे यहाँ विवाहोत्सव सम्बंधी लोकगीतों में कामतृप्ति, सन्तानोपत्ति पारिवारिक सुख समृद्धी की अभिव्यंजना रहती है। लोकगीत में धार्मिक प्रसंगों द्वारा लौकिक भावों की अभिव्यक्ति विशद रूप में हुई है। प्रातः कन्या का रूप सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती सीता, राधा के अनुरूप तथा वर का रूप ब्रम्हा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण के अनुरूप मान कर सामान्य वर-वधू के सम्बंधो की विवेचना की गई है। सगाई से लेकर सुहाग तक विभिन्न अवसरों पर विभिन्न शैली के गीत व्यक्त होते हैं।

बुण्देलखण्ड में विवाह के प्रारंम्भिक अनुष्ठानों में निर्वाहन कार्य की सफलता हेतु पंचदेवता की उपासना की जाती है तथा देवताओं की स्तुति में देव नियंत्रण गीत गाया जाता है-

सरगन नसेनी पात की यारो जे चढ़ नेवतो देय।
तुम मोरे नेवते गनेस देव तुम मोरे आइयो ।
तुम मोरे नेवते महादेव पारवती तुम मोरे आइयो ।
तुम मोरे नेवते पवनसुत तुम मोरे आइयो ।
तुम मोरे नेवते हरदौला लाला तुम मोरे आइयो ।
साज संजूते आइयों, काज समरान आइयो ।

इस प्रकार अन्य देवताओं, अपने इष्ट देव, कुल देव आदि देवों नाम को करतीं है। और कार्य की सफलता की प्रार्थना करती हैं। विघन कारक वस्तुओं और प्राकृतिक, भौतिक उत्पातों की शांति हेतु भी प्रार्थना करतीं हैं-

तीन दिना दोइ रात बरन नोनो मूदिया ।
मूदौ-मूदौ जिठनियाँ की जीभ, वरन ऐसो मूदियो ।
मकरी माँछी मुदियों, मूदों पगरेतन की जीभ ।
बिच्छू किच्छू मूदियों, मूदों जैठे बडे की जीभ ।
तीन दिना दोई रास बरन ऐसो मूदियो ।

लगुन के धार्मिक अनुष्ठान से विवाहोत्सव आरम्भ माना जाता है -

सो आज मोरे रामजू खौ लगुन है ।
लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है ।

कानन कुण्डल मोरे राम जू खौं सोहें ।
सो गालन बिच मुतियन लट कत है ।
केसर खौरे मोरे राम जू खौं सोहे
सौ गर बिच गोप जंजीर लसत है ।
कंकन चूरा मोरे राम जू खौं सोहे
सो हातन बिच गजरा दरसन है ।
राम जू के दरसन खौ जियरा ललचत है ।
आज मोरे राम जू खौ लगुन चढ़त है ।

भांवर के पहले कुछ बन्ना बन्नी गीत गाये जाते है -

देखो रघूराज बना बन आयौ री ।
नवल किसोर लाल दसरथ कौ ।
सबही के मन भायौ री ।
सबको चित्त चुरायौ री ।
नेत्र लुभावै ऐसौ सुन्दर पट ।
सो हिय बिच बसायौ री ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
मोरे राम लखन से बनरा आली कौन बिल्मालये री ।
मोरो पूर्णो कैसो चन्दा बना सब जग उजयारों री ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
ब्रम्हा जी के प्रतीक रूप में मण्डप पूजन किया जाता है ।
सुगर बडैया चन्दन मडंवा, रूच रूच के गढ़ ल्यायौ रे ।
देवी देउतन सुमर मनई-मन जुर मिल मंगल गायौ रै ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
उनरे मडवा भीतर लगी अधाई के बोल मोरे भाई ।
बैठे गणेश जी रयें करें बैठाई, के बोल मोरे भाई ।
बैठे शंकर जी रयें करें बैठाई, के बोल मोरे भाई ।
बैठे दसरथ जी रयें करें बैठाई, के बोल मोरे भाई ।
राजा जनक की कन्या हमने व्याई के बोल मोरे भाई ।

चढ़ावा गीत निम्न प्रकार है -

राजा दशरथ मण्डप बिच आये सिया जू कें चढ़त चढ़ाये मोरे लाल ।
दुछु मुल गुरू जुर मिल बैठे, मोतिन चौंक पुराये मोरे लाल ।
भीतर से सिय जु कौ बुलवाय प्रथम गणेश पुजाये मोरे लाल ।
माथे बिच तिलक सिर सोहे, सास फूल सजवाये मोरे लाल ।
बेदा मोर बन्दिनी नीकी, दामिन दुत दरसाये मोरे लाल ।
कानन करन फूल सरबन बिच बिच फूल लगायें मोरे लाल ।
पंचलरिया, सतलरी बिचौली, ताबिच नग जडवाये मोरे लाल ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

और बहु प्रकार से भूषन, प्रति अंगन सजवायें मोरे लाल ।
यह छवि निरख हरष दुज दुर्गा, चरनन सीस नवाये मोरे लाल ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

भांवर विवाह का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है अधिकांश क्षेत्रों के भांवर गीत का रूप समान है ।

प्यारी सीता जु की परती भांवरे जू ।
पहली भांवर बेटी जब पड़ी बेटी अबई हमारी जू ।

छटी भांवर तक इसी तरह गीत दुहराया जाता है। सातवी भांवर पर कहा जाता है -

सतई भांवर बेटी जब परी, बेटी भई पराई जू ।
माय बाबुल जुर मिल हर दी व्याय जू ।
बेटी के हाथ पीरी करके घर दये सजन जू के हाथ जू ।
बरन कध तके कयें बजीर, बनीर सिंया, बना रघूवीर ,
कैसे सुन्दर बने शरीर ।
ये सोया है सारे जहान की दुल्हिन बनी सिया जानकी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

बुन्देली लोक गीतों में सबसे अधिक संख्या विवाहोत्सव में गाये जाने वाले गीतों की है। मेरे पास इन गातों का विशाल संकलन है इसी तरह कुँवर कलेवा कंकन छोड़ना विदाई गीत, देवी देवता, पूजन आदि गीत इस अवसर पर गाये जाते है परन्तु स्थानाभाव के कारण नहीं दिये जा सकते हैं।

यह सभी गीत प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्यक रूप का प्रतिनिधित्व करते है । इनमें नए जीवन की प्राप्ति के प्रयास में मधुर आकांक्षायें जिज्ञासायें तथा स्वर्णिम कल्पनायें उद्वेलित रहती है । ये गीत पुरातन प्रथा का अनुमोदन तो करते है साथ ही गहन सांस्कृतिक धार्मिक अन्तश्चेतना का परिचय देते है। विवाहोत्सव सम्बन्धी गीतों में प्रेम, भक्ति श्रृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित होती है ।

3.3. मृत्यु एवं नश्वरता के लोक गीत

जिस प्रकार मानव जीवन का प्रथम संस्कार जन्म है वैसे ही अन्तिम संस्कार ज़ीवन मृत्यु है । चूँकि शरीर नश्वर है गुण चिरस्थाई है अजर है। जिसके कारण व्यक्ति के नाम की पहचान बनी रहती है। और गुणों के कारण ही वह महान होता है। यहाँ अत्योत्रति की ओर अन्तदृष्टि जागृत होती है तो यह सारा लौकिक जगत नश्वर ही नजर आता है। अतः इस जीवन से मुक्ति पाने के लिए आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिये दिन रात साधना में लीन रहता है। ईश्वर की उपासना करता है। अनेकों गीत गाता है। इस प्रकार सत कर्म करके मोक्ष को प्राप्त होतां है।

चँकि मृत्यु अशुभ संस्कार माने जाने के कारण बुण्देलखण्ड में इन गीतों का प्रचलन् कम है। कुछ ही स्थानों पर ये गीत गाये जाते है। जो भी हो मृत्यु जीवन का वास्तविक सत्य है। हिन्दू जीवन

में इस संस्कार का विशेष महत्व है। यह अन्य संस्कारों की अपेक्षा अधिक जटिल कर्मकाण्ड तथा आदिम विश्वासों से प्रतिबद्ध है।

भीतर से जब वाहर ल्यायें।
छूट गई सब महल अटरियाँ । चलति विरियां।
कहत कबीर सुनो भई साधु
सगें चली बेई सूखी लककियाँ । चलति विरियां।
उडा दई बदरियां चलति बिरियां।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
विरियाँ जनम जिन रच्यों मोरे रामा ।
सो रामा मोरी को जो लगावे मेंया पारा ।
चुटियां अमर री होन न पाई, रूठ गये भगवान
पाव महावर टूटन न पायो, छूटे न हेर दी के दाग
नैनन कजरा टूटन न पायो, मुटकी न बुंदियाँ की घाट ।
सो रामा मोरी को जो लगावे नैया पार
चार खूट वाके दियना जरत है पिंया बिन जग अधियार ।

उक्त गीतों में क्षण भंगुर नश्वर शरीर के प्रति वैराग्य भावना निहित है। एक ओर ये गीत संसार और मानवी देह की निस्सारता आदि स्वरूप का ज्ञान आदि भावनायें जागृत कर शांत वातावरण में दार्शनिक चिन्तन के शाश्वत स्वरूप को उजागर करते है तो दूसरी ओर इन गीतों की अभिव्यक्ति का लौकिक आधार दाम्पत्य संबंध है। ऐसे गीतों में मृतक के गुणों अतिरंजित वर्णन से उत्पन्न परिवार घर गृहस्थी के दुखों और कष्टों की अत्यंत कारूणिक अभिव्यक्ति एवं सजीवं चित्रंण मिलता है ये गीत सगुण साकार विचारधारा के साथ साथ निगुर्ण भावों के अधिक निकट है।

4. पर्व गीत

बुन्देलखण्ड के पर्व साधारणतया वही है जो सारे भारत में मनाए जाते है। किन्तु मनाने की रीतियों में भिन्नता हाने के कारण तथा कुछ विशिष्ट पर्व बुन्देलखण्ड में ही मनाए जाने के कारण उन्हें बुन्देली नाम दिया है। अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को जिसे सामान्यतया गुरूपूर्णिमा कहते है। झाँसी जनपद में कुनघूसू पूने कारण में प्रतिष्ठित पूर्णिमा नवागत दुल्हिन कहलाती है। इस अवसर पर मातायें रसोई के कोने दीवाली में पोतनी मिट्टी द्वारा पौत कर उन प्रुते हुए कोनो में चार पुतलियाँ हल्दी द्वार निर्मित कर चंदन, अक्षत और पुष्प चढ़ाकर गुड घृत का नैवेघ लगाकर आरती उतारती है। साथ ही यह कामना करती है कि- हे परमेश्वरी वह घर में लक्ष्मी बनकर, धन धान्य और संतान से इसे भरना ।

इस कुनूघुसू पूजन से यह बात सिद्ध है कि वे घर सदैव फलते-फूलते है जिनमें बधुओं का यथोचित सम्मान होता है तथा जिन घरों में बधुओं के आंसूओं द्वारा कौरवों और सीता के आसुओं द्वारा रावण को विनाश मिलता है ।

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाली प्राचीन भारतीय संस्कृति के दर्शन इसी पर्व में होते हैं

4.1. रक्षा-बंधन

रक्षा-बंधन के पर्व की महत्वता अन्य प्रांतों की अपेक्षा बुण्देलखण्ड में अधिक है। यह पर्व वीर आल्ह उदल के समय से अधिक प्रचलित है। रक्षा-बंधन की प्राचीन प्रथा की रक्षा महाराजा ओरछा-नरेश मधुकर शाह ने अकबर के दरबार में स्वंय अपने हाथ में रक्षासूत्र बंधावकर की थी ।

बुण्देलखण्ड के प्रत्येक नगर और ग्राम में रक्षाबंधन की पूर्णिमा के लिए विदेश गए हुए भाई दूर दूर से घर वापस आ रहे है। किन्तु ऐसे शुभ पर्व पर एक बहन का भाई नहीं आ पाया है, दूसरे दिन रक्षा बन्धन की पूर्णिमा है वह बहन इस लोकगीत में भाई के प्रति अपने करूण-भाव व्यक्त कर रही है-

वीरन तेरे बिन कोउ नैया, राखी का बंधवैया ।
एक दिना सावन में रेंगओं, लेव सुद मोरे भैया ।
कौ ल्यौहै मोय मोर पपीरन बारी छपी चुनरिया ।
कौ कुठरन की बनी फूल-बैल की लाल घंघरिया ।

आगे बहन-भाई कौ कुल की परम्परा और बुण्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा की स्मृति दिलाती हुई कहती है-

जुर मिल दुश्मन लरन लराई, गैवड़े बाहर आ गये ।
बांद चांद के मनसूबा, खूब पमारो गा गये ।
तुम बिन बांद दुधारौ कौ , उनके मौरा मुरकैया ।
वीरना तेरे बिन कौउ नैयां, राखी कौ बंदवैया ।

4.2. मामुलिया

अश्विन मास कृष्ण पक्ष में कन्याओं का भी एक सुन्दर पर्व इस जनपद में होता है। यह मामूलिया के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्व में अविवाहित लड़कियां बेर वृक्ष की डाली कौ पुष्पों सें सजाकर अपने पुरा-पड़ौस के द्वार पर जाकर उसका प्रदर्शन करती है तथा निम्न लोकगीत गाती है-

ल्याओ ल्याओं चम्पा चमेंली के फूल, सजाऔ मेरी मामुलिया ।
मामुलिया में आये लिवौआ, झमक चली मेरी मामुलिया ।

इस लोकगीत में लड़किर्यों द्वारा यह भाव प्रदर्शित किया जाता है कि सहेली के लिवाने वाले अर्थात् ससुराल आनेवाले है। इस कारण उनका चम्पा चमेली के पुष्प लाकर शीघ्र श्रृंगार करो । इतने में लिवाने वाले आ गये और वह झमक-झमक्कर चलने लगती है

मामुलिया अन्य वृक्षों की उ़पेक्षा बेर की ही क्यों बनाईं जाती है? इस संबंध में कहावत है- समय कचरिया कुसमय बैर अर्थात् फसल उत्तम होने का प्रमाण कचरिया का उत्पादन अधिक होगा तथा जब अच्छी फसल नहीं होगी तब बेर वृक्ष अत्याधिक फलेगा। बेर से साधारण जनजीनवन का निर्वाह आसानी से चल जाता है।

परिवार के लिए इस वृक्ष का दृष्टिकोण दूसरा है । बेरी में फल फूल और कॉंटे होते है। तथा लकड़ी में भी पुष्प जैसी सुबास, पुत्र जैसी फल देने की अनुपम शक्ति और कांटों जैसी अपने उत्थान रूपी परिवार को सुरक्षित रखने की अटूट श्रद्धा-भक्ति होती है। इसी कारण अन्य वृक्षों के स्थान पर बेर-वृक्षों की डाली को ही मामुलिया का रूप दिया जाता है-
पूजन गीत में मामूलियों का स्तुति गान किया जाता है -

चीकनी मामूलिया के चीकनें पतौआ, बरातरै लगी अथैया ।
कै वारी भौजी वरा तरैं लागी अथैया ।
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा, मीठे ससुर जू के बोल ।
करई कचरिया के करए जो बीजा, करए सासू जू के बोल ।
कै बारी बेरा, करए सासूजू के बोल ।

4.3. कूनघुस

बुण्देलखण्ड में प्रत्येक घर में कुलवधू की पूजा होती है, जिसे कुनघुस त्यौहार की संज्ञा दी गई है। वेद पुराण स्मृति ग्रन्थों एवं दैत अदैत आदि दर्शनों में नारी की महिमा का गुणगान हुआ है। बुन्देलखण्ड में नई वधू श्री, शोभा सम्पन्न की प्रतीक मानी जाती है। वह प्रति गृह में पदापर्ण के समय तो सास द्वारा सम्मानित है । गृहस्थ धर्म का पालन करती है। सास द्वारा स्नेह आदर प्राप्त करती है। यह सम्मान उसे प्रति वर्ष आषाढ़ शुक्ल पुर्णिमा पर कुनुघूस पूजन के रूप में प्राप्त होता हैं। इस अवसर पर घर को लीपती है । पुतरिया बनाकर घर के कोने में रखकर उनकी पूजा करतीं हैं। और अनेकों मनोकामनायें पूर्ण होने के लिए आरती पूजन अर्चन करके विनय करतीं हैं। पूजन के बाद सासें व्रत रखतीं हैं। यह त्यौहार वैदिक युग से ले कर आज तक विविध अनुष्ठानों की भावभूमि पर आधारित है। इस त्यौहार पर परम्परागत गीतों का प्रचलन नहीं है ।

4.3. सावन तीज

इसे हरीयाली तीज भी कहते है इस अवसर पर प्रत्येक घर ऑंगन बाग बगाचों में आम और नीम के पेड़ पर झूले डाले जाते है। गर्मी को भूलकर प्रकृति की नवीन प्राण चेतना से उल्लिखित होकर नर नारी, सुकुमारियॉं, अल्हड़ तरूणियॉं झूला झूलते हुए भाव विभोर होकर सावन तीज, कजली, बारहमासा मल्हार, हिडौलें, राछरें, सैर तथा चौमासे आदि के गीत गा उठती है। इस अवसर पर मंदिर में मल्हार, हिन्डौलें, रागों के कीर्तनों, रासलीलाओं तथा कलात्मक झाकियों के प्रर्दशन से भगवतभक्तों के प्रमुख आकर्षण केन्द्र बन जाते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत -

गड़ गये हिन्डोला जनकपुरी जितै झूलै लक्ष्मन राम ।
काय के हिल्डोलना री, काय की लागी है डोर। गड गये
सोने के हिल्डोलना री रेशम की लगी है डोर ।
गया जी में झूले गजाधर, काशी वितेसुर नाथ ।
मथुरा में झूलें कन्हैया, शिव झूलै कैलाश ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सावन महीने तीज ग्वालिन कैसे खेंलै ।
अमृत प्यालौ पीकें, जहर कैसें झेलै ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सखियों चलो देख आइये, झूला झूलत नन्दकिशोर
काहे कौ तेरौ बनौ पालनौ, काहै की लागी डोर ।

यह गीत सामान्य प्रेम की कोटी से ऊपर उठकर ईश्वरत्व और आध्यात्मिकता की और संकेत करते है। रामकृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं के झूलोत्सव संबंधी गीत बहुत कम मात्रा में मिलते हैं। ओरछा, झाँसी सुमेरपुर एवं सागर में सावनतीज के मनभावन मेले भरते हैं।

4.5. नागपंचमी

प्राचीन पंरम्परा को अक्षुण् बनाए रखने के फ्ल स्वरूप अभी तक यह उत्सव भारत वर्ष के सभी प्रान्तों में प्रति वर्ष किसी न किसी रूप में समारोह के साथ मनाया जाता है एवं कहीं कहीं जीवित सर्पो का आव्हान किया जाता है भारत में अनेक स्थानों पर स्थित मंदिरों में निर्मित पूजा अर्चना होती है। यहाँ के लोगों की धारणा है कि शेषनाग पृथ्वीमंडल के आधार है। यहाँ की सामान्य और ग्रामीण नारियाँ श्रावण शुक्ल पंचमी को नागपंचमी का त्यौहार मनातीं हैं। यह नागपूजा का विशेष पर्व ही भयमिश्रित भावना से नागपंचमी के दिन बुण्देलखण्ड की नारियाँ परिवार की मंगलकामना के साथ विभिन्न नागस्थलों, मंदिरों, बावियों पर जाकर पान, अंक्षत, रोली, हल्दी, धूप, दीप, नेवैध, बताशा, पुष्प, चढ़ातीं हैं, दूध पिलातीं हैं, लोकगीत गातीं हैं। इस अवसर पर लोकगीतों का प्रचलन अधिक नहीं है जो प्रचलित लोकगीत हैं उनमें नाग पूजा के महत्व और पूजा सामग्री पर प्रर्याप्त प्रकाश डाला गया हैं -

ए जी सावन मास नाग पंचमी हो रई ।
घर घर विष हरन पूजा हो रई ।
कौना के घर विषहरन दूध बताशा ले रये ।
और कौना के घर पाने फूल ।
एजी अहीरन के घर विषहरन दूध बताशा ले रये ।
और मालिन के घर पान फूल ।
कौना के घर विषहरन खीर खांड खा रये ।
और कौना के घर पूजा हो रई
एजी भक्तन के घर विषहरन खीर खांड खा रये ।
और ब्राम्हण के पूजा हो रई ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

नाग पंचमी पर दान की महत्ता, मनोकामना अभिव्यक्त हुई है -

जौन गलियाँ हमने कबहू नई देखी,
तौन गलियन फिरायें हो मोरे नाग ।
जो कोउ मोरे नाग खौं गेहूँ भीक देहै ,
लाल लाल ललना जाये हो मोरे नाग ।

नागपंचमी संबंधी बुन्देली लोकगीतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बुण्देलखण्डी जनता के धार्मिक जीवन में नागपूजन का अत्यधिक महत्व है इस प्रकार भारतीय संस्कृति के मूल तत्व बुन्देली लोक संस्कृति में सुरक्षित है । यहा बौद्ध जैन तथा सभी धर्मावलम्बी नाग पूजा में आस्था रखते है।

4.6. कजरी

श्रावण शुक्ल नवमी के दिन बुण्देलखण्ड क्षेत्र के प्रत्येक परिवार में वेदी प्रतिष्ठापित की जाती हैं। वेदी पूजन के पश्चात हरे पत्तों से निर्मित बड़े दोनों में मिट्‌टी और खाद भरकर गेहूँ बो दिये जातें हैं। श्रवण पूर्णिमा तक नित्य प्रतिपूजन, जल, सिंचन से गेहूँ अंकुरित हो लहलहाने लगते है। ये लहलहाते पौधे ही भुजरियाँ या कजरियाँ कहलातीं हैं। उन्हें प्रकाश से बचाया जाता है। पीली भुजरियाँ सर्वश्रेष्ठ मानीं जातीं हैं। कजरियों की पूजा के बाद ही भाईयों को राखी बाँधी जाती है। पुरूष वर्ग एवं सभी स्त्रियाँ बच्चे भुंजरियाँ प्रसाद के रूप में पाकर कन्याओं के पैर पूजते है तथा परस्पर स्वरूप कजरियों का आदान प्रदान करते है। यथोचित अभिवादन करके शुभ कामना व्यक्त करते हैं। परिवार में बड़े लोग छोटों को आर्शीवचन के साथ भेंट देते है। पिता और भाइयों के कानों में कजरियाँ लगाकर रक्षा की कामना की जाती हैं। इस अवसर पर होने वाले गीत नृत्य बुन्देली लोकमानस की इन्द्रधनुषीय कामनाओं की तरह आनन्द देता आ रहा है। बड़े धूमधाम व मस्ती के साथ कजरी गाये जातें हैं। यहाँ कुछ कजरी गीत दिये जा रहे है -

पहिरै पतरंग विरंगन के
तन अंग अनंग जगावती है
हम में कजरी धुन गाउती है ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
साहुन महीना नीकौ लगें अगें अरे गेवड भई हरयाल।
साहुन में भुजरियों वै दई, भदौं में दई है सिराय ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
हम गावे वारामासी नहीं करो सजन मोरे हँसी ।
जब असाढ़ सावनों लागो तब कजरी की रित आई ।
जब कजरी गावें तुगाई तुम सुनियो चित्त लगाई ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सवरे उरगिया उरई गये, भैया हमई उरई खौं जाय ।
भैया भली है उरई को चाकरी ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
हरी रामा रे हाँ हाँ रे सावरिया
आल विरल में श्याम बनौ मनहारी रे हारी ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में पिट रये जुगल किशोर
हे कोई विरज में चुड़ियाँ पहिनन वारी रे धरी ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

इन कजरी गीतों में प्रेम भक्ति श्रृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित है बुण्देलखण्ड के विभिन्न स्थलों पर कजरी का विशाल मेला का आयोजन किया जाता है जिससे हमारी संस्कृति अक्षुण्ण बनी रहे।

4.7. गणेश जन्म

पंचदेव में प्रमुख एवं मांगलिक देवता के रूप में प्रतिष्ठित गणेश जी का जन्म दिवस भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी माना जाता है। यह शुभ तिथि गणेश चौथ दगड़ा चौथ, पथरा चौथ एवं डंडा चौथ के नाम से भी जानी जाती है । प्रारम्भ में गणेश जी विघ्नकारी देवता के रूप में पूजे जाते थे। लेकिन पौराणिक युग में उनका रूप विघ्नविनायक हो जाने से वे देवाधिदेव गणराज के रूप में प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारंभ में पूजे जाने लगे।

बुण्देलखण्ड में गणेश जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होता है। यहाँ प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य में सर्वज्ञानी, सिद्धिदायक, विघ्नविनाशक एवं साहित्याधिष्ठाता गणेश जी का प्रथम आव्हान किया जाता है। विवाहोत्सव पर निर्विघ्न कार्य सम्पादन हेतु विधादेवता के रूप में विद्यारम्भ के समय सर्वप्रथम उनका पूजन किया जाता है तथा लड्डू और गुड़धानी का प्रसाद वितरित किया जाता है। घर पर मंदिरों में गणपति की झाकियाँ सजाई जातीं हैं तथा गणेश एकादशी को विसर्जित की जाती हैं। गणेश जन्म पर शिवपुराण कथा का श्रवण किया जाता है -

सुमरौ गौरी पुत्र गणेश ।
नाम लयै से संकट सब भागै ।
सियरत कटै हैं क्लेस ।
माता तुमरी पार्वती है,
पिता तुम्हारे महेश
धूप दीप पकवान मिठाई ।
पूजा करौं हमेंश ।
मेरे सकल सघन मिट जाये गजानन तुमें मनाने से ।
गंगाजल स्नान कराऊँ केसर तिलक लगाये गजानन तुमें मनाने से ।
धूप, दीप, निवेध, आरती लड्डू भोग लगाये गजानन तुमें मनाने से
ऋद्धि सिद्धि दोई चमर डुलावै विद्या भण्डार गजानन तुमें मनाने से ।

प्रचलित दृष्टांत का आधार ग्रहण किया गया है। अतः सभी प्रकार की धार्मिक पूजाओं में सर्वप्रथम गणेश के पूजन अर्चन का विधान इन लोकगीतों में वर्णित है। बुण्देलखण्ड में शंकर, गणेंश, पार्वती की संयुक्त विशाल झाकियाँ लगतीं हैं। झाँसी, सागर, छतरपुर, देवरी, कुलपहाड़, मऊरानीपुर में गणेश जन्मोत्सव पर झाकियाँ लगाई जातीं हैं एवं मेलों का आयोजन होता है । जिसमें गणपति बब्बा मौरिया-उडयावर्ती लौकरया के नारे से सम्पूर्ण गगन मण्डल गूंज उठता है ।

4.8. दशहरा

आशिवन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी विजयादशमी या दशहरा पर्व के रूप में शरदकालीन व्रतोत्सव की परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। बुण्देलखण्ड में यह पर्व विभिन्न भागो की तरह ही मनाया जाता है। यहाँ दशहरा को दसैरा कहते है। प्रत्येक शुभ कार्य एवं संस्कार इसी दिन प्रारम्भ करने की प्रबल भावना रहती है। प्रातःकाल से नीलकण्ठ और मछली दर्शन कराने-हेतु ढ़ीमर घर-घर पहुचँते है और ईनाम पाते है। मान्यता है कि इस दिन नौ लाख वर्ष पूर्व पुरूषोत्तम रामचन्द्र

ने देवी की नौ दिन की उपासना से शक्ति संचय करके रावण से युद्ध किया था और अत्याचारी एवं प्रबल अन्यायी को समाप्त करने में सफलता पाई थी ।

बुन्देलखण्ड के सभी प्रायः छोटे-बड़े स्थानों पर महिषासुर दैत्यों पर भगवती दुर्गा की विजय के उपलक्ष्य में विशाल मेले आयोजित होते हैं। मेले में महिषासुर गर्दिनी की काली विशाल प्रतिमा तथा राम रावण की मूर्तियाँ जुलूस के साथ निकाली जाती है। काली प्रतिमा विसर्जित कर दी जाती है । रावण का मृत्यु दिवस न होने पर भी इस दिन उसका दहन किया जाता है। रावण दहन असत्य पर सत्य की जीत का प्रतीक है।

इस अवसर पर रामलीलाओं का प्रारम्भ किया जाता हैं। मंदिरों में देवी व मर्यादा पुरूषोंत्तम राम की झाँकियाँ सजाई जाती है और भक्ति से ओत-प्रोत गीतों एवं भजनों का गायन किया जाता है। पृथक दशहरा गीतों का गायन नहीं होता इन गीतों का इस क्षेत्र में अभाव है।

4.9. दिपावली

दीपावली मनाए जाने का विधान पद्मपुराण, स्कंदपुराण में दिया गया है। यह प्राचीन धार्मिक लोकोत्सव है यह पाँच दिन तक भारत में हर्सोल्लास के साथ मनाया जाता है। पाँच दिन धनतेरस, रूपचौदस, लक्ष्मीपूजन, गोवर्धन पूजन एवं भाईदोज है।

स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुये धन्वंतीर की पुजा करते है रूप चौदह को भगवान कृष्ण ने नरकासुर का वध किया था अतः इसे नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। दीपावली कार्तिक कृष्ण अमावस्या को समारोह के साथ लक्ष्मी जी गणेश जी एवं सरस्वती जी का पूजन होता है। दीपावली वैश्यवर्ण का प्रमुख त्यौहार है परन्तु सभी वर्ण और सभी धर्म के लोग इसे सोल्लास से मनाते है। जैन हरिवंश पुराण के अनुसार कार्तिकी अमावस्या को भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया था अतः स्मृति दिवस के रूप में उस दिन ब्रह्मम मुहूर्त में मंदिर में लड्डू चढ़ाये जाते है तथा संध्या के समय भौतिक प्रकाश हेतु दीपक जलाये जाते है। जैन लोग इस दिन सरस्वती पूजन, महावीर पूजन, जैन शास्त्र, वही, सिक्के तथा डायरी आदि का पूजन करते हैं। इस पर्व में धर्म संस्कृति राजनीति कला का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता हैं। धन की अधिष्टात्री देवी लक्ष्मी की पूजा और दीपजलाना ही इस दिन के महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य है।

कार्तिक शुक्ल दूज को लौकिक और धार्मिक त्यौहार भाईदोज मनाया जाता है भाई बहिन के पावन प्रेम और स्नेह संबंध के प्रतीक में यह त्यौहार बड़े आनन्दोल्लास से संपन्न होता है।
इस अवसर पर ढ़िमरी नगरिया बजाते हुये अहीर लोग दीवारी गीत गाते है। जो इस प्रकार है -

जब तो जुठारे माछरी, भौरा ने जुठारे हैं बाग ।
कहाँ चढ़ाऊ देवी सादरे, बारे बछ्ला ने जुठारे दूध
राधा डगरी निग चली, गई सखियन के दोरे ।
आज चलो गढ़ गोकुल जा मांगे दही विकार
सखियाँ बोली जात है सुनौ राधका बात ।
हम न जैहै गोकुल, उतै छली नन्द कौ लाल ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
लंका गरजो रावण रे, अवधपुरी भगवान
दोनउ दल के बीच में, जे गरज गये हनुमान ।

जे गरज गये हनुमान ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक पेड़ मथुरा जमौ, डार गई जगन्नाथ रे ।
फूल जो द्वारका, फल लागे बद्री नाथ रे ।।
रामनाम कहबू करो और धरैं ओ मनधीर रे ।
कारज के ही सुधारे है, कृपा सिन्धु रघूवीर रे ।।

दीवारी गीतों में तीर्थ, वृक्ष एवं नदी महातम्य रामनाथ का महत्ता वैष्णव भावना सामान्य पद एवं रामकृष्ण, शिव संबंधी भजनों का वर्णन मिलता है।

4.10. मकर संक्रान्ति

यह अति महत्वपूर्ण पर्व है। संक्रान्ति को सूर्य को एक राशि से दूसरी राशि पर जाना, जब सूर्य धनुराशि से मकर राशि में प्रवेश करता है। तब मकर संक्रान्ति होती है। संक्रान्ति दिन और रात दोनों में हो सकती है। दिन में होने वाली संक्रान्ति में पूरा दिन पुण्यकाल समझा जाता है। पुण्य में ही स्नान, दान व अन्य धार्मिक कार्य किये जाते है। भारतीय संस्कृति धर्म प्राण रही है। भारत का बुण्देलखण्ड भी धर्म प्राण और आस्तिकवादी है। यहाँ के निवासी महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व मकर संक्रान्ति को उपवास, व्रत, दान, श्राद्व, तीर्थ स्नान आदि धार्मिक कृत्यों द्वारा सम्पन्न होते है। इस अवसर पर तिल से उपटन, तिल से नहलाना, तिलदान करना, पवित्र रहकर तिलयुक्त जल पितरो को दान करना, अग्नि में तिल डालना एवं तिल खाना। इस प्रकार तिल का प्रयोग लोग करते हैं।

मकर संक्रान्ति पर्व पर बुण्देलखण्ड में गंगा, यमुना, नर्मदा व काशी जू की गंगा के तट पर भव्य मेलों का आयोजन और नदी तीर्थोपसना के साथ अन्य देवोपासना संबंधी लोकगीतों का गायन होता है। इस अवसर पर स्नानार्थियों द्वारा गाये जाने वाले भोलागीतों में उपर्युक्त सभी देवी देवताओं की पूजा उपासना तथा व्रत में उपासना व सगुणोपासना का स्वरूप परिलक्षित होता है। इस अवसर पर गायें जाने वाले भोला गीतों में शान्त व वैमन्य भाव पूर्ण भक्ति के मूल रूप प्रचुर मात्रा में मिलते है -

गनेश देव गंजराखों बिरजेरी गजराखों विरजें
तो ठाडें मलनियाँ के दोर री, गनेस देव हो-हो
फूलन के दो दो गजरारे
दो दो गजरा ये पैरैया अकेले भोलानाथ के फूलन के हो ।
नरबदा की छिड़ियन पैरे छिड़ियाँ
छिड़ियन पैरे छिड़ियाँ गौरा रानी अनारइ लम्बे केस रे
नरबदा की हो ।
तपस्या अरी गौरा ने करी रे
गौरा ने करी शंकर जी खो लये है मनाय रे,तपस्या अरे हो ।

मकर संक्रान्ति ऐसा स्नान पर्व है कि सुन्दर जलाशयों पर अनायास ही मेला लग जाते है। बुण्देलखण्ड में ओरछा, मऊरानीपुर, पारीक्षा, सतौरा, छानी, पठा, मरोडी चन्दनवारी के वेतवा, धसान

जे गरज गये हनुमान ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक पेड़ मथुरा जमौ, डार गई जगन्नाथ रे ।
फूल जो द्वारका, फल लागे बद्री नाथ रे ।।
रामनाम कहबू करो और धरैं ओ मनधीर रे ।
कारज के ही सुधारे है, कृपा सिन्धु रघूवीर रे ।।

दीवारी गीतों में तीर्थ, वृक्ष एवं नदी महातम्य रामनाथ का महत्ता वैष्णव भावना सामान्य पद एवं रामकृष्ण, शिव संबंधी भजनों का वर्णन मिलता है।

4.10. मकर संक्रान्ति

यह अति महत्वपूर्ण पर्व है। संक्रान्ति को सूर्य को एक राशि से दूसरी राशि पर जाना, जब सूर्य धनुराशि से मकर राशि में प्रवेश करता है। तब मकर संक्रान्ति होती है। संक्रान्ति दिन और रात दोनों में हो सकती है। दिन में होने वाली संक्रान्ति में पूरा दिन पुण्यकाल समझा जाता है। पुण्य में ही स्नान, दान व अन्य धार्मिक कार्य किये जाते है। भारतीय संस्कृति धर्म प्राण रही है। भारत का बुन्देलखण्ड भी धर्म प्राण और आस्तिकवादी है। यहाँ के निवासी महत्वपूर्ण धार्मिक पर्व मकर संक्रान्ति को उपवास, व्रत, दान, श्राद्व, तीर्थ स्नान आदि धार्मिक कृत्यों द्वारा सम्पन्न होते है। इस अवसर पर तिल से उपटन, तिल से नहलाना, तिलदान करना, पवित्र रहकर तिलयुक्त जल पितरो को दान करना, अग्नि में तिल डालना एवं तिल खाना। इस प्रकार तिल का प्रयोग लोग करते हैं।

मकर संक्रान्ति पर्व पर बुन्देलखण्ड में गंगा, यमुना, नर्मदा व काशी जू की गंगा के तट पर भव्य मेलों का आयोजन और नदी तीर्थोपसना के साथ अन्य देवोपासना संबंधी लोकगीतों का गायन होता है। इस अवसर पर स्नानार्थियों द्वारा गाये जाने वाले भोलागीतों में उपर्युक्त सभी देवी देवताओं की पूजा उपासना तथा व्रत में उपासना व सगुणोपासना का स्वरूप परिलक्षित होता है। इस अवसर पर गायें जाने वाले भोला गीतों में शान्त व वैमन्य भाव पूर्ण भक्ति के मूल रूप प्रचुर मात्रा में मिलते है -

गनेश देव गंजराखों बिरजेरी गजराखों विरजें
तो ठाडें मलनियाँ के दोर री, गनेस देव हो-हो
फूलन के दो दो गजरारे
दो दो गजरा ये पैरैया अकेले भोलानाथ के फूलन के हो ।
नरबदा की छिड़ियन पैरे छिड़ियाँ
छिड़ियन पैरे छिड़ियाँ गौरा रानी अनारइ लम्बे केस रे
नरबदा की हो ।
तपस्या अरी गौरा ने करी रे
गौरा ने करी शंकर जी खो लये है मनाय रे,तपस्या अरे हो ।

मकर संक्रान्ति ऐसा स्नान पर्व है कि सुन्दर जलाशयों पर अनायास ही मेला लग जाते है। बुन्देलखण्ड में ओरछा, मऊरानीपुर, पारीक्षा, सतौरा, छानी, पठा, मरोडी चन्दनवारी के वेतवा, धसान

संगम स्थल के धसान तट तथा केन, बेतवा नदियों के बाधों पर प्रतिवर्ष विशाल मेलों का आयोजन होता है। कुण्डेश्वर स्थान में स्वंय भूत निर्मित शिवलिंग के मंदिर पर इतिहास प्रसिद्ध मकर संक्रान्ति मेला भरता है, स्त्री, पुरूष गीत गाते हुए स्नान करते हैं तथा लड्डू, पूड़ी ठडूला का भोग लगता है।

4.11. होलीः-

धार्मिक, पौराणिक, त्यौहार, होली पर्व का अंतिम बड़ा और पतझड़ के अंत का सूचक है जन मन का प्रतीक होली त्यौहार वर्ष के अंतिम माह के अंतिम दिन फाल्गुन पूर्णिमा को होलिका दहन और रंगोत्सव के रूप में वर्ण भेद और वर्ग भेद को भुलाकर सौल्लास मनाया जाता है।

बुन्देलखण्ड़ में प्रतिवर्ष चैत्र श्रवण पक्ष की पंचमी को उन्नाव बालाजी में तथा प्रसिद्ध जैन तीर्थ क्षेत्र सोनागिरि में रंगपंचमी का मेला मनोहारी दृष्य उपस्थित करता है। होली में प्रस्तुत रंगों में गहरे रहस्य छिपे है। इस अवसर पर कबीर गीतों, फाग गीतों, सांस्कृतिक कार्यक्रम मिलन समारोह का आयोजन होता है। गाँजा, शराब, और भाँग पवित्र मंदिरों यानि धार्मिक स्थलों पर जाकर पुरूष लोग खाते पीते हैं उसे प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं। होली में गाये जाने वाले फाग गीत इस प्रकार है -

देख ली हरि होरी तुमारी
लोभ गुलाल मलौ मोरे मुख सो, मोह की दई पिचकारी ।
माया के रंग में ऐसी भिजोई गई सुध सारी
पिया अपने खाँ बिसारी ।

ईसुरी की फागेंः

बखरी रइयत है भारे की दई पिया प्यारे की ।
कच्ची भीत ठडी माटी की छाँह फेस चारे की ।
बे वन्देज डरी को बाडा ओई में दस द्वारे की ।
नई किवाड किवरियाँ एकऊ बिना कुची तारे की ।
ईसुर जाप निकारी, जिदना हमें कौन बारे की ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जा होरी खेले राम लला, हो राम लला गोविन्द लला ।
केसर भर पिचकारी मारे,
मानो भदैइयाँ परै झला, जा होरी खेले रामलला ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जमुना तट श्याम खेले होरी जमुना तट
जमुन तीन भीर सखियन की, कोऊ साँवर कोऊ गोरी।
उड़े अबीर गुलाल कुम कुम, टेसू केसर रंग घोरी।
ग्वाल वाल सबै हिलमिल गावै नचै राधा किसन की जोरी।

निम्न फाग गीतों में वैराग्य भाव की शाश्वत अभिव्यक्ति हुई है-

सन्तो नदी बहै डक धारा ।
जैसे जल में उरहिन अपजे, जल में करे पसाख। संतो--1
वाकै पत्तन पान नई भीजै, ढुरक परै जस पारा।
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, पिय कौ बचन नई तारा। सन्तो--1

बुन्देली जनजीवन फागगीतों के दर्पण में राम, शिव, कृष्ण की उपासना के साथ-साथ सूफियों की प्रेममार्गीर्य और सन्तों की ज्ञानमार्गीय उपासना में समान रूप से समाहित है। इन्हीं के फाग गीतों में बुन्देली लोक संस्कृति समाहित हो जीवित है।

4.12. बसन्तोत्सवः-

बुण्देलखण्ड में माघ शुक्ल बसन्त पंचमी से चैत्र की पूर्णिमा तक बसन्तोत्सव हर्षोल्लास से मनाया जाता है। यह पर्व भावी ऋतुराज के आगमन की सन्देश वाहिका है। यह मूलतः ऋतुवर्ष है। यह वर्ष समाज में विभिन्न वर्गो द्वारा विभिन्न रीतियों से विविध रूपों में मनाया जाता है। शिक्षण संस्थानों में बसन्त पंचमी सरस्वती पूजा का महान यह पर्व है। भगवती शारदा की पूजा के साथ संगीत, नाटक के आयोजन और उपहार द्वारा भी उनकी आराधना की प्रथा है। बसन्त पंचमी पर सरस्वती पूजा की प्रथा वेदकाल से चली आ रही है। अतः बसन्त पंचमी वैदिक कालीन पर्व है। जैन समाज में भी इस दिन सरस्वती पूजन की प्रथा है क्योंकि समुद्र से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई, जो इसी दिन की मानी जाती है। मंदिरों में झॉकियॉं लगाकर भगवान को पीली पोशाक धारण कराकर विधि पूर्वक पूजन विशाल समारोह के साथ करते है। रंग गुलाल की वर्षा करते हुए मंदिरों में जाकर फागगीतों का गायन करते है। बसन्तोत्सव पर खेलने के सहज रूप की झॉंकी निम्न गीत में इस प्रकार है-

राधा खेले होरी हो, मनमोहन के साथ मोरे रसिया ।
के मन केसर गारी हो, कै मन उड़त गुलाब मेरे रसिया ।
नौ मन कैसर गारी हो इस मन उड़त गुलाब मोरे रसिया ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
ऐसी सखी आई बसन्त बाहार कौपन कौपन अमवा पौरियो
उड़त गुलाल धुलमिल के बाग में जू ऐसी कोऊ सुवासन जू।

बुण्देलखण्ड में बसन्तपंचमी पर्व पर उन्नाव ग्राम पुष्पावती के तट पर अम्मरगढ़ के समीप नाद नंदसिया ग्राम में विशाल मेलों का आयोजन होता है। जिसमें ढोलक नगड़िया की गड़ी और झाँझ की झन्कारों के साथ बड़ी श्रद्धा से ईसुरी की श्रृंगारिक एवं अध्यात्मिक फागों का गायन होता है। दमोह में बॉध कपूर में जागेश्वर मंदिर पर शानदार मेला भरता है यहाँ लोग मनौतियाँ मनाते हैं और बच्चों का मुंडन कराते हैं।

4.13. महाशिवरात्रि

सृष्टि की प्रमुख तीन शक्तियों में अप्रितिय देवाधिदेव शिव की उपासना में फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को सम्पूर्ण रात्रि जागकर महाशिवरात्रि पर्व के रूप में मनाई जाती है। यद्यपि लिंगोपासना सैन्धव युग से प्रचलित थी जिसको वैदिक युग में रूद्रोपासना की संज्ञा दी गई तथापि पौराणिक युग में रूद्र के आधुनिक शिव रूप में परिवर्तन के पश्चात ही शिवरात्रि पर्वोत्सव का प्रारम्भ माना जाता है। गरूड़, स्कंद, पदम, अग्नि आदि पुराणों में शिवरात्रि पर्वोत्सव की महत्ता पर विस्तृत विवेचन मिलता है। इन सभी पुराणों में उपवास, पूजा, जागरण तीनों के विषय में एक-सी धारणा मिलती है कि जब वर्ग जाति का हर पुरूष उपवास करके विपत्तियों से शिव की पूजन करता है। रात्रि

जागरण करता है तो शिव उसे नरक से बचाते है आनन्द और मोक्ष प्रदान करते हैं तब व्यक्ति स्वंय शिव हो जाता है।

बुण्देलखण्ड में कोई जगह ऐसी नहीं है जहँा शिव मंदिर न हो । यहँा प्रतिदिन शिव मूर्ति का अभिषेक किया जाता है। ग्रामीणजन भांग को शिव जी का प्रसाद मानकर सेवन करते हैं। बुन्देली जन जीवन में धार्मिक विश्वास है कि शिवरात्रि पर प्रतिवर्ष महादेव की पूजा व्रत जागरण भक्ति गान करने पर पुण्यफल और मोक्ष की प्राप्ति होती है और न करनेपर व्यक्ति सहस्त्रों जन्मों तक भ्रमित रहता है। इसी लिए यहँा प्रत्येक घर में इस दिन जब तप, दान, होम, भजन-कीर्तन और कथा श्रवण का आयोजन हर्षोल्लास से होता है। नव दम्पत्ति से इस दिन महादेव पार्वती का पूजन कराया जाता है तथा कोरी गागरों में जल भरा कर उनका अभिषेक कराया जाता है। इस उत्सव को शिवरात्रि पर "गागर चढ़ाना" कहते है। लोक जीवन में यदि शिव मनोकामना पूर्ण करने वाले आदि देव है तो उनका सामान्य जन नायक का रूप भी अपरिचित नहीं है।

बुण्देलखण्ड में शिवरात्रि पर प्रतिवर्ष मंदिरों में मेले लगते है तथा शंकर भगवान का श्रृंगार कर बैण्डबाजों से रात्रि में उनकी बारात निकालते है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों का समग्र विवेचन इस प्रकार है-

शिव की पूजा रचाउ हो, सखी शिव की पूजा ।
कारे तालाब की कारी मिट्टी
शिव जी की मूरत बनाउ हो । शिव की पूजा ।
गंगा जमुना से जल भरकर लाऊ ।
शिवजी को हर हर कराऊ । शिव की पूजा ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
मोरों शिव शंकर महाराज आज बनरावन आयौ री ।
संग में भूत पेत की सेवा भौताई धूम मचायौ री ।

शिवरात्रि पर शिव विवाह गान परम्परा भी बुण्देलखण्ड की संस्कृति का स्पर्श लिप्त अंग बन गई है। जिसमें शैवोपासना की सभी पद्वतियाँ कलात्मक ढ़ंग से अभिव्यक्ति हुई ।

4.14. सावित्री व्रत

बुन्देली नारी की पुरूष के प्रति आत्मीयता, प्रेम, मांगलिक भावनायें और जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर धार्मिक अनुष्टानों व्रत उत्सवादि के आयोजन एवं गीतों में प्रतिबिम्वत होते है। नारी के गीतों की छाया में ही बुण्देलखण्ड का जनजीवन अंकुरित पल्लवित और पुष्पित होता हैं तथा उनका अवसान भी उसके गीतों में ही होता है। आराध्य से प्रसन्न करने और भववाधा से छुटकारा पाने के लिए नारी ही पूजा प्रतिष्टा का महत्व उसका पतिव्रता में साधना में निहित है। वंश संवर्धन व परिवारों के प्रति सुख वैभव वृद्धि की कामना ही नारी के प्रत्येक व्रत एवं लोकाचारों में छिपी है। सौभाग्य की मंगल कामना इनमें सर्वोपरि है। 'करवाचौथ' हरितालिका तीज, गणगौर, सावित्री व्रत की पूजा के आयोजन इसके प्रमाण है। निम्न लोकगीत में सावित्री व्रत की धार्मिकता का महत्व सदृश्यता के साथ उल्लेख है।

जेठ मास अमावस सजनि, सब जनी मंगल गाओं,
गहनों गुरिया जतन से सजनी, रूच रूच अंग लगाओं ।
काजर रेख सिन्दूर सजनि, लगातीं सुवुधि सयानी ।
हरसित चलीं अक्षत वट सजनि गउत मंगल खानि ।
घर घर नारी बुलाउतीं सजनि आदर से संग लैवे ।
आई वर अमावस सजनि पूजन खौ आकुल सब होवें ।

आज भी प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुये बुण्देलखण्ड की श्रद्धा समन्वित नारीयॉं 'सावित्री व्रत' करतीं हैं।

4.15. तीजाः-

तीजा भाद्र पद शुक्ल तृतीया को नारियों द्वारा सम्पादित किया जाने वाला धार्मिक पौराणिक व्रत है। पुराणों में उल्लेख है कि पार्वती के पिता इनकी शादी विष्णु से कराना चाहते थे पर पार्वतीजी ने शिवजी से शादी करने का दृढ़ निश्चय कर कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दी ।उनकी तपस्या से प्रसन्न हो शंकर जी ने तीजा को दर्शन दिये थे । इस पौराणिक परम्परा के निर्वहन स्वरूप विवाहित नारियॉं चिर सौभाग्य प्रगाढ़ प्रेम स्थायी ऐश्वर्य पाने हेतु तथा कन्यायें शिव समान प्रतापी वीर पति प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष तीजा या हरतालिका तीज का व्रत करतीं हैं । बुण्देलखण्ड में तीजा पर शिव एवं शक्ति के सम्मिलित रूप की उपासना के गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार गीतों में पौराणिक पारम्परिक गाथाओं का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

तीजा की कहानी सुना रयें औधड़ दानी
पार्वती ने लगन लगाई ।
शिवचरन में आस लगाई
मौय पति चाने औधड़दानी । तीजा की कहानी ।
कर रई ध्यान उमा महारानी
हर कै लै गई सखी सयानी
कि जब भादों तीज सुहानी । तीजा की कहांनी ।
और तीज पै घलै पुलाला
वेदन में कारन विस्तार
मिल गये शिव पति अन्तरधानी । तीजा की कहानी ।
अरे झाकी तीन दिन लगत प्यारी
दर्शन करवै सब नर नारी
जिनकी महिमा की में जानी । तीजा की कहानी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

पान चढ़ा दये बतेसा चढ़ा' दये
तिलक लगा दइये और ।। फुलेरा तनक झुला दइये और
भोलें शंकर सम्मुख बैठे
सगै हैं गौरा और ।। फुलैरा

तुलसीदास कये तीजा लेय
फूल चढ़ा दइये और ।। फुलैरा
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
गौरा ठाड़ी है आला हजुर
शिव के मनावने खौं ।

प्रचलित तीजा गीत शिव परक शक्ति परक तथा दोनों के सम्मिलित रूप की अभिव्यक्ति करते हैं। स्वभाविक है कि पार्वती शिव की पत्नी हीं नहीं उनकी शक्ति भी हैं तभी तो उन्हें अर्द्धनारीश्वर कहा जाता हैं । बुन्देली तीजा गीतों में शैव और शक्ति धर्म के सिद्धांत, विधि, विधान और पूजन अर्चन व्रत तथा उपासना के वर्णन से सिद्ध होता है कि पौराणिक युगीन शैवोपासना और शक्तोपासना ने बुन्देली जनजीवन को भी प्रभावित किया हैं।

4.16. अनन्तचतुर्दशी

भाद्रपक्ष शुक्ल चतुर्दशी "अनन्तचतुर्दशी" व्रत के नाम से विख्यात है। इस दिन अनन्त के रूप में विष्णु भगवान का बड़ी श्रद्धा भक्ति से पूजन अर्चन किया जाता है। रेशम या रूई के कुमकुमी रंग के धागों में चौदह गाठें लगा कर अनन्त का निर्माण किया जाता है। अनन्त की यह चौदह गाठें विष्णु भगवान के 14 लोकों की द्योतक हैं। अनन्त चतुर्दशी के दिन अनन्त की पूजा करके पुरूष दायीं भुजा में तथा स्त्री बायीं भुजा में धारण करती है । अनंत चतुर्दशी जैन धर्म में क्षमा वाणी पर्व के रूप में मनाते है। इस दिन बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी को बिहार प्रान्त के चम्पापुरी स्थान के मन्दार पर्वत से निर्माण की प्राप्ति हुयी थी । यह बुण्देलखण्ड का ही व्रत पर्व नहीं बल्कि भारत के प्रत्येक जैन धर्मी का प्रमुख धार्मिक पर्व है। इस पर्व पर सभी जैन धर्मावलम्बी दस दिन व्रत उपवास करते है इसे पर्यूषण पर्व के नाम से भी जाना जाता है। इस दिन प्रार्थना की जाती है कि वासुदेव इस अनंत संसार रूपी मद समुद्र में डूब रहे लोगों की रक्षा करें, उन्हें अनंत के रूप का ध्यान करने में सलंग्न करें तथा हे अनंत रूप वाले तुम्हें नमस्कार। यदि यह पर्व वर्षो तक किया जाये तो व्रती विष्णु लोक की प्राप्ति कर सकता है। इस व्रत को करने से सभी मनोकामनाऐं पूर्ण होती है तथा पारिवारिक सुख समृद्धि की प्राप्ति होती है। इस पर्व की कथा कही जाती है। गीतों में भी सभी देवताओं का नाम होता है प्रथक से अनंत चतुर्दशी के गीत नहीं मिलते जो गीत प्राप्त हो सके है. उनको नीचे दिया जा रहा है -

कौ रओ राउन के पनदेवा, बिना हरि की सेवा ।
करूणा सिन्धु करौ फुलभर खौ एक नाव कौ खेवा ।
काल फनद अबधेन कराये, जै बोलत सब देवा ।
बोलन लगे काग महलन में, भीतर बसे परेबा ।
ईश्वर नाश मिटावन पावत, पाप करे का सेवा ।
कौ रओ राउन के पनदेवा, बिना हरि की सेवा ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
हे विष्णु श्रीपति जगपति, बैकुण्ठ निवासी हरी हरी ।
तुम ब्रह्ममा बनकै सृष्टि रचते हो विष्णु रूप घरवालने करते
हो।

शिव रूप से कहते हो संहारी, बैकुण्ठ निवासी हरी हरी।
तेरी अनत प्रभु है माया, वेदों से नहीं पार है पाया।
है अनंत प्रभू सृष्टि तेरी,। बैकुण्ठ निवासी हरी हरी।
रसना से निशदिन नाम रटूँ, श्रवणों से कथामृत पार करूँ।
नैनों में रहे हरि छवि भरी। बैकुण्ठ निवासी हरी हरी।

4.17. महालक्ष्मी

महालक्ष्मी व्रत आश्विन कृष्ण अष्टमी को केवल सुहागिन नारियों द्वारा किया जाने वाला व्रत है। इस दिन महिलायें दोपहर बाद मिट्टी के हाथी का विधिवत् पूजन करती हैं । तथा महाभारत कालीन घटना से सम्बंधित नलदम्यंती की कथा श्रवण करती है। पकवान बनातीं है। इस व्रत को 16 दिन तक मनाने की मान्यता है । बुण्देलखण्ड में बहुत कम नारियाँ ही महालक्ष्मी व्रत को 15 दिन की अवधि में सम्पादित करती हैं । केवल अश्विन कृष्ण अष्टमी को व्रत के समाहार वाले दिन ही प्रारम्भ और समापन दोनों विधियों का निर्वाह कर लिया जाता है। इस दिन व्रती महिलायें सिर पर रखकर 16 लोटे पानी से वाल धोकर नहातीं हैं एवं 16 वार कुल्ला करतीं हैं। 16 श्रंगार स्वंय करतीं हैं यदि पूजन 16 दिन किया जाता है तो प्रतिदिन एक गांठ लगाई जाती है तदुपरान्त 16 चावल हाथ लेकर निम्न गीत 16 बार गातीं हैं और प्रत्येक बार एक चावल लक्ष्मी जी पर चढ़ाती जाती है :-

आमाती दमोती रानी
पोला पल पावन गाँव, मगरसेन राजा
बम्मन बरूआ करौं कनियां
सुनों महालक्ष्मी माँ कपली, देवी रानी
सोरा बोल की एक कनियाँ
सुनौ आमाती दामोती रानी
हाथी पूजिओ।

अक्षत, चंदन, कुमकुम, रोली, पुष्प, धूप, द्वीप, नैवेद्य आदि के साथ सोलह उपचारों से विधिवत पूजा उपरांत सोलह ढ़ैढ़रा बेसन के एवं सोलह ढ़ैढ़रा गुण के संकल्प के साथ ब्राम्हण को दान करतीं हैं। महालक्ष्मी के आभूषण एक पपडिया पर रखकर मालिन या कुम्हारिन को दान करतीं हैं तत्पश्चात महालक्ष्मी एवं हाथी को तालाब या नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। सौभाग्याकांक्षी हेतु किये गए व्रत पर व्रती महिला सुहागिन नारियों को सौभाग्य सूचक सोलह वस्तुए दान करतीं है ।

महालक्ष्मी व्रत में 16 की संख्या अति महत्वपूर्ण मानी गई है। यह व्रत 16 वर्षो तक करने वाली व्रती नारी के साथ लक्ष्मी जी हमेशा सहायक रहती है तथा दीर्घायु करती है।

4.18. अख्ती (अक्षय तृतिया)

वैसाख मास की शुक्ल पक्ष की तिथि तृतिया को अख्ती त्यौहार के रूप में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बड़े हर्षोउल्लास से मनाते है। अख्ती प्रधानतः कृषकों का त्यौहार है किन्तु सभी वर्ग के व्यक्ति बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरूष, युवक-युवतियाँ विभिन्न तरीकों से इसे मनाते है।

इस दिन गाँव का लम्बरदार बसोरों से बाजे बजवाता हुआ पंड़ित, पुजारी, किसानों के साथ नया बखर लेकर खेत पर जाता है । पण्ड़ित बखरे को बास पर गोबर और हल्दी लगाकर अर्घा देता है। जमींदार तिल, मूंग, उड़द, ज्वार आदि के थोड़े-थोड़े दाने व एक-एक रूपया से बखर को पूजकर दाने एवं मिट्टी को खेत से बोता और जोतता है। इसके बाद प्रत्येक किसान कुछ दानों और मिट्टी को ले जाकर अपने-अपने खेत की उन्हीं रेखाओं में बोता और जोतता है। अन्त में जमींदार सबको अपने घर ले जाकर पुरूषों को पान तथा स्त्रियों को घुंघरू बाँटता है। इस रीति को हरैता लेना कहतें है। कृषक अक्षय तृतिया के अवसर पर नवान्न के विपुल, अक्षत भण्डार को खलिहान से घर लाते है। एवं सालभर के लिये सहेज कर रखते है। उनका विश्वास है कि इस दिन रखे गये अन्न को अगले बार बोने से अन्न अक्षय और अनन्त बना रहेगा । इस दिन से वे कृषि कार्य का शुभारंभ हल, बखर, बैल, रस्सी, खाद के घरे तथा कृषि के अन्य उपादानों से पूजन करते हैं। इसी दिन खेत जोतने तथा एक दो डलिया खाद खेतों में डालने का मुहूर्त साधने के बाद धरती माता की महत्ता, चन्द्र-सूर्य की मनौतियाँ, गाय-बैलों के वर्णन सम्बंधी गीतों को गाकर मन को तरंगित करते हैं। इन कृषि गीतों में कृषि व्यवस्था, भारतीय आदर्श और लोक संस्कृति के मूल स्वर बोलते हैं। निम्न गीत में पृथ्वी की वन्दना में प्राचीन वैदिक परम्परा का निर्वाह मिलता है-

धरती माता तैनें काजर दये
सेन्दरन भर दई मांग
पहर हरियला ठाड़ी भई
तैनें मोह लिये संसार, अजब है महिमा तेरी ।

सूर्य, चन्द्र पर खेती के स्वप्न संजोने को अनोखी उक्ति देखिये -

चन्दो पै खेती करौं, सूरज पै करौं खरियान
जोबन कौ बदरा करौं, मोरो पिया पसर खौं जाय ।

अखती पर कृषकों द्वारा गाये जाने वाले गीत-पृथ्वी पूजन, गाय महिमा, देवपूजन उपासना की दृष्टि से सशक्त और परिपुष्ट है। राम-कृष्ण संबंधी गीत भी कृषक श्रद्धा भक्ति से गाते है।

रथ ठाड़ौ करौ रघुवीर ,
तुमाय संगे रे चलौ बनवास खौं ।
तुमाय काये के रथला बने हैं ,
काय के डरे हैं बुनाव
तुमाय रथ में जो को बैठियो
को है हांकन हार ।
रानी सीता जो रथ में बैठियो ,
राजा राम जी हांकन हार ।

ऋतुराज बसंत को विदाई एवं ग्रीष्म के शुभारम्भ पर बालिकाओं के कण्ठों से अति उमंग और मन की मोज में अख्ती गीतों का स्रोत उमड़ पड़ता है। बालिकाऐं स्वंय गुड्डा गुड़ियों का कलापुर्ण

निमार्ण करती हैं, श्रृंगार करती हैं एवं पूजन करतीं हैं। रात्रि में बैण्ड़-बाजों, भोज आयोजनों, समाज में प्रचलित सभी रीति-रीवाजों के अनुसार गुड्डा गुड़ियों की शादी करती हैं। इस अवसर पर बन्ना-बन्नी तथा अन्य वैवाहिक गीतों का महासागर उनके कोमल और मधुर कण्ठों पर लहराता है। वे उल्लास और उमंग में फूलीं नहीं समातीं हैं। विवाहित लड़कियों का अखती पर पितृगमन होता है। इसके संबंध में कहावत है -

अखती की बनी चकती, लत्ता की पुतरिया ,
सास विदा कर दै, मोय होत डुकरिया ।

इस दिन ससुराल में नववधू द्वारा नवापन्न की सात ढ़ेरियों की पूजा कराई जाती है और सगुन मनाया जाता है कि ढ़ेरी को चुगन नरपक्षी पहले आये तो नववधू को पुत्र रत्न यदि मादा पहले आये तो पुत्री रत्न की प्राप्ति होगी । यह परम्परा आज भी बुन्देली लोक जीवन में व्यापक रूप से सर्वत्र दिखाई देती हैं। छोटे-छोटे सात या बारह नवीन घड़ों की पुजा करके जल भर दिया जाता हैं। उनमें चने की दाल डाल दी जाती है । संध्या समय उस भींगी दाल से वर्षभर की फसल का अनुमान लगाया जाता है। संध्या समय लड़कियाँ, स्त्रियाँ पीपल वृक्ष की पूजा करतीं हैं । बगीचे में भोज करतीं हैं और एक दूसरे से अपने पतियों के नाम पूछती हैं । भींगे चने की दाल, मेंदा और बेसन के बने सूखे फुलके, पीपल के पत्तों का चूर्ण मिलाकर सोन बाटँती हुई घर लौटतीं हैं। उनके मधुर गायन से प्रत्येक गली गुंजने लगती हैं। सोन पाने हेतु बाल-वृद्धों के हृदयों में नवीन उत्साह दिखाई देता है।

कहीं-कहीं इस दिन लड़के-लड़कियों पर आक के फल फेंकते है । देवर, भाभियों को टहनी से मीठी मीठी मार करते हुए उनके पतियों का नाम पूछते है -

हँस हँस पूछे देवरा सिया जू सैं,
कहा पिया कौ नाव जू ।
कौन वरन देहिया की के बस रहत,
बसत कौन से गाँव जू ।

भाभियाँ प्रकारान्तर से पति के नाम के अभिप्राय को समझातीं हैं -

जिन पूछो दतिया के दिमान
नाव पिया कौ जिन पूछौ
मोरे पिया को सुनत गर्जना ,
चौंकत रये दिल्ली सुल्तान-जिन पूछौ दतिया ।
मोरे पिया की कुल कीरत के
झूम रये धरती पै निसान-जिन पूछौ दतिया ।

विवाहित लड़कियों के ससुराल वाले जब अखती पूजन और खेलने के पूर्व ही उन्हें लेने आ जाते हैं तो वे बड़ी विवशता और विकलता का अनुभव करतीं हैं -

अखती खेलन कैसें जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।
आज जुंदईया निर्मल छुटकी वर तरैं कैसें जाऊँ री ।
पैले लिबौआ ससुरा जी आये
घुघंट घालत दिन जाय री
अखती खेलन कैसें जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।
दूजे लिबौआ जेठा जी आये ,
जेठा के संग न जाऊ री
अखती खेलन कैसे जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।
तीजे लिबौआ देवरा जी आये,
देवरा के संग न जाऊ री
अखती खेलन कैसे जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।
चौथे लिबौआ नन्देऊआ जी आये ,
उनके संग न जाऊ री
अखती खेलन कैसे जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।
पांचये लिबौआ राजा जी आये ,
राजा के संग चली जाऊँ री
अखती खेलन कैसें जाऊँ री, वर तरैं मेरे लिबौआ ।

एक अन्य गीत्त में सीता जी की विदा कराने आये राजा दशरथ एवं राम-लक्ष्मण के स्वागत में अनेक व्यंजनों की रूचिरता तथा सीता की मनः स्तिथि का चित्रण देखिए -

नगर अजुध्या की गैल में इक महुआ दूजें आम ।
जै तरैं बैठे दो जने इक लक्ष्मण दुजे राम ।
कौन वरन बारे लछमन कौन वरन हौ राम ।
चांवरा बरन बारे लछमन गौउँआ बरन भगवान ।
काय पै बैठे लछमन काय पै बैठे भगवान ।
काय पै बैठे राजा दशरथ बहु खौं लिबाउन जांय ।
सौ सखियन के झुण्ड में बेटी सीता अखती खेलन जांय ।

उक्त गीतों में बुण्डेलखण्ड की विदा प्रथा एवं गुड़िया खेलने के महत्व का दिग्दर्शन राम, लक्ष्मण और सीता के चरित्र के माध्यम से हुआ है।

बुण्देलखण्ड में एवं अन्य प्रान्तों में अखती या अक्षय तृतीया के दिन परशुराम जयन्ती भी मनाई जाती है । जैनियों के प्रथम तीर्थकर श्री आदिनाथ स्वामी ने 6 माह के उपवास के उपरान्त अक्षय तृतीया के दिन गन्ने का रसाहार लिया था । इस प्रकार पौराणिक, धार्मिक कथाओं तथा सामाजिक मानकों का पुंज यह अक्षत तृतीया का त्यौहार विशेष महत्व का हैं। बुण्देलखण्ड में ऐसी मान्यता है कि इस दिन होम, दान, स्नान, उपवास और वासुदेव वृक्ष की पूजा करने से पुण्य फल अक्षय होते है। व पापों का क्षय होता है । मत्स्य पुराण, नारदीय पुराण, भविष्य पुराण में भी उल्लेख है कि इस दिन जो भी धार्मिक कृत्य किये जाते है वे अक्षत पुण्यफल दायक एवं पापक्षय कारक होते

हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बुन्देली के अखती गीतों में वैदिक युगीन कर्मकाण्ड और पौराणिक युगीन साकारोपासना का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है।

4.19. शरद पूर्णिमा

अश्विन शुक्ल 15 को शरदपूर्णिमा का उत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ बुण्देलखण्ड के प्रत्येक नगर, ग्राम में मनाया जाता है। शरद पूर्णिमा की स्वच्छ चन्द्रिका इस रात आल्हादकारी और प्रभावोतपादक होती है। श्रीमद्भागवत में प्रसंग है कि द्वापर युग में इस रात भगवान श्री कृष्ण ने गोपिकाओं के साथ महारास रचाया था। इस पीयूषवर्षिणी मनोरम रात्रि में श्री कृष्ण ने अपनी भुवन-मोहनी वंशीवादन से ब्रज गोपिकाओं की सुधबुध खो दी थी। वे उनकी वंशी की तान पर बावली हो दौड़ पड़ी थी। पर श्री कृष्ण कहीं नहीं दिखे। केवल स्वर ही सुनाई देता रहा है। तब कथित गोपियों पर प्रवीभूत हो चन्द्रमा को रजत रश्मियों के मध्य श्री कृष्ण भगवान गोपियों के साथ महारास में निमग्न हो गये थे। इस धवल-निर्मल वातावरण में सभी शुभ वस्त्र धारण करते हैं। मंदिरों में भगवान जी को सफेद पोशाक से सुसज्जित किया जाता है। दूध का भोग लगाया जाता है। बुण्देलखण्ड में ऐसी धारणा है कि इस रात चन्द्रमा अमृत वर्षा करता है। अतः कांस्यपात्र में खीर बनाकर खुली छतपर रख दी जाती है। प्रातः स्वास्थ्य लाभ की कामना से प्रसाद स्वरूप खाई जाती है। इस रात से रास लीलाऐं प्रारम्भ हो जाती है, मंदिरों में झाकियाँ लगतीं हैं और रास सम्बन्धी गीतों का गायन किया जाता है- निम्न गीत इसी आशय को प्रकट करते हैं -

हरे लोलिया वारी श्री राधा प्यारी ।।
वृन्दा विपन सुहावन अति ही शरद रैन उजयारी ।
जमुना तीर पुलिन की शोभा फूल रही फुलवारी ।।
चलत पवन मन मौज बढ़ावत मंद सुंगधित प्यारी ।।
निरतत लाल सहित ब्रजवाला चपल तुरंग गति न्यारी ।।
बजत अनेक भाति मृदु बाजे बीन बजत सुखकारी।।
दूगन स्वर कोऊ सखी अलापत कहत लाल गिरधारी।।
नाचत शीश फूल झर परते बदन बिन्दु श्रम न्यारी।।
कबहुँ श्याम विलग है नाचत ताल देय ब्रज नारी ।।
फूलमती कह सुरबरसावत सुमन देव सहनारी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सरद पूनौ को रात सखी, चन्दा चढौ आकास रे।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कैसी मुरलिया बजाई कन्हैया प्यारे कैसी मुरलिया बजाई ।
वेद पढ़त ब्रह्ममा जी मोहे सोतो मोह गये सुरराई ।
नारद शारद मोह गये हैं और की कौन चलाई।
धरती मोहे अकासहु मोहो गयौ सोतौ मोहे अग्नि हरसाई।
बागडु मोहे बगीचाहू मोहे सौ मोहे ताल तलाई।
मोहे पशु अरू पक्षी जिते हैं सो अद्भुत रंग दिखाई।
गोपी सभी जहँ जैसी खड़ी थीं तैसी सभी उठ धाई।
हाथ के भूषन पॉव में पहिरे सो पांव के हाथन लाई।

गऊयें जो मोही बछराजो मोहे गति बरनी नहिं जाई।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

बजा दो स्याम बांस की बसुरिया।
ब्रम्हा मोह गये, बिसनू मोह गये,
मोह गये रिसी मुनिया। बजा0
नगर निवासी ऐसे ही मोहे,
जैसे चंदा की चंदनियाँ। बजा0
राधे भी मोह गई, रूकमिन भी मोह गई,
कि मोह गई सब दुनिया। बजा0

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

श्री मन्नारायण, नारायण नारायण।
चारऊ वेद, पुराण अष्ट दस, बालमीकि जी की रामायण।श्री मन्नारायण .
विष्णु पुराण, भागवत, गीता, वेद व्यास जी की पारायण। श्री मन्नारायण .
शिव सनकादि ब्रह्मादिक, सुमिर सुमिर भए पारायण। श्री मन्नारायण।.
कश्यप ऋृषि के बामन होकैं, दण्ड कमण्डल धारायण। श्री मन्नारायण।.
बलि से पांच तीन पग पृथ्वी, रूप त्रिविक्रम धारायण। श्री मन्नारायण।.
खम्भ फार हिरणकस्यप मारे, भक्त प्रहलाद उबारायण। श्री मन्नारायण।.
गज अरू ग्राह लड़े जल भीतर लड़त-लड़त गज हारायण। श्री मन्नारायण।.
जौ भर सूंड रही जल बाहर, तब हरि नाम उचारायण। श्री मन्नारायण।.
गज की टेरें सुनी कमलापति, आज पधारे नारायण। श्री मन्नारायण।

बुण्देलखण्ड की भूमि पौराणिक उपासना प्रधान रही है। अतः प्रत्येक अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में सगुण साकार उपासना ही दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि पुराणों में सगुणोपासना की उपादेयता और सरलता विद्यमान है जो जन साधारण के लिये सहजबोधगम्य है।

4.20. गनगौर

गनगौर व्रतोत्सव आशुतोष गौरा की उपासना में कुमारियों और सधवाओं द्वारा नववर्ष के प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर चैत्र शुक्ल तृतीया तक धार्मिक कृत्यों और शुभ आयोजनों द्वारा बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होता है। गनगौर का शास्त्रीय नाम गौरी तृतीया है। चेत्र शुक्ल तृतीया को नारियां सुख सौभाग्य की आकांक्षा से उल्लसित होकर गौरी पूजन का दिव्य अनुष्ठान करतीं हैं।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा की महत्वपूर्ण तिथि सम्बन्ध में ब्रह्मपुराण में भी उल्लेख है कि-

चेत्रमासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेंडहनि।
शुक्ल पक्षे समग्रंतु सदा सूर्योदये सति।।

"ब्रह्मा द्वारा चेत्रमास के प्रथम दिन सृष्टि रचना की गई थी अतः इस दिन सर्व प्रथम ब्रह्मा की पूजा, तदुपरान्त ओम एवं नमः के साथ अन्य देवताओं की पूजा इसके बाद दक्ष कन्याओं की पूजा

और विष्णु की पूजा करनी चहिये। सभी उपचारों से पूजाउपरान्त ब्राह्मणों, मान्य सम्बन्धियों और भ्रत्यों को दान तथा विशिष्ठ भोजन खिलाने के साथ-साथ उत्सव, सम्मेलन आदि करना चाहिये।"

हिन्दू नारी मात्र का विशिष्ठ त्यौहार गनगौर सम्पूर्ण भारत में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी के पूजन-अर्चन की विधियों और अवधि में स्थान भेद और वातावरण में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है परन्तु इसकी मूल भावना के पीछे सौभाग्याकांक्षी की पृष्ठभूमि ही प्रमुख है।

प्रमुख आराध्या देवी पार्वती की उपासना में महाराष्ट्रीयन महिलाएँ परिवार एवं समाज की सधवा नारियों के साथ सामूहिक रूप से धार्मिक व्रत एवं अनुष्ठानों के आयोजन में "हल्दी कुंकु" त्यौहार को अविच्छन्न शान्ति प्राप्ति हेतु मनाती हैं।

पार्वती द्वारा प्रेम, त्याग, तपस्या से मनोवांछित पति की प्राप्ति के आदर्श रूप का निर्माण की नारियाँ अपने जीवन में उतारने के उद्देश्य से "रघुबाई त्यौहार" को विशिष्ठ विराट समारोह सामूहिक रूप से आयोजित करतीं है।

"गनगौर" त्यौहार राजस्थान की नारियों के जीवन में धार्मिक, सांस्कृतिक और आदर्शात्मक सौन्दर्य के रूप में प्रमुख रूप से प्रतिष्ठापित है। वे गौरी के आदार्शात्मक रूप सौन्दर्य में रूप सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब देखतीं हैं। और अपने को गौरी की सखियँा मानती है। राजस्थान के अधिकांश गनगौर गीतों में देवी पार्वती के नखशिख सौन्दर्य, वेष-भूषा और सुगंठित देहदृष्टि का वर्णन मिलता है। श्री सूर्यकरण पारीक जी" ने इसी आश्य का गनगौर गीत का उल्लेख किया है अतः उसका यहाँ उल्लेख करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। मालवा की नारियाँ गौरी की उपासना में अपने सौभाग्य आभूषणों की विराट श्रृंगार भावना को, आदर्श गृहस्थ जीवन को सुखद और सुसंस्कृत बनाने की कल्पना को एवं सौभाग्य कामना को गनगौर गीतों में शाश्वत रूप से अभिव्यक्ति करतीं हैं। सम्भवतः सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अनुकरण पर ही बुन्देलखण्ड में गनगौर व्रत प्रचलन आरम्भ हुआ।

अन्य प्रदेशों की भाँति बुन्देलखण्ड में भी चैत्र शुक्ल तृतिया को गरीबों की झोपड़ी से लेकर अमीरों के महलों तक की नारियां समान भाव से मनोवांछित पति प्राप्ति और सौभाग्याकांक्षी के रूप में गौरी रूप में सजसंवर कर चल समारोह आयोजित करतीं हैं।

एक सप्ताह पूर्व चैत्र कृष्ण दशमी के दिन मिट्टी के दोनों में गेहूँ बो दिये जाते हैं। तृतीया के दिन तक गेहूँ जवारे की तरह अंकुरित हो जाते है। शिव पार्वती की मूर्तियाँ (मिट्टी से निर्मित कहीं-कहीं बालू से निर्मित) जवारों के बीच में रखकर पूजन अर्चन किया जाता है। गनगौर व्रत के गौरा पार्वती के पूजन में प्रमुख रूप से बेसन के नमकीन और आटे-गुड के मीठे आभूषण के रूप के पकवान चढ़ाये जाते है । जिन्हें गनगौरा कहते है। वही प्रसाद रूप में वितरित किये जाते हैं तथा 20 गणगौरा बेसन के और बीस गणगौरा (पकवार) मीठे ब्राह्मणों, मान्य रिश्तेदारों और भृत्यों को दान किये जाते हैं। नारियाँ भी पूजनोपरान्त उक्त पकवान ग्रहण करके व्रत पूर्ण करतीं है। उसके अतिरिक्त सौभाग्य सूचक वस्तुए काँच की चूड़ियों, महावर, कुंकुम, बिछियाँ, बिन्दियां (टिकली) और नवीन वस्त्र पूजन में चढ़ाती हैं। और सौभाग्यवती नारियों को दान करतीं हैं। बुन्देलखण्ड में गनगौर पूजन का प्रसाद पुरूषों को वितरित नहीं किया जाता । इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि-

"गनगौर के गनगौरा, पुरूष खौं न देऊँ एकऊ कौरा।" इसी दिन यहाँ गनगौर की कथा प्रमुख रूप से सुनी जाती है और सुनाई जाती है। कथा का सार यह है कि शिव भगवान की आज्ञा से पार्वती ने कमण्डल का अमृत मय जल पार्वती पूजन को आई हुई महिलाओं पर छिड़कर अखण्ड सौभाग्यवती रहने का वरदान दिया था । यहाँ की नारियाँ इसी विश्वास और आकांक्षा के भावों से

प्रेरित होकर गौरी पूजन करतीं हैं। अपनी-अपनी मिट्टी से निर्मित गौरा प्रतिमाओं को कुमारी कन्याऐं एवं सौभाग्यवती नारियाँ श्रृंगार करके सामूहिक गीत गातीं हुई नदी या जलाशय में दूसरे दिन विसर्जित कर देती हैं। उनका अटल विश्वास है कि इस दिन देवी पार्वती से की गई प्रार्थना निष्फल नहीं होती और उनके पूजन से वे सदा सुहागिन रहेंगीं । कई दन्तकथाऐं प्रचलित है कि इस दिन शिव पार्वती का विवाह हुआ था या इस दिन पार्वती जी का गौना हुआ था प्रायः गौरा, ईसर (महादेव) के पूजोपचार और गीतों में निहित भावनाऐं सभी प्रदेशों में एक समान है। गौरा-महादेव के गीतों के अतिरिक्त सभी देवताओं के गीत गाये जाते है। कुछ गीत इस प्रकार है-

गौरा औ गणगौरा मैया, खोल किबड़ियाँ मैया, खोल किबडियाँ
मैया के द्वारे ठाड़ी तेरी पूजनहारी, मैया पुजनारी मैया हो------

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

हट पर गई गौरा नार,
महादेव मड़िया बना देओ बाग में। हट पर गई गौरानार।
काहे की मड़िया बनी,
काहे के लगे किबार री । हट पर गई गौरा नार।
सोने की मड़िया बनी,
रूपे के लगे हैं किबार री। हट पर गई गौरा नार।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अरे भओ भुनसारौ धर्म की भई बिरिया।।
अरे उठौ गौरा तोरौ फूल फुलबरिया।
अरे कैसैं कें उठौं ईसुर महादेवा जी।
अरे मोरी ओली में गनपत बेटा लालना जी
अरे गनपत खों सुआ देव सोने के खटोलना।
अरे गिर जैहें गनपति मचल जैहें लालना जी।
अरे टूट जैहें खटोलना मुरक जैहे बइयाँ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

गढ़ लाई माटी गौर, छोटो सौ खेलना।
गौरा रानी लाज राखियो हो।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

माई हो हैरौ, हमाई ओर हो

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

शिव शंकर चले कैलास कै बुन्दियाँ परन लगीं।
कौना नै बो दई हरी-हरी मेंहदी, कौना नैं बोदई भांग।
कौना ने बो दई हरी-हरी मेंहदी, भोला नै बौ दई भांग
शिव शंकर चल कैलास कै बुन्दियाँ परन लगी।

बुण्देलखण्ड में गनगौर व्रतोत्सव पर शिव-पार्वती, देवी पार्वती के लोकगीतों के साथ अन्य देवताओं की उपासना में ऐसे गीतों के गाने का प्रचलन है जो जीवन के यथार्थ तत्वों से परिपूर्ण हो और जिनमें श्रृंगारिक, उपदेशात्मक स्वरूप वर्णन के साथ नारी की मनोव्यथा, चिर सौभाग्य के अक्षुण्ण विश्वास की चिरन्तन अभिव्यक्ति विविध रूपों में हुई है। उपर्युक्त गीतों में निहित उपासना के स्वरूप के आधार पर निसन्देह रूप से कह सकते है कि बुण्देलखण्ड में शैवोपासना, शाक्तोपासना की अखण्ड

परम्परा केवल आस्था पर ही आधारित नहीं अपितु उच्चतर ज्ञान पर आधारित है। उपर्युक्त सभी गनगौर के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में सच्चे धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति हुयी है जो सगुण साकार रूप के अनेक पक्षों की सार्वदेशिक पूर्णता का प्रतिनिधित्व करतीं हैं।

5. लोक नाट्य गीत

भरत मुनि ने कहा है कि "मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति जन्मजात होती है। अनुकरण ही नाट्य है। "जैसे जैसे शिशु बड़ा होता अपनी बाल जीवन की लीलाओं में लोक नाट्य करता दिखाई देता है। यह नाट्य वह अपने संस्कारों के अनुसार करता है। कभी चोर, कभी सिपाही ,कभी अध्यापक बनकर अभिनय करता है। लड़कियाँ भी इसी के अनुसार कभी अपने घरगूला बनातीं है। रसोई घर बनाती हैं, गुड़ियाँ बनाती हैं, उनकी शादी का नाट्य करतीं है, सास बहू की नकल करती हैं। बुन्देली लोक नाट्य का यह श्री गणेश है जो पारिवारिक जीवन के प्रारम्भ में दिखाई देता है।

इस लोक नाट्य के उद्गम में एक बात विशेष महत्व की है कि यह नाट्य भी काव्यात्मकता को साथ लिए चला आता है। बालक बालिकाओं की इस नाट्य शैली में बड़ी मनोरम एवं चमत्कारिक तुकबंदी कवितायें मिलती हैं जिन्हें बाल कवि तथा कवियित्रियाँ ही बनाती हैं।

उदाहरणार्थ - चोर ढूड़ने के लिए-

अक्कड़ बक्कड बम्बे बो,
अस्सी नब्बे पूरे सौ।
सौ में लगा धागा चोर निकल के भागा ।

एक बालक दूसरे बालक पर, तीसरे पर क्रमानुसार उंगलियाँ रखता है तथा अन्तिम टूट जिस पर पड़े उसे चोर माना जाता है। यह अभिनय है इसी प्रकार से-

ईक सोंक सिक्का,
चिलम तमाखू हुक्का,
साहब, चोर, उचक्का ।।

इस प्रकार की अभिनयात्मक काव्योक्तियाँ लोक जीवन के लोक नाट्य में भरी पड़ी हैं। जिन्हें समायानुसार बालक या बालिकायें स्वंय गढ़ लेते हैं। कुछ परम्परागत हैं। जैसे क्रीड़ा का नाट्य -

प्रारम्भ - दो बालकों से-

"हिली मिली दो बालें आई,
प्र0- का भर ल्याई
उ0- गोंड़ चना ।
प्र0- का दओ भाव
उ0- टकै पसेरी ।
प्र0- लाव सार ।
उ0- कोऊ लै लो राम, कोऊ लै लौ लक्षमन।

तात्पर्य यह है कि इस लोक नाट्य के बीज ग्राम्य और जनपदीय संस्कृति में पृथक होते हैं। जैसे बुण्देलखण्ड में टेसू राजा, नारे सुआटा, मामुलिया, दान लीला, गौचारण, (ग्वाल), आदि नाट्य परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं। बच्चों से लेकर युवा वृद्ध सभी के पृथक-पृथक गीत है। हमारे बुण्देलखण्ड में लोक नाट्य के अनेक स्वरूप प्रचलित हैं जिनमें प्रमुखतः निम्नलिखित हैं

बाबा नाट्य से टेसू नाट्य तक के लोक नाट्य गीतों का विस्तृत विवरण लोक काव्य की पृष्ठभूमि के शीर्षक बाद्य तथा नाट्य के अंतर्गत किया गया है। शेष लोक नाट्य गीतों का वर्णन इस प्रकार है :-

5.1. मौनियां नृत्य

चाचर- बुण्देलखण्ड में चाचर नृत्य का बहुत अधिक महत्व है। अधिकांशतः दीपावली के पहले से ग्रामीण अंचलों में इसकी तैयारियाँ होने लगती हैं। गौचारण का नृत्य, चाचर का नृत्य दीपावली के दूसरे दिन गोर्वधन पूजा के त्यौहार के समय विशेष रूप से सम्पन्न होता है। इस नृत्य में लकड़ी के दो छोटे छोटे बेंत से जो सवा फीट या डेंढ फीट तक के होते हैं उनको लेकर मनुष्य नृत्य गीत के रूप में चाचर खेलते हैं। यह बेंत एक तरफ नुकीले तथा दूसरी तरफ पकड़ने के लिए मोटे होते हैं। 4, 8, 12, 16 व्यक्तियों की टोलियाँ बनाकर समूहों में एक विशेष वेष-भूषा में खेलते हैं। आँखो में काजल, डिठूला, कमर में झेला रंगीन पोषाकें, (गण वेश) सहित ढोलक, झींका, कसावरी, रमतूला आदि के साज बाज के साथ खेलते हैं। मोर पंख का मूठा भी बरेदी लिए रहता है। यह बरेदी मंडली का संरक्षक माना जाता है। दिवारी गीत गाकर खेलने को उत्साहित करता है। एक विदूषक भी होता है जो सुन्दर लोक नृत्य करता हुआ सबका मनोरंजन करता हैं । यह दिवारी गीत दोहा का ही रूप होता है। साथ में ख्याल गायन भी चलता है। लकड़ी का पटा बेती खेल और अन्य जादू आदि के प्रदर्शन भी होते हैं। बुण्देलखण्ड के गाँव गाँव में यह लोक नृत्य देखा जा सकता है। दिवारी गीत का एक उदाहरण देखिए जिसे बरेदी बोलता है।

ऐ - ऐ - ऐ -------------------ऐ,
राम राम की कोठरी, चंदन जड़े किवार ये।
तारे लागे प्रेम के, सो खोलो कृष्ण मुरार ये।।

इतना कहने के तुरन्त बाद साज बाज वादन के साथ लोक नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। नृत्यकार विभिन्न कलाओं का प्रर्दशन करते जाते हैं। और गायक गाते जाते हैं।

5.2. बेड़नी लोक नृत्य (राई)

ग्रामीण लोक नृत्य में राई का भी अधिक महत्व पूर्ण स्थान है। इसमें प्रायः नाचने वाली औरतें होतीं हैं जिन्हें बेड़नी कहते हैं। यह अधिकतर बेड़ियां जाति की होतीं हैं। इनकी वेश भूषा में लहंगा, चूनर, चूड़ीदार पायजामा, ब्लाउज, टिक्ली, काजल, नथ, बेंदी आदि का श्रृंगार होता है। यह श्रृंगार करके बेड़नी नृत्य करती है और पैरों में बंधी घुंघरू/चौरासी की तानों में गायन करती हैं। वादक, झांझ, ढोलक, मंजीरा आदि बजाते हैं। विशेष कर फागोत्सव के समय यह राई का नृत्य होता है। गायक गाते हैं, रंग बरसता है, बेड़नी भी गा उठती है -

रंग डारौ समार, पोलका ना भीजै फुलालैन को-
हो-ओ पोलका ना भीजै फुलालैन को।।
उक्त कहरवा नगड़िया की तान के साथ समाप्त होता है।

5.3. बृज वासिनी नृत्य

बुन्देली लोक काव्य में बृजवासिनी नृत्य भी दिखाई देता है। यह बृजवासिनी नृत्य करने वाली एक जाति होती है जो शादी ब्याह आदि के शुभ अवसरों पर देहाती लोगों के मनोरंजनार्थ नाच गान करतीं हैं। बेड़नी और बृजवासिनी में पर्याप्त साम्य है। बेड़नी का कार्य राई (फाग) में नृत्य करना है जब कि बृजवासिनी का कार्य शादी ब्याह में जाना तथा नाचना गाना है।

5.4. बुन्देली लोकगीत मंडल

संगीत के तीन प्रकार हैं। गायन, वादन, और नृत्य। बुन्देली संस्कृति के लोक नृत्य लोक नाट्य की तरह से लोकगीत मंडल भी पर्याप्त महत्वपूर्ण स्थान रखतें हैं। यह प्राचीनकाल से चले आ रहें हैं। इन लोक गीतों को निम्न लिखित भागों में बाँटा जा सकता है।

1- जातीय लोकगीत - यथा ढिमरया, कछला लोकगीत भजन आदि।
2- गम्मत मंडली।
3- कीर्तन मंडली।
4- लोकगीत मंडल।

5.4.1. जातीय लोकगीत

यह लोकगीत परम्परागत रूप से प्रत्येक जाति में चले आ रहें हैं। कछया भजन, ढिमरया राग, चमरया राग, भदौरियाऊ फागें रांकड़िया, खंजड़ी, नगड़िया, लोटा, चमीटा, झींका, कसावरी, मंजीरा तथा रमतूला आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है।

5.4.2. गम्मत मंडली

गम्मत मंडली में नाच गाना होता है। मृदंग, ढोलक, हारमोनियम, झींका, मंजीरा आदि वाद्य यंत्रों की सहायता से भजन, पद, ख्याल तथा फिल्मी पक्के गीत आदि गाते हैं।

5.4.3. कीर्तन मंडल

यह कीर्तन मंडल प्राचीनकाल से ही चले आ रहे हैं। इन मंडलों में भक्ति का सुन्दर लोक काव्य का भंडार होता है। इन कीर्तन मंडलों के नाम देवताओं के नाम पर रखे जाते है। जैसे- विष्णु कीर्तन मंडल, बजरंग कीर्तन मंडल, रघुपति मंडल, प्रेम कीर्तन मंडल, गणेश मंडल, नीरसिंह कीर्तन मंडल, भद्रकाली कीर्तन मंडल, राधा कृष्ण कीर्तन मंडल, आदि हैं। इन मंडलों का काम धार्मिक कथाओं का कीर्तनों के रूप में गायन करना है। हारमोनियम, बैन्जो, मंजीरा, झींका, करतालें, ढोलक तथा ध्वनिविस्तारक यंत्र (माईक) का प्रयोग होता है।

5.4.4. लोक गीत मंडल

आजकल कीर्तन मंडलों की तरह से लोकगीत मंडल भी बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। परम्परागत रूप से चले आ रहे लोकगीत, सोहरे, बधायें, दादरे, विवाहगीत, संस्कारगीत, आदि के अतिरिक्त समयानुसार आज कल के अनेक लोकगीत गाये जाते हैं। धार्मिक अवसरों के - देवी गीत, सुआटा गीत, कार्तिक गीत, राछरे, बसन्तोत्सव के फाग गीत आदि अनेक प्रकार के लोकगीत होते हैं। इन लोकगीत मंडलों का काम समायानुकूल लोकगीतों को प्रस्तुत करना है।

बाबा नाट्य से टेसू नाट्य तक के निम्न लोक नाट्य गीतों का विस्तृत विवरण 'लोक काव्य की पृष्ठभूमि' के शीर्षक वाद्य तथा नाट्य के अंतरगत किया गया है।

5.5. बाबा नाट्य
5.6. स्वांग
5.7. रावला
5.8. नौटंकी
5.9. रामलीला
5.10. ढोला
5.11. रहस
5.12. दान लीला
5.13. बहुरूपिया
5.14. टेसू नाट्य

इस प्रकार बुन्देली लोककाव्य में लोककवियों ने जनता के स्वस्थ मनोरंजन के लिए इन सब की रचना की है अतः लोकगीतों के रूपों में लोक साहित्य बिखरा पड़ा है।

6. रीति नीति परक गीत

बुन्देली लोक काव्य पर विंहगावलोकन करने पर रीति परक काव्य तथा नीति परक काव्य का भी पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के लोक गीतों में सामाजिक नियमों नीतियों की हृदय स्पर्शी व्यजंना सामाहित है। क्या होना चाहिए न होना चाहिए, किसका परिणाम क्या होता है आदि तथ्यों का उल्लेख इस प्रकार के काव्य में है। यद्यपि प्रथम अध्याय में लोक संस्कृति का रक्षक, मनोरंजन के आदि के उल्लेख में तथा लोक साहित्य के क्षेत्र में लोककाव्य की विविधता का कुछ अंश इंगित किया गया परन्तु लोक काव्य की परिसीमा तथा वर्गीकरण प्रथक प्रथक है। किसी अज्ञात कवि की उपदेशात्मक उक्ति दर्शनीय है-

उसर खेती अजा धन उर लोभी जजमान
जै तीनी जब मिलत है जब रूठ जाए भगवान ।

इसी तारतम्य में -

बडें नरन के संग तें उंच हो जात
अजया गत मस्तक चड़ी निर्भय पाती खात ।

दृष्टांत

किसी वन में एक कमजोर बकरी चरवाही की नजर से ओझल हो गई और रह गई सिंह ने दहाड़ लगाई और बकरी ने सोचा की अब तो प्राणांत होना ही है अतः स्वंय क्यों न सिंह को आत्म समर्पण कर दूँ । बकरी निडर होकर सिंह के पास गई आप मुझे खाकर अपनी क्षुधा शांत करें । सिंह ने कहा आप इस तरह मेरे पास क्यों चली आई । बकरी ने कहा शरीर का प्राणांत तो होना ही है अतः आपकी क्षुधा शांत क्यों न करवाऊँ । अतः में चली आई और आपका सामीप्य मुझे निर्भय बना रहा है । सिंह प्रसन्न हो गया । उसने हाथी को आदेश दिया कि इस कमजोर बकरी को अपनी पीठ पर बैठाओ और जंगल की बढ़िया मुलायम पत्तियां छॉंट छॉंट कर खिलाओं ऐसा आदेश हाथी ने शिरोधार्य किया । जंगल के राजा ने इस प्रकार उसे छोड़ दिया । बकरी स्वस्थ हो गयी । यह सूक्ति परक लोक काव्य है -

अन्य उद्धरण - लीक लीक गाड़ी चलै, लीकई चलै कपूत ।
लीक छोड़ तीनों चलें, सयार, सिंह, सपूत ।। "
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
पल में प्रलय होयगी, बहुर करेगी कब ।।
सुई सुहाग, उर सुगर जन, दो के एक करन ।
सुआ, सरौता, करतनी एक के दो करन ।।
आलस कर खेती करै, बंजी करै सुसाय ।
सत्यानाश की बात का, अठया नाश हो जाय ।।
पावक, वैरी रोग, रिन, सपनें राखै नाहिं ।
जे थोरे बाढ़ै पुनि, महा जतन सौ जायं ।।
रिन चुकन, कन्या मरन, प्रात काल स्नान ,
जे पैलां दुख देत हैं, पाछे सुक्ख महान ।।
वामन, वैद्य, मशालची, इनकी उल्टी रीति ।
औरन खौ गेलें बतायें, अपुन नौकु गये भीति ।।
वैश्या वानर, अग्नि, जल, सूजी सुआ, सुनार
जे दश होंय न आपने कूटी, कटक, कलार ।।
सात वरस तक लाड़ले, दस लौ ताड विशेष ।
जब सुत हो गये 12 वरस के, अपुन समानहिं लेष ।।
कनवां से कनवां कहौ तुरतई जै वौ रूठ ।
धीरें धीरें, पूछ लौ, कैसें गई ती फूट ।।

इस प्रकार रीति-नीति परक काव्य की समाज में बहुत व्यापकता है । ऐसा लोक काव्य समाज में बहुत ही उपयोगीं तथा हृदयस्पर्शी है । समाज के लोगों को यह लोक काव्य प्रकांण्ड़ विद्वानों तथा अनुभव सिद्ध बातों द्वारा बनाई गयी है । ऐसे लोक काव्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण तथा

पंचायतों को सुलझाने में बहुत सहायक होती है । इस प्रकार के लोक काव्य को संग्रहीत करके एक पृथक दिशा निर्देश किया जा सकता है । रीति नीति परक लोक काव्य की एक एक पंक्ति अमूल्य है ।

लोकगीतों में सौन्दर्य परक अभिव्यक्ति

बुन्देलखण्ड़ क्षेत्र एक आंचलिक क्षेत्र है, जिसमें प्रकृति सौन्दर्य पारिवारिक और लोक जीवन की हित साधना लोक पर्व और समय समय पर लगने वाले उत्सवों पर मेले आदि आयोजित किये जाते हैं और इन सब लोक रंजन का माध्यम लोक गीत ही हैं । लोक गीतों के साथ ग्रामसंगीत और नृत्य की परम्परायें भी संयोजित होती रहतीं हैं । लोक गीत जन मानस को अनुप्रणित करता है । अतः इसमें गेयता एक प्रमुख तत्व है जिससे अभिव्यक्ति में सौन्दर्य सृजन होता है । गीतों की यह परम्परा चाहे एकल गीतों में अभिव्यक्त हो अतः समूहगान में , इनके सौन्दर्य में कोई स्थिरता नहीं आने पाती । ये गीत जब परिवार में गाये जाते हैं तो इनके अन्त में महाराजा, रामा, रे, हो आदि की टेक बनी रहती है,और ये गीत की स्वाभाविकता को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं । संस्कार गीतों में प्रायः महाराज की ध्वनि गूंजती है जबकि विवाह आदि अवसरों पर सीता के सौन्दर्य अथवा राम के गौरव चरित की छाप तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत की जाती है । इन्हीं गीतों में प्रसंगानुकूल भाव मुद्रायें भी बदलती रहती है । जब ये गीत किसी पर्व या त्यौहार पर गाये जाते हैं, तो इनमें राम और सीता से प्रायः तुलना करते हुये गीतों का संयोजन किया जाता है । कार्तिक के गीतों में ऋतु वर्णन और प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन स्थिर रहता है । सामूहिक गीतों में प्रचलित आख्यान भी अभिव्यक्त किये जाते हैं । जिनसे सम्पर्क होने पर जन मानस बिम्बात्मक सौंन्दर्य की मानसिक रचना कर आनंन्दित होता है । राम सीता के साथ में कहीं कहीं राधा और कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन भी किया गया है किन्तु वह अपेक्षाकृत कम मिलता है ।

बुन्देलीगीत एकल और सामूहगत होते हैं । एकल गीतों में प्रायः किसी पर्व का वर्णन पौराणिक आख्यान अथवा प्राकृतिक सौंन्दर्य का वर्णन किया जाता है । इतिहास परक आख्यानों में आल्हाखण्ड के वीर गीत वहु प्रचलित हैं । जिनकी एक ही लय अरोह और अवरोह उनके गीतात्मक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हैं । ये वीर गीत प्रायः अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कर अलंकारिता को महत्व देते हैं । आल्हा खण्ड के वीर गीत इस रस की उत्पत्ति तो करते ही हैं । उनके द्वारा ध्वनित झंकार सौंन्दर्य भी कानों में गूंजकर नये प्रतिबिम्बों की रचना करता है । इन वीर गीतों में प्रायः 'कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग के करकस अक्षर की प्रतिध्वनियों वीर तत्व को उद्घाटित करने में सक्षम होती हैं ।

अन्य सामाजिक लोक सम्पर्क गीतों में श्रृंगाररस की प्रधानता है । जिनके अनेक सन्दर्भो में मांनसल सौन्दर्य अभिव्यक्त किया गया है । ईश्वरीय के रजो विषयक गीत श्रृगांर की विभिन्न भूमिकाओं को अभिव्यक्त करते हैं । श्रृंगार परक संबंधों में विवाह के गीत बहुधा प्रचलित हैं । जिनमें श्रृंगार रस के नितांत धरातलीय सौन्दर्य से उदात्य सौन्दर्य तक के चित्रण मिलते हैं । पारिवारिक रूप में पति-पत्नी, देवर,भाभी, और पड़ौस के व्यक्तियों में होने वाले मनोरंजन आदि के गीत श्रृंगार परक ही हैं । एक ओर संयोग श्रृंगार का सौन्दर्य जितनी सूक्ष्मता से किया जाता है उतनी ही सूक्ष्मता से वियोग श्रृंगार का वर्णन प्रायः मिलता है । यदि संयोग श्रृंगार में राम सीता का उदाहरण दिया जाता है तो वियोग श्रृंगार में कृष्ण और गोपियों का वियोग वर्णित है ।
हास्यरस के गीत प्रायः कम हैं किन्तु होली के अवसर पर अथवा दीवाली के मौनियां नृत्य के अवसर पर गाये जाने वाले गीत हास्य उत्पन्न करते हैं । भयानक और अद्भुत रस का प्रयोग प्रायः नहीं

मिलता है । लेकिन भगवान की अराधना में गाये जाने वाले गीत शांत रस में अभिव्यव के अवसर पर आयोजित होने वाले मेलों में माता के गीत गाये जाते हैं । इन गीतों के और स्त्रियों समान रूप से भाग लेती हैं, और सामाजिक प्रदेय में योगदान करतीं हैं ।

रीति नीति परक गीतों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो सकती है । किन्तु कवियों ने यत्र तत्र नीति परक गीत प्रस्तुत किये हैं । ये गीत प्रायः एकल होते हैं और किसी न किसी प्रकार की शिक्षा से जुड़ा होता है । रीति विषयक गीत एकल होने प्रचलित नहीं होने पाते किन्तु ऐसा नहीं मानना चाहिये कि सामूहिक गीतों में नीति का होता । अनेक कवियों ने जीवन के अनुभवों से कहावतों और मुहावरों का प्रयोग कर संयोजित किया है । जिससे उनकी स्वाभाविकता बढ़ गयी है ।

प्रकृति विषयक गीत प्रकृति के सौन्दर्य को लेकर नदी, तालाब और जलाशयं का वर्णन करते हैं । अधिकांशतः वेत्रवती, कर्णवती, पुष्पवती, और चर्मवती नदियों का बुन्देलखण्ड की सजीव सत्ता का वर्णन है । कमल के फूल, टेसू के फूल , करौंदी के फूल, के फूल ,कनेर और आक के फूल प्रायः देवताओं और मनुष्यों के श्रृंगार वर्णन में प्रयुक्त दूसरी और प्रकृति के भयानक स्वरूप अरण्यों के वर्णन में मिलते हैं । किन्तु इन अरण्यं भी श्रृंगार की ही अनुभूति कराता है । इस प्रकार के बुन्देलखण्ड के लोक कवियों ने श्रृंगार, रसों, उपमा, यमक , श्लेष शब्द शक्तियों के द्वारा अपने गीतों से जन मानस को प्रभावित वक्रोक्ति अंलकार द्वारा भी बुन्देलखण्ड की महिमा गायी गयी है । मुंशी अजमेरी और द्वार द्वारा प्रतिपादित बुन्देल खण्ड के गीत अधिक प्रभावी बन सके हैं । जहाँ तक भाषा का बुन्देलखण्ड के लोक गीतों में बुन्देली शब्दों का प्रयोग मिलता है । जिससे बुन्देलखण्ड के वात चित्र उभरआता है । किन्तु ऐसे लोक गीतों का आन्नद वही व्यक्ति ले सकते हैं । जो बुन्देल अंचलों में निवास करते हैं । अपनी भाषा बोलते हैं और उनके बिम्बात्मक सौन्दर्य में तनमय कर लेते हैं । खड़ी बोली के शब्दों द्वारा बुन्देलखण्ड का नैसर्गिक चित्रण किंचित कठि होता है । किन्तु नगरी जीवन में उनको भी समझा जा सकता है ।

निष्कर्षता बुन्देलीलोकगीतों का सौन्दर्य उनकी भाषा शब्दों और रसों तथा अलं सुन्दरतम स्वरूपों में अभिव्यक्त है । गीतों में प्रयुक्त छंद लयात्कम है और उनमें संगीत शैि अपना योगदान करती हैं । अतः उनमें लालित्य के साथ माधुर्य भी सम्मिलित है ।

द्वितीय अध्याय
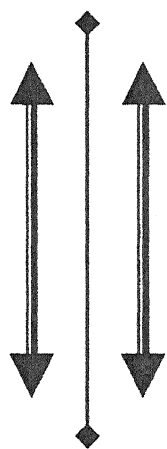
बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोकगीतकार

द्वितीय अध्याय

बुण्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोकगीतकार

बुण्देलखण्ड की काव्य परम्परा में आने वाले प्रसिद्ध लोकगीतकार एवं उनका काव्य दर्शन इस प्रकार हैं:-

1. रसरंग जी

श्री रसरंग जी झाँसी के निवासी थे । आपके जन्म के विषय में निश्चित पता नहीं लग पाया है परन्तु आपकी कविता का काल पंडित गौरीशंकर जी द्विवेदी 'शंकर' ने संवत् 1750 वि0 माना है । आपने 'वानी' नमक ग्रंथ की रचना की । आप वैष्णव संप्रदाय के शिष्य बने । आपकी रचनाओं का अंश इसप्रकार है -

तेरे महबूब वाकै ने
चसम की चोट मारी है ।
खड़ा सामने ही मैं जरा ,
नहीं पलक टारी है ।
जिलाया उनी ने मुझको ,
जिनों यह गांस मारी है ।
तड़पता कभी न जीता ,
विछोहा दर्द भारी है ।

साहित्यिक महत्वः- आपकी रचनाओं में सरल उर्दू के शब्दों का प्रयोग हैं । उसमें श्रंगारिकता तथा माधुर्य भाव की प्रधानता है। रहस्यवाद की झलक है ।

2. भग्गी दाऊ जी 'श्याम'

लोककवि श्री भग्गी दाऊ जी 'श्याम' का जन्म संवत् 1845 वि0 में जिला झाँसी शहर के मुहल्ला गंदीगर का टपरा, झाँसी में ब्राह्मण परिवार में हुआ था । आपका निधन अनुमानतः संवत् 1950 वि0 में हुआ था ।

साहित्यिक परिचय :- श्री भग्गी दाऊ जी उर्फ श्याम एक अखाड़िया कवि थे । आपने अनेकों दंगलों में विजय प्राप्त की । आपका निशान आपके मकान के आगे एक बड़े चबूतरे पर शान से लहराता था । आपके शिष्यों की संख्या भी बहुत थी । उनको शिष्य मंडली में खुशाल दर्जी नाम का शिष्य ख्याल और सैर गानें में बड़ा निपुण था । एक बार ओरछा में मऊरानीपुर वालों को फड़ में खुशाल ने जीत लिया उसका भग्गी दाऊ 'श्याम' ने निम्न सैर में सुन्दर वर्णन किया-

ख़ुश रययें खुशाल दर्जी क्या नुक्त लगाया ।
मऊ वारन कका ओड़छे में चंग छुड़ाया ।
पीतर के दायरे में अधरेंग जमाया ।।

श्री श्याम के काव्य में स्वाभिमान की भावना का प्राधान्य है । आपके काव्य में देश प्रेम की प्रबल भावना के दर्शन होते हैं । वे अपनी जन्मभूमि झाँसी की निंदा सुनने तक को कतई तैयार नहीं है और जो झाँसी की वदी या बुराई करे उसे श्याम कालका को खिला देने के लिये तैयार हैं । जन्म भूमि के प्रति असीम अनुराग देखिये -

जा झाँसी शिवराज की
अति शुभ घरी बसाई ।
जो झाँसी की लटी तकै
सुन ताय कालका खाई ।

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व

भग्गी दाऊ जी श्याम सैर साहित्य के लेखक ही नहीं प्रसिद्ध गायक भी थे। श्याम जी ने शैर को दंगली रूप दिया और फड़ में अनेक बार विजय प्राप्त की । " इस प्रकार शैर साहित्य को जन जागृति में लाने का श्रेय श्री श्याम जी को है । श्याम ने शैरों में सभी पक्षों पर प्रकाश डाला है। जिससे बुण्देलखण्ड में शैरों का अधिक प्रचार हुआ है और उसे फड़ का रूप प्राप्त हुआ है । स्पष्ट है कि श्याम जी ने बुन्देली लोक साहित्य की विधा सैर को सजीव रखा । अपने इस साहित्य को सुरक्षित भी रखा। इसी कारण यह साहित्य प्राचीन काल से आज तक बुण्देलखण्ड के जन जीवन में अबाध गति से सुधारस का अक्षय स्रोत प्रवाहित करता आ रहा है। इस लोक रागिनी से बुण्देलखण्ड भूमि जनपद झाँसी बसुन्धरा कृत कृत्य हुई । निश्चय ही श्याम जी के शैर साहित्य में जनपदीय संस्कृति और साहित्य को जीवत व सुरक्षित रखा है। इस सरल साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर भर दिये है । जैसे

जौ झाँसी की लटी तकै ,
सुन ताय कालका खाई ।

इन पंक्तियों में कितना प्रबल अनुराग मात्र भूमि के प्रति है जो अन्यत्र दुर्लभ है । इसी प्रकार ओरछा के नत्थे खां के प्रति उनके भाव देखिये -

कब कब करी सपूती इनने,
कब कब करी लराई ।
चड़ आये दल साथ वेशरम,
रेचक लाज न आई।
ठानी वृथा न मानी नेंकऊ
शेखी आन जनाई ।
जो झाँसी की लटी तकै ,
सुन ताय कालका खाई ।।
करें ज्वान सनमान पान मुख
सिर में बंधी पगाई ।
लयें सैफ सेंगि कम्मर में ,

विछुआ वंक ढटाई ।
भरी जौम सम रौम रौम में ,
कब होय ढक्का ढाई ।
जे झाँसी की लटी तकै,
सुन ताय कालका खायी ।।

श्याम जी की भाषा सरल व बोध गम्य है। जन सामान्य के हृदय पर तीर की तरह जा चुभने का गुण विद्यमान है। उसमें यथा स्थान अलंकारिक सौन्दर्य भी है । रसों की दृष्टि से उसमें रसानुभूति कराने की पूर्ण क्षमता है एवं विविध रसों का वर्णन है । उनके साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों की गरिमा बनाये रखने की प्रबल भावना है । जनपदीय लोक संगीत के वाद्य चंग, ढ़ोल, मजीरा आदि के साज बाज में गाकर श्रोतोओं को मंत्र मुग्ध करना अपनी लोक संस्कृति की निराली विशेषता है । इस प्रकार श्याम जी का साहित्य लोक साहित्य और संस्कृति की अमूल्य धरोहर है ।

3- हृदयेश कवि

हृदयेश कवि का पूरा नाम पं0 हीरालाल व्यास था । आप अपने समय के उद्भट कवि थे । संवत् 1851 वि0 में झाँसी में आपका जन्म हुआ था । आपने सन 1857 के स्वाधीनता संग्राम में झाँसी की रक्षार्थ समरभूमि में लड़ते - लड़ते बलिदान किया । आप कलम और तलवार के धनी थे । महाराजा गंगाधर राव के दरबार में बहुत सम्मान था । प्रजा के जन उनसे अधिक उनकी कविताओं को चाहते थे । झाँसी के कई पुराने बूढ़ों को श्री हृदयेश जी के छंद अब भी कंठस्थ हैं । उनका कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं है ।
श्री हृदयेश जी ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। आपके काव्य में रीतिकालीन प्रभाव है । रीतिकाल में उत्पन्न होने के कारण अद्भुत चमत्कार इनके काव्य दृष्टव्य में भाषा भी दुरूह नहीं होने पाई है ।

1- विश्व वश करन
2- नायिका भेद तथा
3- अलंकारों का रत्नकोष ।

तीन रूपों में इनका हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त है। आपने सुकवि होने का परिचय अनेकों प्रकार से दिया है। आप नायिका भेद और अलंकारों के प्रकांड पंडित थे । श्रृंगार की कविताओं को रचने में आपने आचार्य केशव के समान प्रतिभा प्रदर्शित की है। आपकी भाषा में सरसता, मधुरता, व्यंजकता तथा चित्रात्मकता है । जैसे -

फूल फूल, अल अल,
झूलत हिडोरें झूल
भूल मन मोद भरी
रच रच जात हैं ।
वरज वरज वर वास ,
अरज कर
लरज लरज डार ,

• बुन्देलखण्ड की संस्कृति साहित्य , पृष्ठ - 186
• बुन्देलखंडी लोकगीतकार पृष्ठ - 59

मच मच जात है ।
बरस बरस मेघ
सरस हृदयेश वर
चपला परस भूमि
नच नच जात है ।
मचक मचक देख
अचकत लाल लुक
लचक लचक वाल
बच बच जात हैं ।

साहित्यिक महत्व

हृदयेश जी ने प्रकृति चित्रण नायिका भेद, श्रृंगार रस आदि का सुन्दर साहित्यिक वर्णन किया है । आपका काव्य उत्कृष्ट साहित्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। उसमें लोक जीवन की झांकी है।

4- गंगाप्रसाद सुनार

श्री गंगाप्रसाद सुनार का जन्म सन 1801 ई0 के लगभग झाँसी में दाऊ दोंदेरिया जी के यहाँ खजांची मुहल्ले में हुआ था । आपने आधा ,रौर, कवित्त ,ख्याल, सवैया आदि की रचनायें की हैं । अनुमान है कि आपके समय में रानी झाँसी सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में कूँदी । आपने झाँसी की रानी से संबंधित अनेक सुन्दर रचनायें लिखी हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि आपका स्वर्गवास सन 1857 ई0 के पश्चात ही हुआ । आपकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है -

जान कें अकेली राव गंगाधर रानी खां,
सहस समूह दल टीकमगढ़ साजौ है ।
छीन लई मऊ ओ रानीपुर जब्त कियो,
लैंके वड़वान आन सागर पै भाजौ है ।
कहत गंगाप्रसाद धोके आ झाँसी पर ,
डार दयो डेरा फेर गोला खूब बाजो है ।
प्रबल ज्वार सिंह निकर के पसर करी,
नत्थे खां जमादार ,खेत छोड़ भागो हैं
जान के अकेली चहुँ ओर से घेरी बांध,
हिम्मत अलबेली करी लड़बे की तैयारी है ।
दिनो है हुक्म घन गजै न को तैयार करो
प्रलय के समान कड़क बिजली समारी है।
गंगा प्रसाद मने देश परदेश में,
बड़े बड़े शूरन की शूरता बिगारी है ।,
धुर कर डारी बात लड़ई सरकार हूँ की,

• माहौर अभिनंदन ग्रंथ
• उदय और विकास - मित्र- पृष्ठ सं. 274

धन्य वाई साब धन्य बीरता तिहारी है ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

आन के पठान रार कीनी नग्र झाँसी में ,
हाँसी भई झाँसी अपकिरत बड़ी भई ।
मार मार बम्मन सैं मोरचा हटाये दिये ।
पसर बुन्देल की दार सी दरी गई ।
मने गंगा प्रसाद देश परदेशन में ,
लंदन अग्रेंजन की शान हूँ चली गई ।
मार के महेन्द्र और के बिमार के अजीजाशाह ,
बैठ के विमान स्वर्ग लोक को चली गई ।

साहित्यिक महत्व

लोककवि श्री गंगाप्रसाद सुनार का एक एक छंद अमूल्य है। आपकी घानाक्षरियों में रानी झाँसी की वीरता का वर्णन तथा नत्थे खॉ की गद्दारी का वर्णन दृष्टव्य है । आपके काव्य में राष्ट्रीयता के बीज प्रस्फुटित एवं पल्लवित होते हुये दिखाते है। रानी झाँसी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की दीप शिखा के युद्ध का सजीव चित्रण कवि मदनेश की तरह से स्व0 गंगाप्रसाद जी सुनार ने किया है।

कड़क बिजली तोप तैयार करना । युद्ध में वीरता दिखाना तथा वीरगति के लिये 'बैठ के विमान स्वर्ग लोक को चली गयी' पंक्ति प्रशंसनीय है तथा बेजोड़ हैं । इस प्रकार राष्ट्रीय भावोन्मेषण में श्री सुनार जी का काव्य प्रथम एवं शीर्ष स्थान पर रखा जायेगा । आपने काव्य में वीर रस उमड़ रहा है। अलंकारिक सौन्दर्य भी है। जैसे -

1. दार सी दरी गयी
2. धूर कर डारी बात
3. खेत छोड़ भागो है
4. हाँसी भई सासी

आदि बड़ी सजीव लोकोक्तियाँ हैं । इनके प्रयोगों से कविता सजीव हो गयी है उसमें ओज गुण की प्रधानता हैं ।

5- श्री ईश्वरी प्रसाद 'ईसुरी' कवि

बुण्देलखण्ड के जन प्रतिनिधि कवि ईसुरी शोध के लिये नया विषय नहीं कहा जा सकता । लोककवि ईसुरी का जन्म सं0 1881 वि0 में शोधकर्त्ता के निवास मऊरानीपुर से 5 किलोमीटर की दूरी पर 'मेढ़की' नामक ग्राम में हुआ था। आप तीन भाई थे । सदानंद ,रामदीन तथा ईसुरी । ईसुरी की पत्नी का नाम श्यामबाई था। आपका निधन अगहन सुदी-7 को हो गया । आपको कम पढ़ा लिखा माना जाता है। आपके अनन्य साथी या शिष्य धीरे पंडा थे जिनका उल्लेख यत्र-तत्र अनेक चौकड़ियों में हैं ।

ईसुरी ने अपने अंतिम काल में बगौरा जिला महोबा में ही दाग देने की अभिलाषा की थी। निम्न चौकड़ियाँ जो अन्यत्र देखने में नहीं आई है इससे स्पष्ट है -

यारो इतनो जस कर लइयों,
धरें चित्त में रइयों

जब कीमार होंय पलका पै
बुला नतैतिन लइयों
भाई बंधु सब कुटुम कबीला
बिन टेरे आ जइयों
चाय जहाँ लो मरे 'ईसुरी'
दाग बगोरा दिइयों ।।

इसी भाव की दूसरी प्रकाशित रचना है

यारो इतनौ जस लै लीजौ,
चिता अन्त ना की जौ।
चलत सिरम कौ वहत पसीना,
भसम कौ अंतस भींजौ।
निगतन खुर्दे चेटका लातन,
उन लातन मन रीजौ।
वे सुरती ना होंय रात दिन,
जिनके ऊपर सीजौ ।
गंगा जू लौ मरें ईसुरी,
दाग बगौरा दीजौ।

ईसुरी ने अपने बड़े भाई की पत्नी पर यह चौकड़िया कही थी-

जा धज अब नई बनत बनायें,
बिन बाला पन पायें
गुड़ी तीन गालन पै पर गई,
एक ललन के जायें।
दाँत बतीसऊ डोलन लागे,
का भओं पान चवायें।
ईसुर कात पुराने मड़ पै,
का होय कलई चड़ायें।।

एक बार ईसुरी अपने मामा के यहाँ किसी अवसर पर नहीं पहुँचे तो वहाँ लोगों ने कहा कि आप क्यों नहीं पधारे तो उन्होनें कहा-

हो गओ फुनगुनियां से फोरा,
पेला हतो ददोरा।
एक की जाँगा दूजौ हो गऔ,
दो को हो गओ जोरा।
दवा करे सें दर्द कमो ना,
एक मास दिन सोरा।
कोंचा सूज गदलियाँ सूजीं,
सूज गये सब पोरा।
एई से ईसर आ नई पाये,
जौ पर गओ बिलौरा।।

वगौरा ग्राम के पास बड़ागाँव है। इन दोनों गांवो की सीमा मेड़े पर झगड़ा था। विवाद तय नहीं हुआ तब पंचायत में ईसुरी को लिवा गये साथ में पटवारी भी थे। वे उचित स्थान पर खड़े होकर सीमा निर्धारित कर बोले-

तन तन दोउ जनेगम खायें,
करन फैसला चायें।
नाय बकौरा कौ मंड़ौ है,
बड़े गाँव को जायें।
खतरा और खतौनी संगै,
लाला जू कखियायें ।
मांझ टौरिया पे मेड़ी है,
तूँदा बिना बनायें ।
गड्डी गाड़े ढ़ड़कत नइयाँ,
ओंगन बिना लगायें ।

इसुरी की कुछ चौकडियाँ इस प्रकार है-

धीरे पंडा इत लौ आबै,
हमें मरौ सुन पावें,
समझा दियो सोस ना ल्यावें,
होतव पै बस काहें।
जा तक मिलैचिनारी उनखां,
राम राम पंचावें।।

उन्होंने काया पर बड़ी सुन्दर आध्यात्मिक उक्तियाँ प्रस्तुत की हैं।

जो तन हो गओ माटी कूरा,
खाक बने कै घूरा।
लिटा चिता पै आग लगावै
पटकत डूड़ बमूरा।
हाड़ पसुरिया देह माँस को,
जर के हो गऔ चूरा।
फेक गंग में देत ईसुरी,
खा गये मीन मँगूरा।।"

❖ ❖ ❖ ❖

जो कोउ पतो लगावै जी कौ,
मानस उर पंक्षी कौ
कारौ पीरो लाल हरीरौ,
कौन वरन है की कौ
हरये गरये कौ अटकर नइयाँ,
कै मन तौल रती कौ।

• लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय कारीगर से प्राप्त

ईसुरी जो कोउ अर्थ लगावै,
चेला होय उसी कौ।।"

❖ ❖ ❖ ❖

जो कोउ मन हीरा कौ जानें,
का मूरख पै चाने,
पैला चोट सहे निजघन की,
पाछूं चढ़ै खजानें
कच्चौ टूक टूक हो जावे,
पक्कौ नहीं नशाने।
ईसुर कात देत है शोभा,
जावें जौन दुकानें।।"

ईसुरी जी के शिष्य श्री गंगाधर सुविख्यात लोक कवि भी बताये जाते है श्री गंगाधर जी ने गुरू पत्नी ईसुरानी पर चौकडियॉं श्रृंगारिक भावनामय बनाई थी वह दरवाजे पर झाड़ू दे रही थी कि उनके गालों पर सांकरदार करन फूल की सांकर बार बार लटक रही थी जो अर्द्ध ढके हुये मुख मण्डल की शोभा बड़ा रही थी। गंगाधर वही से लौट भरकर टट्टी जाने को निकले और देखकर उन्होंने रचना की –

सांकर कन्न फूल की झूमें,
प्यारी कौ मौ चूमें।

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व

बुन्देली लोक साहित्य में लोक कवि ईसुरी का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से शीर्ष स्थान है। वे प्रतिनिधि कवि के रूप में हमारे समक्ष हैं। उन्होंने प्रत्येक विषय में पर्याप्त लिखा और सुन्दरतम स्वाभाविक भी लिखा। भाषा में लोकोक्तियों कहावतों का प्रचुर प्रयोग है। ईसुरी के कृतित्वपर विचार करते समय यह विचार करना पड़ता है कि उन्होंने क्या नहीं लिखा। धर्म संस्कृति समाज सुधार, श्रृंगार, प्रकृति, लोक कल्याण, नैतिक मूल्य, उपदेश नायिका भेद, नख शिख आदि सैकड़ो विषयों पर पर्याप्त साहित्य उनके काव्य में है। उन्होंने इस संदर्भ में स्वयं कहा है कि —

फागें सुन आये सुख होई,
देह देवता मोई।
इन फागन पै फाग न आवै,
कई इक करत अनोई
भीर भकन कौ उगलन रै गऔ,
कली कली में जोई।
बस भर ईसुर एक बची ना,
रस सब लऔ निचोई।

● लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय कारीगर से प्राप्त

महाकवि ईसुरी ने अन्तिम समय में वृद्धावस्था में अपने प्राणों को सम्बोधित करके यह कहा था –

संगी विधुर गये सब तोरे,
टोरे नेह के डोरे।
कानन हो कें बैरे हो गये,
दाँत बतीसऊ तौरे।
आंखन होके सूजत नइयां,
नैन राम ने फोरे।
वारन कोद चितै लो प्यारे,
भये कारे से गोरे।
ईसुर कौन सुकन के लाने,
प्रान देह में कोरे।।''

ईसुरी को कविताओं में विद्वानों द्वारा उलट-पलट कर प्रस्तुत किया गया है तथा उनके नाम पर अश्लील व नग्न श्रृंगार की भौड़ी रचनायें भर दी गई है। अतः उनकी दृष्टांत परक तथा वास्तविक रचनायें मौलिक तथा वास्तविकता पर विश्वसनीय मानी जायेगी । ईसुरी का काव्य वर्तमान बुन्देली लोक काव्य श्रृंखला में सर्वोपरि है।

6. हिर्देश बन्दीजन

सन् 1844 ई0 में हिरदेश बन्दीजन का जन्म झांसी में हुआ था। आपकी कविता का काल सन् 1868 ई0 माना जाता है। आपका साहित्य फुटकर रूप में यन्त्र तत्र बिखरा पड़ा है। 'श्रृंगार नौरस' इनका एक ग्रंथ प्राप्त है।

उदाहरण –

चंदन चहल चित्र'' हिदेश मोहै
रस बतियान सो प्रमोद सखियान में।
खासे खस फरस कुमारे फुट्टी फल फेल
फैल भर शीतल समीर छतियान में।
गोरे गात सोहै गरे गजरे चमेलियन के।
गुहे वर सुधर सहेली अति स्थान में।
गेदते उरोज कर परस गुलाब जल,
छिरकत लाड़ली लली की अखियान में।।

साहित्यिक महत्व

आपने भक्ति एवं श्रृंगार की मधुर रचनायें लिखीं हैं। नायिका, नखशिख आदि के सुन्दर वर्णन दृष्टव्य है। आपके काव्य में अलंकारिक सौन्दर्य भी है फिर भाषा सरस व सरल तथा मधुर है।

7. श्री मन्नू कवि

श्री मन्नू कवि ब्रह्ममभट्ट का जन्म झाँसी नगर में सं0 1910 वि0 में हुआ था। आपके कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं हैं । यद्यपि आपने अनेक ग्रंथों की रचना की है। सं0 1930 से आपकी कविता का काल माना जाता है। सं0 1960 वि0 में आपका गोलोक वास हुआ।
काव्य के उदाहरण :-

पापन सों भरी कन्त,
शापन सों जीर्ण देह।
पापान की घरी जहाँ,
काकन अपार तौ
वौरे देत और बूढ़त पुनि,
भव पारावार ताहि
कैसे उतार हो,
मन्नू कवि" कहैं ताकी
विगरी डरार डांग,
बिगरी धरी तौ ताहि
कैसे को सुधारतौ,
धारतो न चरन पधारतो।
न मुनि संग-कोशिला कुमार
बिना को सिला उधारतौ ।।

उक्त रचना राम भक्ति वर्णन की है। गौतम पत्नी अहिल्या उद्धार श्री राम चरण रज स्पर्श से हुआ था। इसका सुन्दर वर्णन है। समंग श्लेष की सुन्दरता दर्शनीय है। यथा-

"कोशिला कुमार बिन, को शिला उधारतौ।

इसी प्रकार-

एक पाई अरध त्रिपाद की विभूति सर्व
श्री मुख सहस्त्र वाद अंध्रज अरत जात।
श्री पति स्वयंभू शम्भू अम्बू तप तेज सवै,
मन्नू कवि" नजर निछावरें करत जात ।
यत्र तत्र भूरि भूमि भाव सौ भरत जात ।
देवी देव वृन्दन के इंद्रन उपेन्द्रन के,
मुकुट महेन्द्रन के पांवड़े परत जात ।।

साहित्यिक महत्व

श्री मन्नू कवि का सरल और साहित्यिक दोनों प्रकार की रचनाओं लिखने के कारण अधिक महत्व है। आपने बुन्देली रचनायें भी लिखीं हैं। रामावतार सम्बन्धी धार्मिक भावना से प्रभावित हैं। आपने महारानी लक्ष्मी बाई की वीरता की गाथा का भी वर्णन किया है। आप अपने समय

- बुन्देलखण्ड वैभव तृतीय भाग पृष्ठ - 652
- बुन्देलखण्ड दर्शन एवं बुन्देल वैभव पृष्ठ - 632

के प्रसिद्ध कवि रहे हैं आपका काव्य सरल तथा सरस है। आप भारतीय संस्कृति के धार्मिक कवि हुए हैं।

8. श्री हीरा लाल

आप स्व0 श्री राम सहाय जी कारीगर के पिता थे। आपका नाम श्री हीरालाल लाल था। 'लाल' कवि के नाम से आप कविता लिखते थें। आपका जन्म सन् 1868 ई0 स्यावरी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री खुमान था जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। आपका परलोक वास सन् 1923 में हुआ।

साहित्यिक परिचय

आपकी फुटकर रचनायें यत्र तत्र विखरी हुई हैं। क्योंकि वास्तु कला मूर्ति कला आदि का पेशा होने के कारण जहाँ काम करते वहीं रचना रचकर दे देते थे। सीखने वाले सीखतें थें। तत्कालीन जमींदार की कचहरी का वर्णन तथा" जमींदार दोहावली" के कुछ दोहे उपलब्ध है। जमींदार की कचहरी का वर्णन उनके आदेश पर उन्होनें बात की बात में कह डाला था।

अवध देश झाँसी जिला मऊ तैसील बखान ।
स्वाग पुरा में बसत है, सदानन्द श्री मान ।
सदानन्द श्री मान की कचहरी बनकर हुई तैयार ।
अन्दाजन जिसमें लगें तीन हजार कल्दार ।
तीन हजार कल्दार करी बत्तिस डलवाई ।
तितर्लीं राखी आठ चार साजी अलमाई ।
बरनें हीरा लाल लगौ शुभ टोड़ा छाजौ ।
बैठे सब सरदार बाज रओ हरमौनियम बाजौ ।।

इस प्रकार इस काव्य में रीतिं कालीन काव्य का गुण है। वर्णनात्मक शैली में सुन्दर चित्रण संक्षेप में किया गया है। उनकी जमींदार दोहावली के कुछ दोहे देखिये।

राजा से हैं ठाट सब बने शाह श्री मान,
अंग्ररेजन के हितू हैं जोरें मौत लगान ।
आव करें आदर करें धरें सुपारी पान ।
पानदान तैयार हैं व्यारी में पकवान ।
मड़दारन खौं देत हैं ख्वाई पैला चार ।
मोल खरीदौ सो करे जमींदार बेहार ।
सीदे ना आयें घरे टेड़े आय जरूर ।
जबरन कारज लै करें है गरीब मजबूर।
सिर कोसा पग पनैंया अचकन ऐंठी मूंछ।
रोब दार बानी सदा कौन करत है पूंछ।
सोची कभऊँ न देश की आन बान की बात।

शाह बनें शासन करें बड़िडन भौत डरात।
परखन वारे परखवें को है "हीरा लाल"
जमींदार दोहावली वरनत करत ख्याल।।
कोऊ हित साजे कोऊ दीन सहारो देत।
कन्या कारज रूपैया हांत पसारे देत।
सासी कयें कजरा भओं मोसी कौ लो जान।
छुड़ा लई है भूमि सब कर डारो वीरान।।

साहित्यिक महत्त्व

लोक कवि के काव्य में देश की चिंता तथा निर्धन वर्ग के प्रति सहानुभूति की भावना दृष्टिगोचर होती है । जमींदारों के गुणों, आंतक व व्यवहारों का पूरा चित्रण इस पुस्तिका में होगा ऐसा इसके कुछ अंशों से विदित है-

कर वाबें बेगार सब,
मन के करबें काम,
लाल साल मन में गयें,
रैयत चपी तमाम।।

आदि उक्तियों से यह स्पष्ट है कि जनता में सामाजिक असंतोष था। दबदबा का वातावरण था। उनके परोपकारी स्वभाव का भी कवि ने वर्णन किया है कि वे मदद भी लोगों की करते थे । इस प्रकार तीखें व्यंगों द्वारा जमींदारों के चरित्र पर प्रहार तथा सामाजिक सुधार, लोक कल्याण की भावना उनके काव्य में निहित है। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में निःसंदेह यह लोक काव्य समाज उपयोगी रहा होगा।

9- चतुरेश "नीखरा"

श्री चतुरेश नीखरा झाँसी के ही श्री लघुदास नीखरा के अनुज थे। आप का जन्म पं0 गौरी शंकर जी द्विवेद्वी "शंकर" ने सम्वत् 1925 विक्रमी माना है। आप हनुमान जी के उपासक थे। श्री नीखरा जी ने 1- हनुमान पच्चीसी, 2- झाँसी की रानी का रायसा लिखा है। आपके दोनों ग्रन्थ अप्रकाशित है झाँसी का वर्णन सम्प्रति रूप में प्रस्तुत है -

सब गुन रासी प्रकासी अवनाशी वासी,
खासी झाँसी सुधासी या झाँसी कासी
शहर झाँसी है आला
किला बुण्देलखण्ड वाला
नगर के आप पास है.कोट
बड़ी है जिसे किले की ओट
मारता तीन कोस पर चोट
नसामें दुश्मन की कोई चोट
बड़ी लक्ष्मी रानी की गोट।

करी अग्रेंजों से क्या चोट
डिवीजन रेल का क्या निराला,
किला बना बुण्देलखण्ड वाला।
देवी खंडेराव की जीवन सा दरगाय।
मेला अखती दशहरा पंचकुइयन रओ छाय।
किले में नेचें पचकुइयाँ,
आंति जल भरने को गुईयाँ।
भोर जब नभ में रयें तरैंया।
छोड़ प्रीतम की गल बड़याँ,
एक से एक चन्द्र सी मुइयाँ,
बोली बोले मैना टुइयाँ,
गूजरी पायजेब हैं पइयां,
माथे पै बेंदा सरकइयां,
पास है देवी का दिवाला
शहर झाँसी है आला ।

दोहा - गनेश मंदिन के निकट, पचकुइयान की गैल
धरम कुंड नरिया वई, चल सरांय को छेल ।
भाजी वालों की नरिया ठाय ,
मुड़कटा महादेव सरनाम
सड़क दतिया गोवों को आम
महल रघुनाथ राव कौ खाम
आंतिया तला बाग गुल्फाम
कहाँ तक यारा गिनाये नाम ,
लहर देवी जी ज्वाला
शहर झाँसी है जहाँ आला ।

दोहा - बना सरोवर शहर विच, भरा लवालव नीर ,
आयें पास डिडयन के विच विच चांदे तीर ।
खूंट चारों पर मड़ी सुदेश
बीच में मंदिर बड़ा गणेश
चौखंभों में नंदीगण सुन्दर वेश ,
करें जप तप नर नारि हमेंश
धो रई चंद्र मुखी निज केस
अपसरा सरमाती लख वेश
लवालव भरी धरम शाला
शहर झाँसी है जहाँ आला ।

● बुन्देली लोकगीतकार पृष्ठ 65-66 ले0 पं0 गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर '

साहित्यिक महत्व

श्री नीखरा जी का झाँसी का वर्णन 24 चौकड़ों में है। इसमें वास्तविकता है उद्धात्मकता कदापि नहीं । झाँसी का सांगोपांग वर्णन अपनी मात्र भूमि के प्रति अनुराग उत्पन्न करता है । नगरी की प्रशस्ति मंदिरों का वर्णन तथा रसात्मकता के लिये नर नारियों के आभूषणों का वर्णन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। लक्ष्मी तालाव, गनेश मंदिर, मुड़कटा महादेव आदि के वर्णनों में संस्कृति के विशुद्ध स्वरूप के दर्शन होते हैं ।

शहर झाँसी है जहाँ आला' की पुनरुक्ति से मात्र भूमि के प्रति अनुराग उमड़ता है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादिप गरीयसी' की गरिमा नीखरा जी के काव्य में सन्निहित है। नीखरा जी का काव्य रसात्मकता में पूर्ण सक्षम है उसमें अलंकारों का आभाव नहीं है। 'धो रहीं चन्द्र मुखी निज के' रूपक तथा 'सवगुन रासी प्रकाश अविनाशी वासी' जैसी अनुप्रास परक उक्तियों में अद्भुत सौन्दर्य है। अन्त्यानुप्रास, उपमा भी सुन्दर बन पड़े है। उनके लोक साहित्य में लोक भाषा के साथ बुन्देली की विशुद्धता भी परिलक्षित होती है। जैसे- 'लबालब' 'गुइंयाँ' 'तरैंया' 'पइयां' मुड़कटा महादेव आदि बुन्देली के प्रभावशाली तथा हृदय स्पर्शी शब्द हैं। इनके काव्य में खड़ी बोली के शब्दों का भी प्रयोग है परन्तु वे सरलतम बनाकर हमारे समक्ष आये हैं। इस प्रकार यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि श्री चतुरेश नीखरा झाँसी के एक ख्याति प्राप्त तथा उच्च कोटि के कवि है।

10- मुंशी अजमेरी

मुंशी अजमेरी का परिचय देना कोई नई बात नहीं है फिर भी झाँसी जिले को ऐसी महाविभूतियों को अवतरित करने का गौरव प्राप्त होने के कारण उनका चिरपरिचित व्यक्तित्व नकार कर प्रकाश में न लाना भी युक्ति संगत नहीं है। अतः उनके लोक काव्य को प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत किया जा रहा है। आप का वास्तविक नाम प्रेम बिहारी था। स्वर्गीय मो0 अमर अजमेरी का जन्म मार्ग शीर्ष कृष्ण द्वितीय सं0 1938 (22 नवम्बर सन् 1881) को बुन्देलखण्ड के साहित्यिक तीर्थ चिरागाँव जिला झाँसी में हुआ था। पाली राज्य पर गौरी शाह ने आक्रमण किया उसी अवसर पर उनका परिवार जैसलमेर से चिरगाँव आ बसा था। राष्ट्रकवि स्व0 मैथलीशरण गुप्त और मो0 अजमेरी जी के पिता दोनों में निकट स्नेह हो गया। गुप्तजी और अजमेरी जी की शिक्षा साथ-साथ हुयी इसी से दोनों आपस में भ्रातत्व भाव मानते रहे। मुंशी जी को शारदा ने साहित्य और संगीत का वरदान दिया था। यदि इधर ओरछा नरेश श्री वीर सिंह जू देव अपने दरवार में मुंशी जी को राजकवि के पद से विभूषित करते तो उधर राष्ट्रपिता गाँधी जी भी अपनी साबरमती की कुटी में प्रार्थना सभा के समय श्री मुंशी जी द्वारा वंदना कराकर राष्ट्र कल्याण की साधना करते।

प्राचीन काल में मुंशी जी के पूर्वज मारवाड़ी हिन्दू थे, जिन्हें विवश्ता वश मुस्लिम धर्म स्वीकार करना पड़ा था। परन्तु स्वयं मुंशी जी मन और विश्वास से हिन्दू धर्म और संस्कृति के एकनिष्ठ उपासक रहे है।

साहित्यिक परिचय

मुंशी जी ने स्वाध्याय से फारसी, संस्कृत, बंगला, हिन्दी भाषाओं पर भरपूर अधिकार कर लिया था। गद्य और पद्य कहने की समान प्रतिभा उनमें थी। उन्होंने पद्य में अद्वितीय लिखा और गद्य में उनके नाटक, कहानियाँ, गप्पें और व्यंग अपना शानी नहीं रखते। आपका कविता

काल सम्वत् 1960 से प्रारम्भ होता है उनकी प्रकाशित तथा अप्रकाशित 13 पुस्तकों का नाम ज्ञात होता है।

प्रकाशित पुस्तकें –

1- मधुकर शाह
2- गोकुल दास
3- हेमलता
4- चिमांगदा
5- रवीन्द्र साहित्य संस्मरण
6- सोहराव रूस्तम नाटक
7- मद मद मियां की कहानी
8- भालूराम कालू संवाद

अप्रकाशित पुस्तकें –

1- जिहाजी (गद्य कहानी)
2- प्रेम पयोनिधि (कविता संग्रह)
3- कबीरदास नाटक
4- रामकथा

मुंशी अजमेरी के लोक काव्य का उदाहरण इस प्रकार है, जिसमें बुण्देलखण्ड की कीर्ति का वर्णन है –

चंदेलो का राज्य रहा चिरकाल जहाँ पर।
हुए वीर नृप गण्ड, मदन परमाल जहाँ पर।
बड़ा विपुल बल विभव बने गढ़ दुर्गम दुर्जय।
मंदिर महल मनोज्ञ सरोवर अनुपम अक्षय।।
वही शौर्य सम्पत्ति मयी कमनीय भूमि है।
यह भारत का हृदय रूचिर रमणीय भूमि है।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अड़े उच्च गिरि और सघन वन लहराते है।
खड़े खेत निज छटा छबीली छहरातें हैं।
जरख तेंदुये रीछ, बाघ स्वच्छंद विचरते।
शूकर, सांवर, रोज, हिरन चीतल है चरते।
आखेटक के लिए सदा जो भेंट भूमि है।
अति उदंड बुण्देलखण्ड आखेट भूमि हैं।।"

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

लक्ष्मी बाई हुई यहां झाँसी की रानी।
जिनकी यह विख्यात वीरता सबने मानी।
महाराष्ट्र का रक्त यहीं का था वह पानी।
छोड़ गया संसार मध्य जो कीर्ति कहानी।
अबला सबला बने यही वह नीर भूमि है।
वीरांगना बुण्देलखण्ड वर वीर भूमि है।
तुलसी केशव, लाल, बिहारी श्री पति गिरधर।
रस निधि राम प्रवीन पजन ठाकुर पद्माकर।
कविता मंदिर कलश सुकवि कितने उपजाये।
कौन गिनावै नाम जांय किसके गुण गाये।

वह कमनीया काव्य कला की नित्य भूमि है।
सदा सरस बुण्देलखण्ड साहित्य भूमि हैं।।"

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

यहाँ ओरछा राम अयोध्या से चलि आये ।
और उनाव प्रसिद्ध जहाँ बाला जी छाये ।
वह खजुराहो तथा देवगढ़ अति विचित्र है ।
त्यों सोना गिरि तीर्थ जैनियों का पवित्र है।
तीर्थ मयी जो सफल साधना साध्य भूमि है ।
अति स्किक बुण्देलखण्ड आराध्य भूमि है।।"

साहित्यिक महत्व

आपने विशुद्ध खड़ी बोली की साहित्यिक रचनायें भी लिखी है। आपने बुण्देलखण्ड भूमि की वंदना सरल बुन्देली भाषा में की है। इसमें मधुरता तथा अलंकारिकता है। शैली सरस व प्रसाद गुण युक्त है। राष्ट्रीय प्रेमाकुंर प्रस्फुटित करने में पूर्ण सक्षम है। आपकी कविताओं में सभी रसों का सामंजस्य है। आपने मुस्लिम होते हुए भी हिन्दु संस्कृति से अटूट प्रेम प्रदर्शित कर उसका पोषण किया आपकी रग रग में हिन्दुत्व भरा दिखाई पड़ता है । साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से श्री अजमेरी जी का काव्य उत्कृष्ट कोटि का है ।

11- घनश्याम दास पाण्डेय

प्रसिद्ध लोक कवि श्री घनश्याम दास जी पाण्डेय का जन्म सम्वत् 1943 वि0 में मऊरानीपुर जिला झाँसी में हुआ था आप मऊरानीपुर की पाठशालाओं में अध्यापक रहे। 25 वर्ष की आयु से आपने काव्य रचना प्रारम्भ की। लोक छंद सैर साहित्य में आपकी ख्याति अच्छी थी। झाँसी बुण्देलखण्ड महासभा ने आपको कवि रत्न की उपाधि और स्वर्ण पदक प्रदान किये। कवीन्द्र श्री नाथूराम जी माहौर झाँसी के साहित्यिक अखाड़े में आपका निधन सम्वत् 2013 में हो गया। आपने पुत्र वियोग में कुयें में डूबकर महोबा में आत्म हत्या कर ली।

साहित्यिक परिचय

आपने लोक साहित्य में लोक कवि की महत्वपूर्ण गरिमा का निर्वाह करते हुए साहित्यिक काव्य भी सृजन किया। माहौर जी, श्री घासीराम जी व्यास एवं पाण्डेय जी का उस समय त्रिगुट पर्याप्त विख्यात था। आपने निम्न लिखित पुस्तकों की रचना की है। जिनमें से कुछ प्रकाशित हैं तथा कुछ अप्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-

1- बाल विवाह बिडम्बना
2- प्रणायाम
3- कूट प्रश्नावली
4- गाँधी गौरव
5- भगवत भजन माला

अप्रकाशित ग्रंथ-

1- हरदौल चरित्र
2- छत्रसाल वावनी
3- प्रतापोल्लास
4- लक्ष्मी सम्मुल्लास
5- पावस प्रमोद

6- नरसी मेहता
7- किरातार्जुनीय
8- व्यंग विनोद

आपके उक्त बारह ग्रंथों का वर्णन प्राप्त है। आपकी पाण्डुलिपियाँ आपके सम्बन्धियों के पास इधर उधर दब गयीं है। परन्तु पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। विषय विस्तार के भय से यही संक्षेपी करण पद्धति से कवि का स्वरूप प्रकट किया जा रहा है।

विनय की फाग

हे हरि अपनी ओर निहारौ, मम औगुन न विचारौ ।
अधम उधारन पापी पावन वानों विदित तुम्हारौ ।।
साखी दई साधु सन्तन नें, सोन झूठ कर डारो ।
फेंट बांध लो पीताम्बर की, चारऊ भुजा संभारौ ।।
जब "घनश्याम" परो है पेड़े दुख से याहि उवारौ ।।'

इस प्रकार अपने को अधम तथा ईश्वर को अधम उधारन कहते हैं। बुन्देली कहावत 'पेडें परना' का सुन्दर प्रयोग है कि भक्त पीछे पड़ा है तो आपको तारना ही पड़ेगा।

सजनी वा पनघट पै जइये, घट घट वासी पैये,
हरि रस भर अपनों घटिया घट, बढ़िया सरस बनैये।
औघट घाट वाट कों तजिकै, घट घट घट चरैये।
जा "घनश्याम" नीचे पनघट पे, ना पन घटी करैयैं

मऊरानीपुर में दोनों में मिट्टी भरकर कजली बोने की प्रथा है। श्रावणी पूर्णिमा पर तालाब पर कजली का मेला जमा हुआ था। स्त्रियाँ तालाब में कजरियाँ सिरा रहीं थी तभी पाण्डेय जी की प्रतिभा जगी और मुख से निकला-

पहिरे पट रंग-विरंगन के अति अंग अंनग जगावती हैं।
दृग में कजरा सिर पै कजरी, मुख सों कजरी धुन गावती हैं।
"घनश्याम" तला पै झला के झला खड़ी खोटें भुजान दिलावतीं हैं।
दुनियाँ को डुवाइवो हाथन सों, दुनियाँ को मना दिखरावतीं हैं।

साहित्यिक उद्धरण

लोक कवि जन प्रतिनिधि "ईसुरी" ने नयनों की उपमा पिस्तौलों से की है तो कहीं तलवारों से - जैसे-

'अंखियाँ पिस्तौलें सी भरकें, मारन कात समर कें ।'

परन्तु पाण्डेय जी इन नेत्रों से नारी को माता की दुष्टि से देखने का उपदेश दिया है। हमारे वैदिक उपदेश-मात्रवत् पर दारेषु का परिपालन किया है

यथा- अंखिया अब न रई तरवारें, ना पिस्तौल प्रहारें,
हरि हरि कह हम जग नारिन कौ माता मान निहारें।

नेह भरे जननी हरि नैना मो पे इमरात ढारें।
निरखत उनें भली भाव हम नजर पगन पै डारें।
कवि "घनश्याम" मोक्ष दाता हरि, मोरें जनम सुदारें।।"

इसी प्रकार लोक कवि ने एक अन्यत्र स्थान पर नेत्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि-

नैना वे लगाम के घोरे, चलें कुपथ मंह जोरें ।
सूरदास ने समझ कुचाली अपने हंतन फोरे ।।

12- गौरी शंकर खत्री 'गिरीश'

श्री गौरीशंकर खत्री 'गिरीश जी' का जन्म पौष कृष्ण नवमी संवत 1950 को झाँसी में हुआ था । तथा स्वर्गवास 1955 ई0 में हुआ । आपने माहौर जी को काव्य प्रेरणा प्रदान की । उस समय कवि सम्मेलनों का अधिक प्रचलन नहीं था । उस समय गिरीश जी गली गली अलख जगाते फिरते थे । आप में रात रात भर कविता सुनाने की अदभ्य शक्ति थी । गिरीश जी काव्य मंगल गोष्ठी के भी संचालक थे जो उन्हीं के स्थान पर प्रति मंगलवार को आयोजित होती थी । आप सूझ बूझ के कवि थे, आपकी कविता के उदाहरण देखिये -

माया मालती है खिली, तृष्णा को सुगंधिता की
महक रही है भौन भौन वाग वाग में
ताही में रंगी लौ मन मधुप गिरीश रम्यों
विमल विवेक त्याग झूठे अनुराग में
विविध उपाये कीन्हें हारया है विचारौ तब
शरण तिहारी आयो तेरे प्रयाग में ।
कीजियो कृपा की कौर ,दीजिये पनाह नाथ
निज पद पंकज के पावन पराग में ।

' वीर जवाहर '
मोह का प्यारा , मोती लाल का दुलारा दिव्य ,
कमला का प्यारा त्याग मूर्ति विश्व ख्याता है
कढ़ा तीर्थ राज कृष्ण जन्म भूमि मंदिर में,
निपट अनौखा पाठ शांति का सिखाता है
विपति गिरीश दीन हीन की नशाता बहु,
अत्याचारी कुटिल कुशासन निपाता है ।
जाहर जवाहर सुजीवन पताका भव्य ,
भारत स्वतंत्रता के भाग्य का विधाता है ।

• बुन्देली फाग साहित्य पृष्ठ 360 ले0 डा0श्याम सुन्दर बादल

सहित्यिक महत्व

कविवर गिरीश की रचनाओं में राष्ट्रीयता तथा धार्मिकता की प्रबल भावना है । उनकी सरल तथा हृदय ग्रहय भाषा है । संसार को बड़ी सरल भाषा में उपदेश दिये गये हैं शांत रस की सुन्दर अभिव्यंजना है

13-चतुर्भुज शर्मा 'चतुरेश'

पं0 चतुर्भुज शर्मा 'चतुरेश' लोक कवि का जन्म ग्राम टोड़ीफतेहपुर में सन् 1894 ई0 में हुआ था । आपको ननिहाल में गोद लिया गया । तब से आप अपनी ननिहाल ग्राम भसनेह में रहने लगें आपका निधन सन 1942 में हुआ ।

आपकी शिक्षा यद्यपि सामान्य थी परन्तु आपने स्वध्याय से हिन्दी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । आप ज्योतिष कर्मकांड तथा काव्य शास्त्र के प्रकांड विद्वान थे । आपकी रचनायें तत्कालिक पत्र 'स्वाधीन' झाँसी में और 'शारद' पत्रिका, अयोध्या में यदा कथा प्रकाशित होती रहती थी । आपकी रचनायें निम्नलिखित हैं -

1- बेगारु शासन तथा आदि तत्व विवेचना(मराठी का हिन्दी अनुवाद)
2- अवध निर्णय
3- दान लीला
4- नवधा भक्ति
5- मन प्यारे की फागें
6- गौ पुकार

इन पुस्तकों के अतिरिक्त कवित्त, सवैया,दोहा सैकड़ौं की संख्या में यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं । आपको अखाड़े बाजी की रचनायें लिखने का पर्याप्त शौक था । आप अखाड़िया कवि थे तथा बुन्देली भाषा में रचना किया करते थे । उदाहरण -
संप्रति रूप में आपकी बुन्देली की कुछ रचनायें देखिये -

राखन हार कहो फिर हौन ,
लिवावन आवत जाह लुबौआ
टारी टरै न घरी पल एक
खड़े रयें चाय हजार घरौआ
नैनन सें चतुरेश लखौ
झपटो झट आयकें काल सौ कौआ
ले गयो झुंड सें वेग उठाय, .
दबाये कें एक बटेरी को छउआ ।

प्रस्तुत रचना में लोक कवि ने काल की विकराल व अपरिहार्य लीला का वर्णन बड़े उपदेशात्मक रूप में तथा सरल शैली में किया है । जब जिसका काल निमंत्रण आता है ,कोई रोक नहीं सकता उसका जाना निश्चित होता है । इसी प्रकार आपकी भक्ति परक एक और श्रेष्ठ रचना देखिये -

जोर जमात कमात फिरे धन ,
नाहिं कछू हरि भक्ति में जाने
तेल बनाय लगाये सुकेश दें
भाल में विन्दु त्रिमान रिझावे
बंचक भक्ति कहावत राम के
कामना क्रोध भरे अभिमाने
किंकर कंचन कामिनि के
चतुरेश कहावत संत समानें ।

श्री चतुरेश जी ने जार्ज पंचम के सम्मान में सिलवर जुबली के अवसर पर अभिनंदन किया था तथा वाइसराय द्वारा पुरुस्कृत भी हुये । जार्ज पंचम की प्रशस्ति देखिये -

भारत इंग्लैंड ट्रासवाल बीच माना लैंड
सुन आस्ट्रेलिया में कलश धरा रहे
कहें चतुरेश जिसे चारहूँ दिशा के देश
रजत जयंती आज जार्ज की मना रहे
आयरलैंड, फाकलैंड, केनिया कन्तरादि
करके गुण गान धोंस दुंदभी बजा रहे
पूरव से पश्चिम लौ, दक्खिन सें उत्तर लौ
कौन सौ प्रदेश जहाँ गीत नहीं गा रहे
भारत कौ गौरव आज फूलो फूलौ बाग
फूलन में फूल हार वन सुहा रहे ।।

श्री चतुरेश जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था । आपमें आशु कवित्व शक्ति थी । आप मुंशी अजमेरी जी 'प्रेम' के अनन्य मित्र थे । रहस लीला में श्री चतुरेश जी कृष्ण तथा श्री अजमेरी जी राधिका बनकर सुंदर लाला संवादात्मक रूप में किया करते थे । आपकी दान लीला का लोक छंद- दादरा देखिये -

दै दै दही कौ दान री गुजरिया
तें सुन्दर तोरी मंटकी सुन्दर
आढ़े सुरंग रंग लाल चुनरिया
दै दै दही कौ दान री गुजरिया

● बुन्देली वार्ता के संपादक पं0 कन्हैयालाल शर्मा 'कलश' सुपुत्र श्री चतुरेश से प्राप्त

दान दिये बिन जान न पावै
कौन के घर की है छोहरिया
दै दै दही कौ दान री गुजरिया
कंस राज की गेल जो जैहै
फोरेंगे तोरी दही की डहिरया ।।
दैदै दही कौ दान री गुजरिया ।
बेली सखी मन प्यारे से प्यारी
हम तौ हैं दासी सासी तिहरिया
दै दै दही कौ दान री गुजरिया ।।

साहित्यिक महत्व

बुन्देली लोक साहित्य के क्षेत्र में श्रीचतुरेश जी सदैव अमर रहेंगें। आपका बहुत सा साहित्य उनके पुत्र वयोवृद्ध साहित्यकार श्री 'कलश' जी प्राणों से लगाये हुये रखें हैं। तथा बहुत सा साहित्य अभी भी शोध का विषय बना हुआ है। उनकी सैकड़ों रचनायें यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं । आपने राष्ट्रीय धार्मिक ,समाज सुधार एवं श्रृंगारिक रचनायें प्रस्तुत कीं तथा उत्तम प्रकार के साहित्य का सृजन किया । समग्र रुप से आपके साहित्य में लोक कल्याण के स्वर मुखरित होते हैं। अतः निर्विवाद रूप से आपका काव्य उत्तम हैं। उसमें रस, अलंकार तथा छंदों की विवेचना स्वाभाविकता लिये हैं । आपका काव्य पूर्णरुपेण साहित्यिक दृष्टि से तथा सामाजिक दृष्टि से उत्कृष्ट है ।

14- घासीराम व्यास

राष्ट्रकवि पं0 घासीराम व्यास व्यक्तित्व के धनी देश के गौरव तथा सुपरिचत कवियों में से हैं। परन्तु उनके जनपद झाँसी में जन्म लेने से यह वसुन्धरा धन्य हुई । इसलिये ऐसी महाविभूतियों की गणना भी आदर से इस शोधग्रंथ में की गयी । आपके लोककवि के स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करना प्रमुख लक्ष्य हैं । पं0 घासी राम व्यास का जन्म राष्ट्रभक्ति में पगी जननी श्रीमती राधारानी की कोख से सुखनेई नदी के कूल पर स्थिति मधुपुरी (मऊरानीपुर) जिला झाँसी में सन 1903 ई0 संवत 1960 वि0 में अनंत चतुर्दशी को हुआ था । स्वाधीनता प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय आन्दोलनों में आप कई बार जेल गये। जेल में ही साहित्य सृजन करते रहे। आपका निधन 16 अप्रेल 1942 ई0 को हुआ । इस प्रकार आप केवल 39 वर्ष तक ही जीवित रहे । आपके पिता का नाम पं0 मदन मोहन उर्फ छिंगे लाल व्यास था ।

साहित्यिक परिचय

आपका समस्त जीवन राष्ट्रीय संघर्ष में बीता। आपने 22 वर्ष साहित्य सेवा और जेल यातनाओं में संघर्ष में बिताये । आपने अनेक विषयों पर लेखनी चलाई है । समस्या पूर्तियाँ, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित काव्य के रूप में तथा अनेक अप्रकाशित ग्रंथों के रूप में आपका साहित्य भरा पड़ा है। आपके चक्रव्यूह, बालकृष्ण चरित्र , जीवन-ज्योति ,रुक्मणी मंगल, फाग साहित्य, ऋतु वर्णन, ऋतुबिहार नायिका भेद, कुरुक्षेत्र, नवरस वर्णन आदि प्रमुख रचनायें अप्रकाशित है तथा श्याम

• श्री कन्हैयालाल शर्मा 'कलश' पुत्र श्री चतुरेश बुन्देली वार्ता से प्राप्त

संदेश सं0 2000 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ । सन् 1984 ई0 में आपकी मूर्ति मऊरानीपुर में लगाई गयीहै । बुन्देली शोध संस्थान झाँसी ने 'राष्ट्रकवि व्यास भवन ' का निर्माण झाँसी में महारानी लक्ष्मीबाई व्यायाम मंदिर इंटर कालेज में कराया । व्यास-जयंती के दिन अनवरत रूप से बुण्देलखण्ड के प्रसिद्ध मेला जल बिहार मऊरानीपुर मे अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन होता है ।

रचनाओं के उदाहरण एवं साहित्यिक महत्व

फाग वर्णन

1. ऐसी फाग आज लौ न कानन सुनी ती कहूं
कानन सुनीती नहीं अपजस जाग री
व्यास कहें रंग ओ गुलाल मिस भाँति भाँति
करत कुकाज कहे तनत न आगे री
कौन विधि कसिवौ निकसियै बनेगो यहां
गैल गैल घूमें ग्वाल वाल मद पागे री
वीर अब कैसे लाज रैहे नित नये नये
ब्रज में अनोखे उत्पात होन लागे री ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

2. दौर कर पकर अवीर लै गुलाल लाल
गालन लगायो मूंठ भर भर झौंरी है
मार पिचकारी की मचाई यों अगारी ताका
बनके विगारी सारी कीन्ह सखीरी है
व्यास कहें अबहुं न आय हो यहां पै अब
गैल बदनामी की बचाय हों न थोरी है
हटकी न मानों ठान ठनों अपनी ही आज
ऐंसी श्याम होरी है तो कौन बरजोरी है ।

3. निकसें नहि कोट उपाय किये
हिये नैन के वान गड़े सो गड़े
अब सीख हमें यह देती कहाँ
रण सूर अगाड़ी बढ़े सो बढ़े
द्विज व्यास रचै नहिं और कथा
जिन प्रेम के पाठ पढ़े सो पढ़े
फिर भीतर होत सुने न कहूँ
सखि हाथी के दांत कढ़े सो कढ़े

4- राष्ट्रीयता

यों तो व्यास का समस्त काव्य राष्ट्रीय काव्य कहा जायेगा । उनके रोम रोम में राष्ट्र प्रेम पगा दिखाई देता है । परन्तु विस्तार के भय से यहाँ दो एक उद्धरण प्रस्तुत हैं -

प्रण कर निकलें हैं शीश को हथेली धर
प्राण रहते न पग पीछे को पछेलेंगे
अरि के समक्ष दुरलख लख गोलियों के
समर समख निज वक्ष पर खेलेंगे
व्यास भारतीय शांति क्रांति का अपूर्व पाठ
देंगे पढ़ा विश्व को समोद स्परूप हो लेंगे
धसेंगे दुधारों पर नाचेंगे कटारों पर
आरों पर चलेंगे अंगारों पर खेलेंगे ।।
बेजा मत मान लेजा लेजा शीघ्र भेजा फाड़
नेजा पर टांग दे कलेजा देश द्रोही का ।।

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन

व्यास के विषय में जो भी कुछ कहा जाये वह नगण्य ही रहेगा। आपकी राजनैतिक विचारधारा अतुलनीय, आपकी राष्ट्रीय प्रेम धारा अनुपमेय,आपकी साहित्यिक प्रतिभा बेजोड़, आपका सांस्कृतिक प्रभाव क्षमता अमर तथा सर्व प्रकार से अनुकरणीय व वंदनीय है। रस, अलंकार, कवित्र आदि किसी भी प्रकार से व्यास का कृतित्व सिरमोर रहेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि "श्री व्यास जी को तो घर और बाहर राष्ट्रीयता ही नजर आती हैं।" (पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन), व्यास जी कोरे कवि नहीं थे राजनीति क्षेत्र में उन्होंने 20 वर्ष में जो काम किया वह काम कम सराहनीय नहीं था। (यशपाल जैन), "सत्यनारायण ब्रज कोकिल थे तो व्यास जी बुन्दलेखण्ड के कोकिल" (डा0 वनारसीदास चतुर्वेदी), "मैं राष्ट्रकवि घासीराम व्यास के राष्ट्रीय काव्य की और उनकी राजनैतिक विचारधारा की तारीफ करता हूँ। (पं.जवाहर लाल नेहरू)

15- पंडित गोविन्दास विनीत

बुन्देली का अधिकांश लोक साहित्य परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतः चला आ रहा हैं । गँव-गाँव में लोक गीतों के जीते जागते स्वरूप दिखाई देते हैं । प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव परम्परागत रूप से प्राप्त हैं । यह परम्परागत लोक साहित्य ही संगीत बनकर लोक की सतह पर विचरण करता हैं। साहित्यिक दृष्टि से इस लोक काव्य का बहुत अधिक महत्व हैं। बुदेन्ली लोक साहित्य से जाने-अनजाने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में यहाँ का जन-जीवन अनुप्रमाणित हैं। कविवर विनीत जी की जन्म भूमि तालबहट हैं।वे स्वर्गीय श्री रामदास जी पुरोहित के सहपाठी एवं परम स्नेही मित्र थे।

- ('सुकवि' अप्रेल-1930 पृष्ठ, 31)
- (राष्ट्रकवि श्री घासीराम व्यास व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्राप्त)

ओरछा नरेश मधुकर शाह के शासन में तालबहट ओरछा राज्य में था जब महाराज वीरसिंह जू देव प्रथम को ओरछा की गद्दी पर आसीन कराया गया और महाराज शाह चन्देरी राज्य राजा बने तब बानपुर और तालबेहट के इलाके चन्देंरी राज्य में आ चुके थे। चन्देरी कें शासकों की ग्यारहवीं पीढ़ी में महाराज मर्दनसिंह जूदेव बड़े ही पराक्रमी ,उदार ,कूटनीतिज्ञ व कुशल शासक हुए।

प्रजा वात्सल्य होने के साथ ही साथ में वे स्वदेश प्रेमी भी थे। किन्तु तालबेहट के इतिहास का विवरण देना यहां सम्भव नहीं है। यहाँ श्री व्यास जी के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाल रही हूँ। महाराज मर्दनसिंह जूदेव के दरवारी और आश्रित कवियों में श्री हरिदास व्यास जी के पितामाह श्री हरिदास व्यास की गणना थी । उनके कुछ फुटकर दोहे हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं यथाः-

'व्यास' पराई' कामनी, जूठी पातर जान,
बारी छांट बिडार ही, पीछे चाटत श्वान ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖
रासभ सौ सिंगार सज, रौर रहौ जस-रास,
बृथा नाम हरिदास तुम, जौ न भयौ- हरिदास

आपके पुत्र श्री बनारसी लाल भी राज-कवि और पुराणाचार्य हुए । उनके दो ग्रन्थ। 1- व्यास चौरासी, 2- बनमाली बिहार ही चर्चाओं में सुनने को मिलें है, इनका भी एक दौहा प्रस्तुत है- यथा :-

जन्म, मरन नित लखि अरे, गनत असंभव मीच
सीच मूरि हरिचरन सठ, पातन जल न उलीच

बनवारी लाल जी के पुत्र श्री मथुरादास जी भी अच्छे कवि थे। राज-क्रान्ति के कारण इन्हें राज सम्मान तो प्राप्त न हो सका परन्तु वंश परम्परा के अनुसार इन्होंने भी अनेकों दोहों का सृजन किया । यथा :-

सोई बन सोई सदन, सदन कुंज ललाल
मथुरा बिन घनश्याम के जून असाढ़ घाम ।

इनके पुत्र स्व0 श्री गोविन्द जी व्यास 'विनीत' हुए । उनका जन्म तालबेहट ग्राम जो आजकल ललितपुर जिले में है । आप पारासर गोत्रीय व्यास थे। ये कुशाग्र बुद्धि और बचपन से ही कविता-प्रेमी रहे । हिन्दी-उर्दू मिडिल तथा नार्मल ट्रेनिंग आगरा से पास कर वे 1920 ई0 में डिस्टिक बोर्ड के अध्यापक बने और इसके साथ ही वे स्वदेश हित के कार्यो में रत रहे। 1930 ई0 में 6 माह उन्होंने कारागार की यातनायें भी सही । सन् 1941 में वे अध्यापकी से त्याग पत्र देकर बम्बई चले गये ।

उन्होंने वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में चार वर्ष तक संपादन कार्य किया । सन् 1944 से 1948 तक गोबर्द्धन विद्यालय 'पोहरी' शिवपुरी का संचालन कार्य किया । सन् 1948 से 1953 ई0 तक झाँसी नगरपालिका में अध्यापन कार्य किया ।

विनीत जी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष एवं कर्मठता में ही व्यतीत हुआ किन्तु उनकें चहरें पर कभी शिकन परिलक्षित नहीं हुई । यहाँ तक कि उनकी पुत्री जब विधवा हुई तो उन्होंने झाँसी के सनाढ्य समाज की परवाह न कर तालबेहट के जिझौतिया ब्राहम्ण परिवारों के साथियों के सहायोग से पुत्री का विधवा विवाह बड़े ही उत्साह से एवं धूमधाम के साथ किया आपनी पत्नी रामादेवी का भी उन्हें पूर्ण सहयोग एवं सहमति रही उन्होंने अपने समाज के सगे सम्बन्धियों आदि सभी को ताक में रख दिया। साथ ही साथ समाज सुधार की दिशा में दृढ़ता से कदम आगे बढ़ाये जिसके फलस्वरूप जातीय सुधार को उनका भरपूर समर्थन प्राप्त रहा तथा इस दिशा में वे प्रशंसा के पात्र बने।

विनीत जी पूर्ण स्वस्थ सुन्दर और सुरीले कण्ठ वाले कवि एवं नाटककार थे। वे रामलीला में भी अभिनय करते थे। आर्थिक संकट और विषम परिस्थितियों में उन्होंने भी भाषा भारती के मन्दिर में जो भेंट समर्पित की उससे उनके तप और त्याग की झलक मिलती है। रोग शैया पर पड़े हुए भी उन्होंने अपने ग्रंथों के प्रूफ देखे।

स्व0 श्री गोविन्दास जी 'विनीत' ने काव्य 8, नाटक 9, और उपन्यास 9, तथा तरेखा की 6 पुस्तकें प्रकाशित कराई। उनकी एक आध्यात्मिक कृति, शान्ति दर्शन अभी भी अप्रकाशित है।

उनके काव्य ग्रंथ है-शिव-शिवा स्तवन, महाभारत श्रीमद भागवत, रामायण, गोविन्द-गीता, ब्रम्हानन्द भजन माल, कृष्ण कथामृत, प्रिया या प्रजा।

उपन्यास - आग, हत्यारा समाज, भ्रम के बादल, नथनी की भार, सोया सुहार, पाप का घड़ा, नहीं तो संघर्ष, तिलक।

नाटक- भक्त सूरदार, बिल्व मंगल, वीर अभिमन्यु, दानवीर कर्ण, अमरसिंह राठौर, सावित्री-सत्यवान, पृथ्वीराज चौहान, भक्त प्रहलाद, भक्त पूरनमल वीर शिवाजी।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त विनीत जी की बेसिक ड्रामा निबन्ध नव निधि आदि और अन्य पुस्तकें लक्ष्मी बुक डिपो मथुरा, गर्ग एण्ड कम्पनी दिल्ली, श्याम काशी प्रेम मथुरा और वैकंटेश्वर प्रेस बम्बई से छपी है।

पं0 गोविन्दास विनीत मूल रूप से वैष्णव काव्य धारा के कवि है। बुण्देलखण्ड में जन्म लेने के कारण उनकी भाषा बुन्देली मिश्रित खड़ी बोली रही है। वैष्णव भक्ति के प्रभाव के कारण कवि ने राम विषयक रामायण और प्रिया या प्रजा कृष्ण विषयक श्रीमद भागवत, महाभारत, और श्री कृष्ण कथामृत काव्य लिखे है । श्री कृष्ण कथागत, रामचरित्र मानस के अनुसरण पर चौपाई-दोहा शैली में लिखा गया है। 'प्रिया या प्रजा' सीता-निर्वासन की कथा है जो खड़ी बोली के विभिन्न छंदों एवं गीत शैली में संस्कृत गर्भित भाषा में लिखी गई है। शेष ग्रंथ राधेश्याम कथावाचक की शैली और लय में खड़ी बोली में लिखे गये है। प्रसंगानुसार रामायण-26 भागों में छोटी-छोटी पुस्तकाओं के रूप में प्रारम्भ में लिखी गई थी। जो अब एक ग्रंथ के रूप मे बनारस से प्रकाशित है।

रामायण और महाभारत में भक्त हृदय होने के कारण कविवर विनीत जी ने स्वतंत्र गायन भी लिखें है जो भक्तिभाव से परिपूर्ण है। ये गायन गीत प्रधान शैली में लिखे गये है जिनमें कवि ने विनय पत्रिका की भाँति प्रभु से कामना की है। कि इस संसार के मायाजाल से उन्हें अपनी भक्ति के आधार पर मुक्ति प्रदान करें ।

वैष्णव काव्य परम्परा में बुन्देलखण्ड का यह कवि राधेश्याम लय का एक मात्र गायक है। जिसे आज की गाँवों में खेली जाने वाली रामलीला एवं रासलीला में लोग बड़े चाव से सहायता लेते है। उनका एक गीत प्राथमिक पाठशालाओं में प्रायः गाया जाता था। हिन्डोल द्रुपत का यह गीत दर्शनीय है--

द्वन्द हास विश्व मान जगत वन्ध अवध चंद
करूण सुख शान्ति सदन आये आनन्द कंद
शेष शरद मोन रूप

जपत नारद देव भूप
जयति ध्वनि गंजित विनीत
गावत त्रैलोक गीत
जय जय कौशला नन्द

16-अन्य कवि

16.1-श्री मोतीलाल भट्ट "धनंजय"

श्री मोतीलाल 'धनंजय' का जन्म सन् 1914 ई0 में ग्राम लखावती तहसील गरौठा जिला झाँसी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बिहारी लाल भट्ट था। आप अपनी ससुराल मऊरानीपुर में रहने लगे थे। आपका स्वर्गवास सन् 1981 ई0 में हुआ था। आपने जूनियर हाई स्कूल परीक्षा राठ से तथा हाई स्कूल महाराजा कालेज छतरपुर से एवं इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण कर विशारद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की । आपकी साहित्यिक अभिरूचि थी। श्री भट्ट जी की रचनायें प्रसिद्ध पत्र "सुकवि" कानपुर में प्रकाशित हुआ करती थी अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी सैकड़ौं रचनायें प्रकाशित हुयी आपके कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुये "इन्द्रायन" प्रकाशाधीन है। आपके ग्रंथ इस प्रकार है- इन्द्रायन, किसान दोहावली, गीतिका।

ग्रंथ परिचय

1- इन्द्रायन- इस ग्रंथ में लगभग 500 दोहे है। इसमें सन् 1920 ई0 से लेकर सन् 1982 ई0 तक गांधी नेहरू युग से स्व0 प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के युग तक का वर्णन है। इस ग्रंथ में नेहरू परिवार के चरित्रों का वर्णन आदर्शात्मक रूप में है।

2- किसान दोहावली- इस ग्रंथ में किसानों की दयनीय दशा का वर्णन है। परिश्रम शक्ति जीवन का वर्णन निहित है।

3- **गीतिका-** ग्रंथ में उनकी फुटकर रचनाओं का संग्रह है। इसके अतिरिक्त उनकीं कविताओं के शीर्षक-द्रोपती विनय, कवियों की महात्ता, कवियों की विपदा, शिवाजी का आंतक, बसंत विरोध, ऊधौ गोपी संवाद (भ्रमर गीत), मधु की कविता, कुल दीपक, दिया बाबू, पतंगे के प्रति, कामना, पावस, बुन्देल भारती आदि सैकड़ों शीर्षक की रचनायें हैं। कवि का आत्मीन भाव राष्ट्र प्रेम दृष्टि गोचर होता है।

काव्य के उदाहरण

इन्द्रायन के प्रारंभ में कवि की वंदना एवं शुभाशीष देखिये-

छप्पय- जयति शिवा शिव मात सदा ।
भक्तन दुख भंजन ।
ज्यति चंद्रिका चंद्र मुंड जय,
अरि दल भंजन ।

1- जयति शैल जा विंध वासिनी
वैरि निकंदन ।
जयति भगवती भव्य काटत भव फंदन,
सुकवि धनंजय विनय मम हरन भार भुविमय भवन।
श्री इंदिरा को मातृ मम देव विजय,
जय जग जनन।।

छोहा- 'इंद्रायन लघु ग्रंथ यह,
भाव पूर्ण अति शिष्ट।
बड़े परिश्रम से रची,
भाषा सरल समिष्ट।।"

इस ग्रंथ के अंत में कवि ने लिखा है:-

सुखी रहै परिवार सब बाल गुपाल अनंत।
सुखी रहै देश निज, भारत वर्ष सुतंत।।
सेवा की शुभ भावना, रखे देश अभिमान।
जय जय भारत वर्ष जय जय जय हिन्दुस्तान
इंदिरा जी से विनय मम, दुखी धनंजय दीन।
शीघ्र मदद मुझको मिलें, पूरण ग्रंथ नवीन।।

इस ग्रंथ में 28 पृष्ठ है दोनों तरफ दोहे है।

सुकवि धनंजय भट्‌ट का यह आशीष
श्री राजीव महान जी, मुझे मिले वकशीष।"

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक अन्यत्र स्थान पर कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार से दिया है। जिसमें जन्म भूमि (लखावती) ग्राम का वर्णन है

4- विदित बुन्देली वीर भूमि को निवासी शुभ,
झांसी गुण रासी कौ मै सुकवि उदार हूँ।
ग्राम लक्ष्मणावती है जन्म भूमि जाति वीच,
यौवन में ससुर गेह करता विहार हूँ।
ज्ञाता हूँ सुनागरी औ संस्कृत आगत्र को मैं ।
देश भक्ति भाव का लिए हुये खुमार हूँ ।
काव्य के चलाता वाण पिंगल के गुणखींच।
गुण गांडविधारी धनंजय कुमार हूँ ।।'

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

ऊधौ गोपी संवाद का मधुर छंद देखिये :-

5- प्रभु रक्षक हैं सिगरे जग के,
तिन्है तक्षक हाय बनावती हैं।
निज स्वार्थ के नाते करो बदनाम,
भलो यह प्रेम निभावती है।।
अहो धन्य 'धनंजय' तुमरी मती,
पति मान जती को ध्यावती है।
कुवि जा सो कलंक लगावती हो,
रस्सी का सांप बनावती है।।"

सुकवि नवम्बर 1941 में प्रकाशित छन्द

6- वावरि भई है वीर, सांवरे सुजान जू पै,
सूश्वतन आंसू सुख सब विधि छोड़े हैं।
भोजन भजन गुरू जन हूँ की लाज तजी,
लोक परलोक में अजस बीज गोड़े हैं।
सुकवि धनंजय मन लाओ मन मोहन तें,
कैसो कुल नेम परयंक जब पौदे हैं।
काहा परी काहू को सु काहू सन ऐरी वीर,
गाँव के भगोड़े भये निंदक निगोड़े है ।।"

बुण्देलखण्ड का यशस्वी वर्णन देखिये

नत हो जहाँ नर्मदा नेह पगी,

दृग कंज से पाद पखारती है।
वर बेत्रवती बनी वीणा जहाँ,
कल नाद का राग उचारती है ।
गिरि विंध विशाल मराल हीये ,
यमुना सर तुल्यता धारती है ।
वह भारती ही सम बन्दों या वर,
वाणी बुन्देल की भारती हैं ।।''

कवि की कामना देश में समर्पित है

कामना-
नेही हो नवीन देश प्रेम का सनेही सदा,
तोड़ दे तडाक तम तोप का निवाला कटे,
वांध दे अवाध एक सूत्र में समाज सारी,
प्रेम तूल वर्तिका को नित ही सम्हाला करें।
सुकवि 'धनंजय' दै शोषित को तेल दान,
आत्म वलिदान का यों पूर्ण पाला करें।
भारती का लाल वह हरदे कसाला अब,
दिव्य दुति वाला किसी जेल में उजाला करें।

साहित्यिक महत्व

समग्र रूप से कवि की प्रतिभा पर विहंगावलोकन करने पर विदित होता है कि कवि धनंजय के साहित्य में देश भक्ति की ललक, समाज सुधार की झलक तथा भक्ति और श्रृंगार की छलक है। आपका सम्पूर्ण काव्य रस से ओत प्रोत है उसमें विशुद्ध राष्ट्रीयता, आलंकारिकता, तथा लालित्य है। पांडित्य नहीं । भाषा को मधुर व ग्राह्रय बनाकर धनंजय जी ने रसानुभूति कराने का प्रयास किया है आपका काव्य कसौटी पर कसने से वारह वानी के स्वर्ण की भाँति कुन्दन सा खरा उतरता है।

16.2. - श्री भगवान दास माहौर

किसी कवि नें कहा है-

एक हाथ ले लेखनी एक हाथ करताल,
झाँसी का भगवान ने ऊँचा कीना भाल।'

यद्यपि क्रांति और साहित्य साधना के प्रतीक डा0 भगवान दास माहौर म0 प्र0 में जन्में परन्तु वे झाँसी में अपने मामा श्री कवीन्द्र नाथ राम माहौर के यहाँ रहे और उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र झाँसी बनाया। सम्पूर्ण जीवन क्रांतिकारी व साहित्य साधक के रूप में यहीं गुजारा । अतः झांसी के हो गये । आपका जन्म सन् 1910 में 27 फरवरी को दतिया जिले के छोटी बड़ौनी ग्राम में हुआ था। आपके

पिता जी का नाम तुलसी दास था। डा0 माहौर स्वतंत्रता संग्राम के तपे तपाये सेनानी रहे । अल्पायु से आन्दालनों में भाग लिया। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद के साथ रहे 19 वर्ष की आयु में भुसावल स्टेशन पर पिस्तौल, बम व विस्फोटक सामान सहित पकड़े गये। 15 वर्षो तक जेल यातनायें सहीं। 1930 में आजन्म काले पानी की सजा हुई। आपका स्वर्गवास 12 मार्च 1979 को हृदय गति रूक जाने से हो गया।

आपने "दैनिक जागरण" झाँसी में सम्पादन कार्य किया। उदर पोषण के लिए अध्यापन कार्य किया । साहित्य महोपाध्याय तथा पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त अनुदान से आपने अनेक, ग्रंथों का सम्पादन किया। बुण्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने आपको डी0 लिट0 की उपाधि से विभूषित किया। रामदास नीमाकृत, उषा अनरूद्ध की कथा तथा 'लक्ष्मीबाई रानी' इन दोनों अज्ञात ग्रंथों को प्रकाश में लाये। "यश की धरोहर में शहीद साथियों का वर्णन है। वलिदान, एकांकी सुमन संचय, निबंध संग्रह, आलोचना राजनैतिक लेख प्रकाशित हैं। बुन्देली साहित्य का इतिहास आदि उनकी महती सेवायें हैं।

मेरे श्रोणित की लाली से,
कुछ तो लाल धरा होगी ही।।

आदि ओजस्वी छंद स्व0 माहौर के है।

साहित्यिक महत्व

डा0 माहौर की "बुन्देली साहित्य की देन" नामक निबंध जो 18 अप्रैल 1979 को दैनिक जागरण झाँसी से प्रकाशित हुआ। ले0 डा0 सियाराम शरण शर्मा के अनुसार -

उन्होंने जिन अपरिज्ञात ग्रंथों की हस्त लिखित प्रतियाँ प्राप्त की है उनका हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी सूची इस प्रकार है।

1-नासकेत कथा -ले0 श्री हीरा लाल प्रधान ओरछा निवासी लिपिकाल सं0 1892
2-सतमंजरी- लेखक श्री हीरालालप्रधान, ओरछा निवासी लिपिकाल सं0 1892 ई0
3-कर्मविषयक- ले0 अज्ञात - लिपिकाल सं0 1918 ई0
4-गुसाई तुलसी दास की वारहमासी- लिपिकाल सं0 1921- यह रचना तुलसीदास की ही हो सकती है।
5-हरदौल चरित्र- लेखक - गणेश प्रसाद, लिपिकाल सं0 1921
6-हनू नाटक- दास मनिज (लिपिकाल) सं0 1827
7-ऊषा अनरूद्ध - लेखक अज्ञात
8-नासिकेतापख्यान - ले0 चरणदास
9-श्री राधाकृष्ण जू कौरस विलास - ले0 चैनदास या चैन राम।

आजादी प्राप्ति हेतु आपका राष्ट्रीय गीत देखिये

आजादी का जंग छिड़ा है आजादी का जंग,
गरज रहा है विप्लव सागर नचती क्रांति तरंग,
छिड़ा है आजादी का जंग ।
सजी हमारी स्वतंत्र सेना, पीछे इसका पैर पड़ेना
ऊँचा रहे कदापि झुके ना- विजयी केतु तिरंग,
छिड़ा है आजादी का जंग ।
पास हमारे क्या खानें को, सारा विश्व जीत लेने को,
बढ़े चलो है क्या डरने की-भूँख नंग धुडंग,
छिड़ा है आजादी का जंग ।
सब मजदूर किसान सिपाही, देख कांपती नौकरसाही,
पूंजी शाही, शाहंशाही-देख सैन्य रण ढंग,
छिड़ा है आजादी का जंग।
आओ वीरों बढ़ते जाओ, पराधीनता मार भगाओ
स्वतंत्र हो जग में सुख पाओ, रंगो विजय के रंग
छिड़ा है आजादी का जंग।
आजादी का रंग निराला, हार जीत का नहीं घुटाला,
इसमें सब विजय की माला, पहनो भरे उमंग,
छिड़ा है आजादी का रंग।

10- विदुर प्रजागर - लेखक - कृष्ण कवि

इसके अतिरिक्त मदनेश कृत लक्ष्मी बाई रासो को खोज निकाला और सम्पादन किया बुन्देली का तो यह ग्रंथ गौरव ही माना जाना चाहिए।

अतः झाँसी जनपद के उत्कृष्ट साहित्यकारों में आपका नाम शीर्ष स्थान पर है। आपने खड़ी बोली साहित्य अधिक लिखा। नाटककार, निबंधकार, कवि, समीक्षक, साहित्यिक, आर्दश अध्यापक, सम्पादक एवं प्रसिद्ध क्रांतिकारी देश भक्त आदि अनेकों रूप में उनका व्यक्तित्व है। राष्ट्रीय उत्थान हेतु आपका साहित्य अधिक प्रेरणा प्रद है। आपके साहित्य में क्रांतिकारी बनने की प्रेरणा है।

16.3- श्री सेवदीन बेआसः

स्व0 श्री सेवदीन बेआस का जन्म नगर गरौठा तहसील जिला झाँसी में सन् 1844 ई0 में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मोती लाल व्यास था। आपका निधन सन् 1941 में हो गया।

साहित्यिक परिचय

श्री व्यास जी चतुर वैद्य थे अतः आपकी अधिकांश काव्य रचनायें वैद्यक से सम्बन्धित है। आपने फुटकर रूप में हजारों रचनायें की है। वैद्य जीवन को बुन्देली में रचकर तैयार किया। इसके अतिरिक्त ऊषा अनरूद्ध की कथा भी लिखी है। पारिवारिक, सामाजिक रचनायें तथा

सामायिक काव्य सृजन में आपका विशेष सम्मान था। आप समस्या पूर्ति में अधिक समय लगाकर कवि सम्मेलन व गोष्ठियों में प्रशंसा के पात्र बनाते थे।

आप किसी बारात में चरखारी गये थे। उसका हास्यात्मक वर्णन देखिये -

जित पटवारी कौ डेरा,
उत उड़ रये लड्डू पेरा।
लख मुखिया की गाडी।
देखौ पागी खुर्मी काड़ी।
एकें पियत खों पानी,
एकें सतुआ शक्कर छानी।।

❖ ❖ ❖ ❖

तू गई ललई नाव की घुरिया।
का करै सेवदीन व्यास की पुरिया।।

प्रस्तुत रचना में बारात की गति विधियाँ तथा घटित घटनाओं का सजीव चित्रण हास्य रस में किया है। बारात में देखा व्यवहार हुआ इसका व्यंगात्मक वर्णन बड़ा सजीव है। आपने विषगर्म तैल का काव्य में वर्णन किया है -

तैल टका चोंसठ भर लैकें।
टका टका शुद्ध लै औषधें
लै लै कल्क बनावै।
पीपर और मिरच वच चित्रक,
फेर खुद न ल्यावै
टंड कनैर सौ मसील हरद छै मासी
कन्न कलाऐं सौ,
छेवदारू अरू लाख मिलावै,
सरसों सोई मिलावै
वैसो तेल नाम विष गर्म कहावै।।

इस प्रकार से आपने सरल भाषा वैद्यक विधि से औषिधि निर्माण उनका प्रयोग गुण कर्म विधान आदि का सुन्दर वर्णन किया है। आपने अपने नाती के (पौत्र के) स्वभाव का भी वर्णन एक कुंडलिया में कर डाला।

उदाहरण

शक्कर लुचई को करे कलेवा,
और चाहिये दूध।
इतने में कऊं फेर परे तो,
दूर परत है कूद।

दुर परत है कूद दिना भर
रहै रिसानों।
दिया लगे के बाद रात कें,
खावे खानों।
कयें शिवदीन वेआस ऐसो,
मिलौ जो नाती।
कागज कलमें खर्च करत है
बांच न आवे पाती ।।''

आपकी फुटकर रचनायें यदा-कदा समाचार पत्रों में प्रकाशित होतीं थी। आपका कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं है।

साहित्यिक महत्व

श्री शिवदीन ब्यास का साहित्य अमूल्य साहित्य है। उसमें वैद्यक के हजारों अनुभूत चुटकले व सरल भाषा में वर्णन है। एक थोड़ा पढ़ा लिखा व्यक्ति भी उनकी पांडुलिपियों से लाभ उठा सकता है। आपकी सामाजिक तथा सामयिक रचनायें बड़ी प्रभावशाली है। आपके काव्य में जहाँ एक और नीरसता और गम्भीरता के दर्शन होते है। तो वही दूसरी ओर हास्य और आनन्द सवल सृष्टि भी दिखाई देती है। उसमें प्रवाह और ग्रहण शक्ति का गुण है। अलंकारिकता के फेर में व्यास जी नहीं पड़े है। मुख्यतः आप शांत रस के कवि रहे है। आपका काव्य कुछ समाज में यत्र तत्र बिखरा पड़ा है और अधिकांश उनके सुपुत्र कवि एवं गीतकार पं0 श्री कृष्णानन्द बेआस सुरक्षित रखे हुए है।

लोकगीत की समाज सापेक्षता और प्रचलन

लोकगीत समाज़ से प्रेरणा पाकर अनुप्रमाणित होते है। सामाजिक स्थितियों में अन्तर आने से सुख-दुख की अभिव्यक्त में भी अंतर आ जाता है। कठोर सामाजिक बंधनों के वहन से कुण्ठा, व्यंग कटुक्तियाँ और उपेक्षा आदि के भाव लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यंजित होते है। माता-पिता, बहिन-भाई, सास-ससुर, ननद-भौजाई तथा पति-पत्नी आदि के माधुर्य-सौन्दर्ययुक्त पवित्र भावों से संबंधित लोकगीत हृदय को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों में प्राचीनतम भारतीय संस्कृति, सुन्दरतम आदर्श और मर्यादा सुरक्षित है। अन्याय निष्ठुरता, उत्पीड़न आदि विषमतापूर्ण सामाजिक भावों का भी निरुपण लोकगीतों में हुआ है। सामाजिक एवं पारिवारिक भाव-लग्नगीत सोहर और त्यौहार आदि गीतों द्वारा व्यक्त होते हैं। पशु-पक्षियों को संबोधित गीतों द्वारा जीवन में शक्ति ,धैर्य ,आशा आदि मानवीय भावनाओं का प्रतिविंब देखने में सरलता होती है । संतोष त्याग कर्त्तव्य तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना द्वारा लोकगीत में सामाजिक, पारिवारिक सुख शांति के महत्व प्रकाश डाला गया है -

जब लली तुम फलियों फूलियों ,

सदा सुहागिन रइयों मोरे लाल
एक बात हम तुम सै कैत है
सास ससुर की सेवा करियो
पति की पूजा करियो मोरे लाल
देवरानी ,जिठानी सैं हिलमिल रइयों
ननदी सें नाजुक रइयों मोरे लाल
जो कछु पैदा करकें वे लावैं
उतने में गुजर चलइयों मोरे लाल

कवि वर्डसवर्थ ने भी भाव को काव्य के प्राण की संज्ञा दी है -
" Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelilngs; " अर्थात " स्वतः उमड़ने वाले भावों की तीव्र उमंग ही कविता है ।"

विभिन्न लोकगीतों में समाज सापेक्षता व प्रचलन एवं मान्यता इस प्रकार है जैसे -

चेचक निकलनें पर शीतला माता की पूजा से रोगी निरोग हो जाता है । इससे बचने हेतु टोर्न-टोटके किये जाते हैं । देवी के प्रति स्त्रियों की यह मान्यता धर्मभावना, अन्धविश्वास की सीमा तक पहुँच जाती है । ज्ञानाभाव, धर्मभावना के कारण उनकी देवीकी उपासना पूजा स्वार्थ-सिन्द्रि की आकांक्षा से प्रेरित होती है । वे देवी की अपरम्पार माया के प्रति गहरी आस्था के कारण पुत्र ,अन्न, धन की कामना करतीं हैं और सभी प्रकार की विपत्तियों से मुक्ति हेतु मनौतियां मनाती है बुण्देलखण्ड वासियों की मान्यता है कि तन्मयता पूर्वक देवी गीत गाने सुनने से देवी सिर पर आतीं हैं और समस्त अभिलाषाऐं पूर्ण कर देतीं हैं। शक्ति के उपासकों की मान्यता है कि मायले पूजन में गुरू से दीक्षित व्यक्ति ही शामिल हो सकता है। अदीक्षित व्यक्ति मायले गीत गा, सुन नहीं सकते । इन गीतों में शास्त्रोक्त मान्यताओं का खण्डन भी होता है।

मायला गीत

कांची भीत जासैं लगौ है चूना
ज्ञान बिना मोरौ हिरदौ है सूना
काया नगरी एक, धोबिन साबुन बिन पानी।

बुण्देलखण्ड में ऐसा मान्यता है कि यदि देवी की प्रसन्नता हेतु लांगुर को प्रसन्न न किया गया और लांगुरिया गीत न गाये गये तो कार्य सिद्ध नहीं होगें। मनोरथ अकारण हो जायेगें । इसी विश्वास के परिणाम स्वरूप देवी के प्रत्येक गीत में लांगुर का उल्लेख अवश्य रहता है-

---

• छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोकसाहित्य का अध्ययन-डा0 शकुन्तला शर्मा, पृष्ठ 195

नीचे मेली पुलिस कप्तान लंगुरिया ऊँची हवेली डाकौं पर गऔ ।
ससुरा गये देवी दरसन खौं और सासी भलें लुट जौंय लंगुरिया ।

गणेश जी, शंकर जी का लोकगीतों में कहीं अति मानवीय पात्र (पौराणिक रूप की अपेक्षा) लोक देवता के रूप पर बल दिया गया है तो कहीं लोक जीवन के धार्मिक और उपासनात्मक विश्वासों के चित्रण में गणेश जी व शिव जी की भक्ति की व्यापकता का परिचय मिलता है। बुण्देलखण्ड में मान्यता है कि शिव जी गणेश जी आशुतोष है, कल्याण करने वाले है। वे महान दानी है, उनके दरबार से कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता। उनकी भक्ति देवता, मानव, दैत्य, शत्रु, दानव आदि सभी करते हैं व सभी वरदान पाते हैं।

पर्व और त्यौहारों की अविच्छिन्न परम्परा में सम्पूर्ण मानव-जीवन आन्दोलित होता रहता है। मामुलिया पूजने, खेलने की परम्परा का प्रारम्भ बुण्देलखण्ड में कब, किस प्रयोजन से, से किसके द्वारा हुआ। मामुलिया खेलने, को लेकर बुण्देलखण्ड में धार्मिक विश्वास प्राप्त है कि जो "मामुलिया" के निर्माण, श्रृंगार और पूजा में कुशल हो जातीं हैं वे अपने भावी परिवार के उत्तरदायित्वों का वहन सहजता से कर लेती हैं। मामुलिया विसर्जन के सम्बन्ध में दूसरी अन्ध धारण है कि मामुलिया के विर्सजनोपरान्त यदि उसे पीछे मुड़कर देखा जायेगा तो उन्हें भूत लग जायेगा। बुन्देली कन्याऐं मामुलिया पूजन का महत्व न समझकर रूढ़ि का अनुसरण करते हुए उस परम्परा को आज भी अपनायें हुये है।

कारसदेव की गोटों के विषय में बुण्देलखण्ड के पशुपालक वर्ग में धार्मिक विश्वास व्याप्त है कि वे केवल पवित्र देवतानी गीत चबूतरे पर और चौथ या तीज त्यौहार के दिन ही गायेगें। किसी अन्य स्थान पर या अवसर पर नहीं । उनकी यह निषेधात्मक भावना देश के प्रत्येक भाग के पिछड़े वर्ग में प्रायः दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने गोटों के माध्यम से संस्कृति के देवत्व और मरत्व के अद्भुत सम्मिलित स्वरूप को सुरक्षित रखा है। कारस के सम्बन्ध में बुण्देलखण्डवासियों की धारणा है कि-

कै भये कनैया के कारस भवे।
जिनने गइयंन की राखी लाज।
धन-धन झांझ की गैया।
धन-धन कारस म्रहाराज।
समारौ सबई हमारौ काज।
चांबल सी बयें दूध की नदियाँ।

बुण्देलखण्ड में लोक प्रचलित मान्यता है कि विवाहोत्सव पर जिस प्रकार बहिन कुंजावती ने शमशान पर आकर भात मांगने और निमंत्रण देने पर चीकट के समय प्रकट होकर उन्होंने घर के चारों कोनों को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया था तथा जवनार के समय तरह-तरह के सुस्वादुपूर्ण व्यंजनों के अक्षय भण्डार से बरातियों को तृप्त कर दिया था उसी प्रकार उन्हें पूजने पर वे विवाह में अवश्य आते हैं और कार्य सम्हालते हैं। इस लोक विश्वास के आधार पर यह मान्यता परम्परा बन

गई है। और आज भी उन्हें बुण्देलखण्ड के प्रत्येक घर में विवाहपूर्व और विवाह पश्चात् पूजा जाता है। उनकी मान्यता है कि हरदौल जी की अवहेलना करने पर दुष्परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। कुन्जावती बहिन द्वारा हरदौल को श्मशान जाकर निमन्त्रण देने की घटना निम्न गारी में वर्णित है-

> हरदौल भैया भानेजन कौ कारज आन सभारौ।
> कुन्जावती चेटका जाकैं ठाड़ी रोई अति बिलखा कैं कराज कौन।

बुन्देली जन-जीवन लोकधर्म और पूर्व प्रचलित मान्य परम्पराओं के अनुसार अलौकिक प्राणियों, भूत-प्रेत पिशाच, ब्रहमराक्षस, जिन्न, शहीद, परी, देवता और उनके गण देवियाँ और उनकी शक्तियां आदि की पूजा के अन्धविश्वासों से बंधे हुए है। इन लोक प्रचलित अन्धविश्वासों को तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है। लोक विश्वासानुसार अकाल मृत्यु उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के पूर्व जो व्यक्ति काल कवलित होते हैं। वे प्रेतयोनि में प्रविष्ट होते हैं। कष्ट निवारण और इष्ट-सिद्धि हेतु अदृश्य शक्ति लाला हरदौल की पूजा भी इसी लोक विश्वास से अनुमोदित है। बुण्देलखण्ड में कहा जाता है कि स्वप्न में शाहजहाँ को प्रेतयोनि रूप हरदौल ने प्रकट होकर चबूतरे बनवाने को प्रेरित किया था।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकगीत लोकजीवन के प्राण हैं । इनके बिना जन जीवन अधूरा है। यदि हम सभी प्रान्तों के लोकगीतों की भाषा, छन्द, शैली आदि के बाह्ययरूप को हटाकर उनकी आन्तरिक भावधाराओं को तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें उनकी तलहटी में सामूहिक चेतना और प्रेरणा दृष्टिगोचर होती है जो कि मानव के भावों और क्रिया कलापों में अभिव्यंजित है। इतना तो अवश्य है कि विशेष परिस्थितियों के कारण कुछ विशेष स्थानों में यकिंचित भाव साम्य में अन्तर आ जाता है जिसमें उनकी अपनी भौगोलिक और सामाजिक विशेषतायें सम्मिलित रहती हैं । भावसौम्य ही राष्ट्रीयता का आधारशिला है “ ।

तृतीय अध्याय
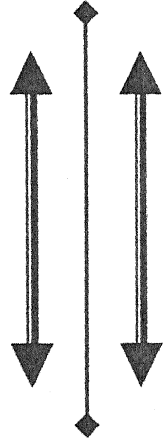
भाषा सौष्ठव और सौन्दर्य शांस्त्रीय निरूपण

तृतीय अध्याय

भाषा सौष्टव और सौन्दर्य शास्त्रीय निरूपण

1. शास्त्र मत और निकष पाश्चात्य और भारतीय

पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र के सबसे प्रथम अभिभाषक है इटली के दार्शनिक क्रोसे जिन्होंने कला का अध्ययन करते हुए उसमें 1: स्वयं प्रातिभ ज्ञान Intution और 2- अभिव्यंजना Expression की अवधारणा की है । इसके साथ ही कल्पना Imagination का योग काव्य और कला दोनों को ही सौन्दर्य प्रदान करता है । उनके अभिमत में सौंदर्य एक सूक्ष्म और आत्मप्रेरित तत्व है । इसे क्रोशे ने ज्ञान के दो रूपों में देखा है ।

क्रोसे के मतानुसार ज्ञान के दो खण्ड

अभिव्यंजना बाद के प्रवर्तक क्रोसे के अनुसार समस्त मानव ज्ञान दो खण्डों में विभक्त किए जा सकते हैं । एक कल्पना जनित और दूसरा तर्क -जनित । पहले खण्ड के ज्ञान का आधार कल्पना है और दूसरे का विचार । कल्पना से हम जगत के नाना रूपों और क्रियाओं के उन प्रभावों का , जो वे हमारी ज्ञानेन्दियों की सहायता से निरंतर हमारे मस्तिष्क पर डालते रहते हैं, एक विशिष्ट भावों के अनुकूल बिंब अपने अंतःकरण में उपस्थित करते हैं । इसके विपरीत तर्क से हम उन प्रभावों की पारस्परिक तुलना करते, उनके गुणों को समता तथा विषमता के अनुसार उनका वर्गीकरण करते और फिर उनके शासक नियमों का उदघाटन करते हैं । इस प्रकार क्रोशे ने एक से सहजानभूति और दूसरे सेविचार के निर्माण की विधियाँ बतलाईं हैं ।

हृदयानुभूति कला का बोध पक्ष

अब पुनः क्रोसे की सहजानुभूति और विचार पर प्रकाश डालना आवश्यक है । सहजानुभूति कला का बोधः पक्ष है और विचार तर्क का बोध पक्ष है । मन में कल्पना करने की शक्ति है और बुद्धि में विचार करने की क्षमता । सहजानुभूति से मन में अनायास वस्तुः विशेष का चित्र अंकित हो जाता है । इसमें श्रम या गूढ़ कल्पना की अपेक्षा नहीं की जाती । साधारणतः हमारी कल्पना में घोड़े की धड़ ऊँट की लंबी गर्दन दिखाई नहीं देती । ऐसा चित्र उपस्थित करने के लिए कल्पना को विचार का पल्ला पकड़ना पड़ जाता है । यदि विचार के साथ उसका संबंध न भी किया जाय तो भी उस चित्र को अंकित करने के लिये कल्पना को कुछ गूढ़ बनाना पड़ेंगा । ऐसा करने पर वह सहजानूभूति का यथार्थ चित्र ही न रहेगा ।

बिंब ग्रहण और अर्थ ग्रहण

एक से हम बिंब ग्रहण करते हैं और दूसरी से अर्थ ग्रहण मात्र । एक से सौंदर्य भावना जागरित होती है और दूसरी से ज्ञान वृद्धि । इन्हीं दो शक्तियों के 'परिणाम स्वरूप क्रमशः कला और विज्ञान का निर्माण होता है ।

सहजानुभूति और विचार का समन्वय

ऊपर से यह भासित होता है कि दोनों में पूर्वापर विरोध है, परंतु यह बात नहीं है । प्रायः सब काव्यों में सहजानुभूति और विचार मिले हुए रहते हैं । भेद इतना ही है कि जो विचार इस प्रकार सहजानुभूति में आकर मिलते हैं उनको अपनी स्वतंत्र सत्ता का पूर्णतः परित्याग कर उसका ही एक अंग बनकर रहना पड़ता है, तिल तंडुल की तरह नहीं, दूध -पानी की भाँति मिलकर । जो विचार कभी पृथक सत्तावाले थे उनको सहजानुभूति का एक तत्व मात्र बन जाना पड़ता है ।

सहजानुभूति की तीन प्रक्रियायें

प्रत्येक सहजानुभूति की तीन प्रक्रियायें हैं वस्तु, आकृति, और अभिव्यंजना । कोई भी वस्तु हमारी सौन्दर्य भावना को तबतक जागरित नहीं कर सकती जब तक उसकी कोई आकृति न स्थिर हो जाय । उस भय कंपित नवजात बछड़े के मुन्नी मुन्नी मुँह का जो भाव रंजित सर्वांगपूर्ण बिंब उस सरल बालिका के हृदय में बैठ गया था वह चिटठी लिखते समय भी उसे प्रत्यक्ष-सा भासित हुआ था । क्रोसे ने सौन्दर्य भावना को आकृति प्रधान माना है । उन्होंने अभिव्यंजनावाद के प्रतिपादन में वस्तु पर जो विचार प्रकट किए हैं उनसे भारत के ही नहीं , यूरोप के भी अनेक समीक्षक सहमत नहीं हैं । यह प्रकट सत्य है कि जितना महत्व क्रोशे ने आकृति को दिया है ,उतना वस्तु को नहीं । किन्तु, इतना करने पर भी उन्होंने वस्तु की उपेक्षा नहीं की है , उसे समुचित महत्व दिया है । वस्तु का भी अपना मूल्य है ।

वस्तु का महत्व

उसके बिना आकृति होगी किस बात की ! वस्तु के बिना एक अनुभूति से दूसरी अनुभूति में कुछ भिन्नता ही न होगी और सच तो यह है कि अनुभूति का आधार भी वस्तु को छोड़कर और क्या हो सकता है । वस्तु के आधार पर हमारी अध्यात्मिक सत्ता को आकृति मिलती है । आकृति में हमारी आध्यात्मिक सत्ता का तथ्य सम्मिलित रहने के कारण एक प्रकार की स्थिरता रहती है , क्योंकि वस्तु तो सदा परिवर्तनशील है । वस्तु की अवस्थिति से ही हमारी आध्यात्मिक क्रिया अपनी भावनात्मकता को छोड़कर मिश्रित और यर्थाथ रूप में आती है ।

आकृति की विशेषता

वस्तु के अभाव में आकृति का अस्तित्व ही संभव नहीं । वस्तु से निरपेक्ष रहने की क्षमता आकृति में नहीं है । काव्य में बिंब -ग्रहण कराना ही कलाकार का मुख्य लक्ष्य है । और यह आकृति में ही संभव है । मूल वस्तु में रसोद्बोधन की शक्ति नहीं रहती । यदि वस्तु में ही रस संचार की शक्ति रहती तो एक ही कथानक पर रचे गए काव्यों में एक ही ढंग की रसानुभूति होती; पर ऐसा नहीं होता । वस्तु और आकृति में अन्योन्याश्रय संबंध है । वस्तु से आकृति में इतनी ही विशेषता है कि वह रस संचार के बहुत अधिक समीप है ।

भाव पक्ष और कल्पना-पक्ष

भारतीय साहित्य -शास्त्र में काव्य के भाव पक्ष पर विशेष ध्यान दिया गया है । इसी भाव-पक्ष की भित्ति पर रसवाद का जो निर्माण -कार्य हुआ है वह विश्व साहित्य में अपने ढंग की एक ही वस्तु है । पश्चिमीय साहित्य -शास्त्रियों ने काव्य में कल्पना को विधायक अवयव माना है और इसकी महत्ता का स्वर इतना ऊँचा किया कि भाव बिलकुल ही गौण हो गया । भारतीय साहित्य-पद्धति में कल्पना -पक्ष छूटा नहीं है, वह विभाव और अनुभाव में सम्मिलित कर लिया गया है । क्रोशे ने कल्पना के बोध-पक्ष पर ही विशेष ध्यान दिया, भावों की सत्ता को उन्होंने महत्व नहीं दिया है । आचार्य शुक्ल ने लिखा है -"इटली-निवासी क्रोसे ने अपने " अभिव्यंजनावाद " के निरुपण में बड़े कठोर आग्रह के साथ साथ की अनुभूति को ज्ञान या बोध स्वरूप ही माना है । उन्होंने उसे स्वयं प्रकाश ज्ञान Intuition प्रत्यक्ष ज्ञान तथा बुद्धि -व्यवसाय -सिद्ध या विचार -प्रसूत ज्ञान से भिन्न केवल कल्पना में आई हुई वस्तु -व्यापार -योजना का ज्ञान -मात्र माना है । वे इस ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान और विचार -प्रसूत ज्ञान दोनों से सर्वथा निरपेक्ष, स्वतंत्र और स्वतः पूर्ण मानकर चले हैं । वे इस निरपेक्षता को बहुत दूर तक घसीट ले गए हैं । भावों या मनोविकारों तक को उन्होंने काव्य की उक्ति का विधायक अवयव नहीं माना है । पर, न चाहने पर भी अभिव्यंजना या उक्ति के अभिव्यक्त पूर्व रूप में भावों की सत्ता उन्हें स्वीकार करनी पड़ी है । उससे अपना वे पीछा नहीं छुड़ा सके हैं ।

काव्य में गणित का संयोग

जो वस्तु स्वयं सुंदर है उसको करोड़ -गुनी सुंदरता का चित्र किसी की कल्पना में भी नहीं आ सकता , फिर इस प्रकार का चमत्कार- प्रदर्शन रस-परिपाक में सहायक न होकर हमारे आश्चर्य और कौतुक को ही उत्तेजित कर देता है । जो चित्र हमारी सहजानुभूति कल्पना के बोध पक्ष में नहीं उतर सकता, जो हमारी आध्यात्मिक सत्ता के साथ सामंजस्य नहीं रखता वह निश्चय ही काव्य का आधार नहीं बन सकता । प्रत्येक अंग की सत्ता और महत्ता अलग-अलग है । सौंदर्य की व्यंजना संश्लेषणात्मक होती है , उसमें प्रधान और गौण का विचार ही अनावश्यक है । अभिव्यंजनावादी वस्तु व्यंजना में भाव व्यंजना से कम काव्यत्व नहीं मानते । जो बात कलाकार की आध्यात्मिक सत्ता से संबंध नहीं रखती , जो वस्तु मनोरंजक नहीं होती, जो हमारी रागात्मिक वृत्तियों पर प्रभाव नहीं डाल सकती, वह चाहे क्रोशे की सहजानुभूति हो, चाहे एडिशन की कल्पना हो, चाहे कालिदास की काव्य -कला हो, हमारे अंतःकरण में कोई संश्लिष्ट स्वतःपूर्ण चित्र नहीं उपस्थित कर सकती । अतः भाव हो या वस्तु, उसकी व्यंजना में कलाकार की मार्मिकता चाहिए । जितना काव्यत्व भाव पक्ष में होता है उतना विभाव पक्ष न रखने से समस्त काव्य का ही सौंदर्य नष्ट हो जायगा ।

2- भारतीय

भारतीय शास्त्र

चिन्तकों ने काव्य में सौदर्य की अवधारणा विषयक चिन्तन में अनेक स्थूल -सूक्ष्म तत्वों का चिन्तन किया है । भारतीय काव्य की आत्मा रस, अलंकार, बक्रोक्ति ,ध्वनि कई रूपों में अभिव्यक्त की गई है ।

सौन्दर्यामनदलंकार

कहकर केवल अलंकार में काव्य सौंन्दर्य की अभिव्यक्ति करना उसके वाहय कलेवर में ही सौन्दर्य खोजने के समान है ।

अभीकरोति यः काव्यं सगुणावलंकृती
असौ न मन्यते कष्मादर्नुणंरनलंकृती ।

कहकर भी अलंकार में सौन्दर्य खोजा गया है । वक्रोक्ति जीवित कार कुन्तक ने वक्रोक्ति में केवल अर्थ को आधार मान कर काव्य में सौंदर्य की अवधारणा की है । ध्वन्यालंकार में घ्वनि की व्यंजना को काव्य सौंदर्य माना गया है जबकि विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है । "रसात्मक वाक्यं काव्यं " । इनका परीक्षण करने से विदित होता कि भारतीय चिन्तकों ने अलंकार वक्रोक्ति, ध्वनि और रस तत्वों में काव्य सौंदर्य देखने का दर्शन व्याख्यायित किया है ।

अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद

आचार्य शुक्ल के शब्दों में यूरोप का वह अभिव्यंजनावाद हमारे यहाँ के पुराने वक्रोक्तिवाद-वक्रोक्तिः काव्यजीवितम् -का ही नया रूप या विलायती उत्थान है । अभिव्यंजनावाद में वाग्वैचित्रय का कितना स्थान है , यह ,संक्षेप में , पहले लिख आए हैं । वक्रोक्तिवाद का प्रधान लक्ष्य ही वक्रतापूर्ण उक्ति है । दोनों मूलतः एक नहीं माने जा सकते और एक दूसरे से प्रभावित हुआ है , न यही कहा जा सकता है । दोनों प्रकृति में यूरोप और भारतवर्ष की प्रकृति की तरह असमानता है । वक्रोक्ति वाद की प्रकृति अलंकार की ओर विशेष तत्पर दिखाई देती है , लेकिन अभिव्यंजनावाद का वाह् रूप से अलंकार के साथ कोई संबंध नहीं है । अलंकार अनुगामी होकर अभिव्यंजना के पीछे चल सकता है , वक्रोक्ति के साथ की भाँति सहगामी होकर नहीं । इसका कारण यह है कि वक्रोक्तिवाद का जन्म और विकास उसी वातावरण में हुआ है जहाँ बहुत दिनों तक अलंकार की तूती बोलती रही है । अतएव उसमें वैसे वातावरण के संस्कार का रहना संभव ही है । अभिव्यंजनावाद में वक्रता पूर्ण उक्तियों का तो मान है ही, साथ ही स्वाभावोक्तियों के लिए भी उसमें यथेष्ट स्थान है । जिस उक्ति से किसी दृश्य का मनोरम बिंब ग्रहण हो वह वक्रता हीन रहने पर भी अभिव्यंजनावाद की चीज है । वक्रोक्तिवाद में स्वाभावोक्ति को स्थान नहीं दिया गया है । अभिव्यंजनावाद के चित्रण में स्पष्ट तीव्रता रहती है । उसमें पाठक या श्रोता को बहुत सोचने विचारने की जरूरत नहीं पड़ती । नग्न रूप से कुछ कह देने के काव्यत्व नहीं समझा जाता है ; साथ ही अपने भावों को अलंकार की तहों में लपेट कर दिखलाना भी उससे अधिक मूल्य नहीं रखता । अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद में जितनी समानता है उससे कहीं विशेष विषमताएँ हैं ।

रसानुभूति का तत्वः- सौन्दर्य -

सौदर्न्य और आनंद

भावना और आनंद में जो भेद बताया जाता है वह सर्वथा निर्विवाद नहीं है । आनंद को प्राप्त कर, हम अपनी इन्द्रिय और मनोबेग को तृप्त करते हैं , परंतु सौंदर्य की भावना के समय हम अपने सामान्य स्तर से कुछ उपर चले जाते हैं । हमारा मनोवेग शांत हो जाता है ,और हम अपने को उस भावना की उपलब्धि से ही कृतार्थ समझते है, वस्तु-प्राप्ति की इच्छा नहीं करते । यदि ऐसा करे तो सौंदर्य की सत्ता पर निजत्व या उपयोग की कामना का आवरण पड़ जायेगा और उसकी

विशुद्धता उसी क्षण नष्ट हो जायेगी । अपने व्यक्तित्व को भूलकर ही सच्ची सौंदर्योपासना हो सकती है । अपनी प्रेमिका सब को अच्छी लगती है, चाहे उसमें सौदर्य का अभाव ही क्यों न हो । हृदय का भाव सौंदर्य के अभाव को अज्ञात रूप से इस प्रकार पूरा कर देता है कि प्रेमी को अपनी प्रेमिका की असुंदरता खटकती ही नहीं । भाव में परिवर्तन होते ही सौंदर्य का अभाव झलकने लगता है । अतएव जो स्वार्थ-संधान का विषय है वह सौदर्य की शुद्ध भावना को उभूदुत नहीं कर सकता । भावुक और कुशल कलाकार पर्वत -श्रेणी के लता-दुमों को चीरती हुई, चटटानों के साथ अठखेलियाँ करती हुई निर्झरिणी को प्यासे की तरह नहीं देखता, लावण्यमयी ललना के विभ्रम-विलास को इन्द्रिय-लोलुप की भाँति नहीं निहारता । यदि वह ऐसा करे तो उसके वर्णन में कला का शुद्ध रूप अंकित नहीं हो सकता

सौदर्य में निजत्व

हमारे प्राचीन साहित्य में प्रेमी-प्रमिका के चित्रांकन के अनेक उदाहरण मिलते हैं । वे सब निजत्व के आकर्षण या विलास की भावना के वशीभूत होकर ही चित्रित किएगए हैं । किसी प्रेमी की तूलिका से अंकित चित्र दूसरे का मनोरंजन ठीक उसी प्रकार नहीं कर सकता । यह सर्वथा स्वाभाविक है कि चित्र -दर्शन से हृदय की विकल भावनाओं को बहुत कुछ सांत्वना मिलती है । उसका चित्र कला की कोटि में न आने पर भी वह अपने हार्दिक भावों से कला की न्यूनता को पूरा कर लेता है । यदि प्रेमी कुशल चित्रकार है तो वह अपनी प्रेमिका का चित्र इतने अलौकिक तथा सुंदर ढंग से अंकित करेगा कि वास्तविकता उससे बहुत दूर जा पड़ेगी । सत्य की कृपणता विख्यात है, अतः उसकी दृष्टि में कला में भावों का न्यूनाधिक्य क्षम्य नहीं हो सकता ।

काव्यानुभूति और साधारणीकरण

सौंदर्य -भावना और काव्यानुभूति में मूलतः कुछ भेद नहीं है । शुद्ध सौंदर्य-भावना ही काव्यानुभूति की जननी है । निजत्व की जिस संकीर्णता का, ऊपर की पंक्तियों में, हम उल्लेख कर चुके हैं उसमें थोड़ी सी विशालता होते ही वह काव्यानुभूति प्रस्तुत कर सकती है । निजी भाव का साधारणीकरण ही काव्योपयुक्त होता है । ' किसी काव्य का श्रोता या पाठक जिन विषयों को मन में लाकर रति, करुणा ,क्रोध, उत्साह इत्यादि भावों तथा सौंदर्य ,रहस्य, गांभीर्य आदि भावनाओं का अनुभव करता है वे अकेले उसी के हृदय से संबंध रखनेवाले नहीं होते; मनुष्य -मात्र की भावात्मक सत्ता पर प्रभाव डालनेवाले होते हैं । इसी से उक्त काव्य को एक साथ पढ़ने या सुनने वाले सहस्त्रों मनुष्य उन्हीं भावों या भावनाओं का थोड़ा या बहुत अनुभव कर सकते हैं । जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सब के उसी भाव का आलंबन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती । इसी रूप में लाया जाना हमारे यहां 'साधारणीकरण ' कहलाता है । जो भाव समष्टि से अपरिचित रहकर विकसित होता है वह काव्य में स्थान पाने का अधिकारी नहीं । जो व्यक्ति हमारे लिए क्रूर है उसमें हम सौंदर्य का दर्शन नहीं कर सकते । दूसरों के लिए वह भले ही कामदेव की मूर्ति हो, किन्तु हमारे लिए वह कुछ नही के बराबर है । इस का कारण यही है कि सौंदर्य यथार्थतः हमारे हार्दिक भावों का ही प्रतिबिंब है । क्रूर के व्यक्तित्व से यदि हमारे भावों का अभिनंदन हो जाय तो वही फिर हमारे लिए परम सुन्दर बन जायेगा । किसी व्यक्ति में सौंदर्य तत्व के रहते हुए भी हम केवल निजत्व के आरोप के कारण उसको तिरस्कृत कर देते हैं । इसी भाँति जो व्यक्ति हमारे लिए बहुत कृपालु है उसमें सौंदर्य-तत्व के

अभाव पर भी हम सुंदरता पाते हैं। वहीं व्यष्टि:प्रधान भाव काव्यानुभूति के अनुकूल नहीं पड़ता । जो हमारे लिए क्रूर या कृपालु है वह यदि समस्त मानव समाज के लिए, सार्वभौम रूप से , क्रूर या कृपालु हो जाय तो इसी वृत्त पर विश्व-काव्य का निर्माण हो सकता है । यदि काव्य की रचना किसी एक ही व्यक्ति के लिए की जाती तो उसमें भावों के साधारणीकरण की आवश्यकता नहीं थी , परंतु काव्य की रचना एक के लिए नहीं होती । इसी कारण उसमें भावों का ऐसा विधान किया जाता है जिससे एक नहीं, सभी मनुष्य प्रायः समान रूप से उन भावों को हृदयंगम कर सकें ।

काव्यानुभूति और रसानुभूति

काव्यानुभूति और रसानुभूति में तात्तविक दृष्टि से थोड़ा भेद बताया जा सकता है । काव्यानुभूति की स्थिति विशेष रूप से कलाकार में मानी जाती है और रसानुभूति की स्थिति पाठक या श्रोता में । इसका यह तात्पर्य नहीं कि काव्यानुभूति पाठक का नहीं होती या कलाकार रसानुभूति से वंचित रहता है । दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं । एक में विधायक कल्पना की अपेक्षा रहती है और दूसरे में ग्राहक कल्पना की । काव्य की अनुभूति होने पर ही कलाकार अपने काव्य की सृष्टि में तत्पर होगा और पाठक या श्रोता को जब तक उसमें रसानुभूति न होगी तब तक उसके लिए काव्य की संज्ञा व्यर्थ है ।

अलंकार

काव्य के कथन के लिए दो प्रकार की उक्तियाँ काम में लायी जाती है । वर्ण्य वस्तु का वर्णन और अलंकार की सिद्धि के लिए कुछ कहना । वर्ण्य वस्तु का वर्णन ही काव्य का मुख्य ध्येय है । हिंदी में बहुत दिनों तक केवल अलंकार की पुष्टि के निर्मित ही काव्य की रचनायें हुई । काव्य पर इसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ा । अलंकार का मुख्य उददेश्य है भाव को तीव्र करना । अलंकार की सबसे कड़ी कसौटी यही है कि काव्य में हम किसी उक्ति व्यंजना की पूर्णता और बोध गम्यता पर ही ध्यान देते हैं । उसमें अलंकारत्व नहीं खोजते हैं । उपमा है या नहीं ,उप्रेक्षा हुई या नहीं ,रुपक का निर्वाह हुआ या नहीं इन प्रश्नों को लेकर व्यर्थ ही माथा पच्ची नहीं करते यदि काव्य के पाठक या श्रोता का ध्यान उक्ति की व्यंजना से हट कर अलंकार निर्वाह की ओर जाये तो शायद यह कहने में किसी साहित्य शास्त्री को आपत्ति न होगी कि काव्य का साध्य अलंकार ही है । किन्तु काव्य की प्रवृत्ति के सूक्ष्म विवेचन के समय हम मनोविज्ञान को पीछे नहीं छोड़ सकते । अलंकारवाद की प्रधानता से काव्य का स्वरूप बोध के रूप में ही स्थिर किया जाने लगा । भाव, या रस के रूप में नहीं । काव्य में चमत्कार विधान के लिये अलंकार का प्रयोजन है । इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता । साथ ही इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि काव्य में चमत्कार ही सबकुछ नहीं और न सर्वथा चमत्कार दिखलाया जा सकता ।

क्रोसे ने अलंकार के संबंध में जो कुछ कहा है वहीं हमारा मान्य नहीं हो सकता । हम अपने साहित्य शास्त्र के कसौटी पर ही अलंकार की समीक्षा करना चाहते हैं । उक्ति में स्वाभाविक रूप से मिला हुआ जो चमत्कार आ जाता है उसके लिये अलंकार की संज्ञा अनुपयुक्त ही नहीं उलझन को बढ़ाने , वाली भी है । इससे क्रोसे की उक्ति ही काव्य है- कथन का विरोध नहीं होता काव्य में अलंकार की स्थिति अनिवार्य मानी जाती तो क्रोसे का विरोध सम्भव था । अलंकार को काव्य से पृथक मानने में ही उसकी प्रतिष्ठा है ।

गणित की योजना से भाव-हानि

अलंकार रस का सहायक है। यदि किसी अलंकार से रसानुभूति में बाधा पहुँचे तो उसे अलंकार की संज्ञा देना व्यर्थ है नये युग की कविताओं के पहले जो कविताएँ रची गई हैं उनमें अलंकारों की भरती के कारण बहुत ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्रस्तुत के प्रति भावों का उत्तेजन होता ही नहीं । अलंकार के रूप में सब ग्रहों को ला बिठाना या गणित की समस्या हल करना काव्य को अपने पथ से हटाना है । सहजानुभूति वाले अध्याय में हम इस बात की थोड़ी चर्चा कर आए हैं । जिस वस्तु या तथ्य का हमारे चित्त पर कुछ प्रभाव न जम सके उसे काव्य से बाहर रखना ही अच्छा है । नये युग के कवियों की रचनाओं में जो अस्पष्टता रहती है वह अपने भावों की गंभीरता दिखाने की धुन का परिणाम है, पर पुराने कवियों ने अलंकारों के बोझ से ही काव्य का दम तोड़ दिया है ।

ध्वनि

अन्य साहित्य शास्त्रियों की तरह ध्वनिकार का परिचय भी अंधकार में छिपा हुआ है । ध्वनिकार के संबंध में जो कुछ जानकारी है वह आनंदवर्द्धनाचार्य की कृपा का ही फल है । इतना स्पष्ट है कि ध्वनिकार आनंदवर्द्धनाचार्य से बहुत पूर्ववर्त्तीनहीं थे । 'ध्वन्यालोक' में जिस ध्वनि-सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया गया है वह भी उस समय के लिए बिलकुल नवीन सिद्धान्त नहीं था । सिद्धान्त तो बहुत थोड़े नवीन होते हैं, उनकी प्रतिपादन-शैली की नवीन होती है । ध्वन्यालोक के आरंभ में ही ध्वनिकार ने काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नात् पूर्वाः - ध्वनि को काव्य की आत्मा कहकर पूर्ववर्ता आचार्यो की परिचित परंपरा की ओर संकेत किया है । इस विषय में इतना विचारर्णीय है कि जिस प्रकार रस के स्वरूप पर थोड़ा बहुत वाद विवाद होता आया उस प्रकार ध्वनि की चर्चा भी क्यों न उठी । इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । व्यंजना, व्यंग्य अर्थ या ध्वनि शब्दों का प्रयोग भी सांप्रदायिक अर्थों में पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया है । इसके उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि ध्वनिकार ने शब्द का जो शक्ति विभाग किया है उसका आभास मात्र ही उन्हें पिछली रचनाओं में मिला होगा । उस समय और इस समय भी जनता में इतनी रूढ़ि प्रियता है कि अकस्मात् किसी नई बात को मानने के लिए कोई प्रस्तुत नहीं होता । नवीन सिद्धान्त में प्राचीन परंपरा का थोड़ा सा योग होने से ही उसके बहुत अनुयायी मिल सकने की संभावना रहती है । शायद ध्वनिकार और उनके चलाए हुए संप्रदाय के विषय में भी यही तर्क लागू हो ।

ध्वनि के लक्ष्य

बैयाकरणें ने व्यंजना को स्वीकृत नहीं किया , किंतु दार्शनिकों के लिए यह कोई नई बात न थी । स्वयं आनंदबर्द्धनाचार्य ने इस शंका की अपेक्षा कर कहा है कि वास्तव में ध्वनि ऐसी कोई रहस्यमय वस्तु नहीं है जिसकी व्याख्या न हो सके, प्रत्युत यह सहल ही समझ में आनेवाली है । ध्वनिकार को रस, अलंकार, रीति आदि का पूरा परिचय था, क्योंकि ध्वन्यालोक में दो प्रधान लक्ष्य रखे गए है - ध्वनि-सिद्धान्त की स्थापना और रस, रीति, अलंकार, गुण आदि की मीमांसा कर ध्वनि के साथ उनकी योजना । इस प्रकार की पांड़ित्य पूर्ण प्रतिपादन-शैली का प्रभाव ऐसा पड़ा कि अनेक परवर्ती आचार्यों ने ध्वनि संप्रदाय का लोहा मान लिया ।

● काव्य में अभिव्यंजना वाद -लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु'

शब्द विभाग अभिधा, लक्षण तथा व्यंजना

सर्व प्रथम ध्वनिकार ने शब्दों के तीन विभाग अभिधा, लक्षण और व्यंजना नाम से किए । शब्द-विभाग की यह प्रणाली कुछ तो व्याकरणों , नैयायिकों और मीमांसकों के अनुकूल पड़ी और कुछ प्रतिकूल । अभिघा से मुख्य या शक्य अर्थ लिया गया । अभिघा से मुख्य या शक्य अर्थ लिया गया । अभिधा की असमर्थता पर रूढ़ि और प्रयोजन दिखाने के लिए लक्षण स्थिर हुई । लक्षण को अभिधा से अलग माने के लिए बड़ा विरोध किया गया । वाच्य अर्थ के बिना लक्षणा का कोई व्यापार सिद्व नहीं हो सकता , अतएव लक्षण की दूसरी संज्ञा 'अभिधापृच्छभूता ' हुई । भटट नायक अभिधा से लक्षणा को भिन्न मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हुए । लक्षण को भिन्न मानने के लिये तीन कारण उपस्थित किए गये -1- मुख्य अर्थ की बाधा , 2- मुख्य अर्थ का संबंध 3- रूढ़ि या प्रयोजन । इन तीनों कारणों की उपस्थिति से लक्षण होती है । व्यंजना से किसी नये अर्थ का प्रतिपादन नहीं होता, बल्कि जो वस्तु पहले से ही वर्तमान रहती है उसी का उससे प्रतिपादन होता है ।

बक्रोक्ति

कुंतल और बक्रोक्ति :-बक्रोक्तिजीवितकार कुंतल ने ध्वनि -सिद्धान्त का खंड़न करना लक्ष्य न बनाकर भामह की बक्रोक्ति के आधार पर अपना मत निश्चित किया ऐसा मालूम होता है, ध्वनिवाद की व्यंजना को उन्होंने काव्य में उपयोगी माना और ध्वनि तथा रस के प्रायः सभी मुख्य विचार उन्होंने अपने बक्रोक्ति संप्रदाय में समन्वित कर लिए हैं । कुंतल का प्रधान अभिप्राय यह है कि बक्रोक्ति काव्य का प्राण है । बक्रोक्ति से वे काव्य में ऐसे विचित्र विन्यास क्रम की स्थापना करना उचित समझते हैं जो अभिव्यंजना के साधारण इतिवृत्तात्मक ढंग से भिन्न हो । इस प्रकार वैचित्रय या विच्छिति की प्रधानता मानकर उन्होंने स्वाभाविक और कलात्मक अभिव्यंजना में भेद बताया है । कुंतल के मतानुसार अलंकृत शब्द और अर्थ से ही काव्य रचना हो सकती है और इस के लिये बक्रोक्ति ही उपयुक्त है।

1.1.

बुन्देली लोक साहित्य में कला सौन्दर्य

बुन्देली का लोक साहित्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी अत्यंत उच्च कोटि का है। लोक साहित्य की गीतात्मकता, लय, तुक, अलंकार, रस छंद,भाषा एवं शैली आदि सभी पक्ष बड़े ही सजीव मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं । इसमें ब्रज भाषा से भी अधिक श्रुति माधुर्य है। एक बार मऊरानीपुर में आयोजित 'अखिल भारतीय बुन्देली साहित्य परिषद' के मंच प्रसिद्व साहित्यकार एवं क्रांतिकारी डा0 भगवानदास माहौर ने कहा था कि -'बुन्देली में वह रस है कि ब्रज भाषा तो इसकी तुलना में इसका छोक या उगलन मात्र है।' इस कथन को उस समय उपस्थित विद्वान डा0 महेन्द्र मानव, डा0के0एल0बिन्दु, डा0 गनेशीलाल बुधौलिया , डा0श्याम सुन्दर बादल, आदि सभी ने स्वीकार किया था । अतः कला सौन्दर्य की दृष्टि से बुन्देली में अनोखा शिल्प सौन्दर्य है जो लोक साहित्य की अमूल्य निधि है । संस्कृत के महाकवि कालीदास के समान उपमायें हैं । उत्कृष्ट रसानुभूति है । इसमें उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक, श्लेष, दृष्टांत आदि साधारण अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है । दृष्टांत अलंकार का उदाहरण देखिये -

शेर - चीते को देख जैसे भागे कुरंग है

बाज देखि जैसे भागे विहंग हैं।
(लोककवि रामसहाय कारीगर)
भारत बीच अंड़ भरई के
गज घंड़ा सौं ढांगे
सेठ सिंघई के बाली बच्चा
ऐसई लये बचाकें ।

कितनी नरम उपमा लोक साहित्य में दर्शनीय है ।

1.2.

लोकगीतों में मांगल्य, सौभाग्य और सौन्दर्य

प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों में प्रचीनतम भारतीय संस्कृति, आदर्श और मर्यादा सुरक्षित हैं । बुण्देलखण्ड में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश के गीतों में मंगलभावना निहित है। चूँकि यहाँ कि संस्कृति का अपना अलग ही महत्व है। जन्म से लेकर मत्यु तक विभिन्न संस्कारों एवं अवसरों का आयोजन आए दिन यहाँ होता रहता है । यह अवसर शुभ और अशुभ भी होते हैं प्रत्येक व्यक्ति की अनेक महत्वकांक्षायें होती हैं । जिस दिन यह पूर्ण होती हैं वह दिन उसके लिये शुभ और मंगलमय होता है इसी प्रकार बहुत से ऐतिहासिक दिन पूर्व उत्सव शुभ दिन के रूप में मनाये जाते हैं इनमें धार्मिक भावना लौकिक अनुष्ठानों की भावना, रीति नीति लोकमान्यतायें तथा जीवन की विशिष्ट घटनायें जन्मविवाह, मृत्यु लोक गीतों की छाया में प्रतिबिम्बित होती है। यहाँ जन्म विवाह तथा धार्मिक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों जैसे देवी गीतों में धन, यश व पति पुत्र की मंगलकामना निहित है। बुन्देली लोकगीतों में ईश्वर के प्रति आस्था विश्वास एवं प्राचीन संस्कृति का निर्विघ्न बड़ी खूबी से हुआ हैं। जन्मदिन के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में मंगलभावना के साथ अनेक मंगलकामनायें निहित रहती है। जैसे -

शुभ हो तेरा जन्म दिवस
चच्चा की गोदी भरी रहे ,
चच्चा की सासो अंगना खड़ी
भगवान से विनती मांग रहीं

विभिन्न अवसर पर गायें जाने वाले गीतों में मांगल्य, सौभाग्य, सौन्दर्य के दर्शन होते है खास तौर से व्रत आदि के गीतों में सौभाग्य की भावना निहित है -

अखैवत पूजन आज चलो री - अखेत ।
सुख सौभाग्य बढ़ाऊ जा तिथि,
अति उत्साह बढ़ौरी - अखैवत
नव सत साज करौ सत रंगन ,
मंगल गान करौ री - अखैवत
कुल विधि रीत प्रभात से पूजन ,
नवसत साज सजौ री - अखैवत

सिया प्रिया सो सहित अलिन के,
मनसा सुफल करौरी - अखैवत

लोकगीतों में सौन्दर्य, प्रकृति सौन्दर्य तथा विभिन्न खेलों व्रतों आदि में देवी देवताओं का सौन्दर्य वस्तुओं का सौन्दर्य विभिन्न आभूषणों द्वारा सजाने का उल्लेख रहता है। इन सौन्दर्य परक लोकगीतों में मानवीय भावनाओं की अनेक मनोकामनायें विद्यमान रहती है। -

जेठ मास अमावस सजनि, सब जनी मंगल गायों,
गहनों गुरियों जतन से सजनी, रूच रूच अंग लगाऔ,
काजल रखे सिंदूर सजनी लगाती सुविधि सयानी ।
हरसित चली अक्षयवत सजनी गाठत मंगल खानी ।

मामूलिया एवं झिंझिया आदि के लोकगीतों में सौन्दर्य चेतना बार बार झलक जाती हैं कभी आभूषणों के रूप में, कभी वेषभूषा के रूप में और कभी रूप सौन्दर्य के रूप में -

1. 'नाक सुआ सी मुंह बअुआ सो
   आँखें हैं आम जैसी फाकें '
2. मामुलिया के आये लिबौआ, चमक चली मोरी मामुलिया
   ल्याव ल्याव चम्पा चमेली के फूल सजाव मेरी मामुलिया
   ल्याव ल्याव घिया तुरईया के फूल सजाव मेरी मामुलिया
   ल्याव ल्याव भटा भटारी के फूल सजाव मेरी मामुलिया
   ल्याव ल्याव धतूरे के फूल सजाव मेरी मामुलिया ।

इन ग्राम लोकगीतों में मांगल्य के विविध उपकरणों का वृहत ज्ञान भी छिपा है, गीतों को सुनकर कहॉं है कि ये गीत गाने वाले लोग अशिक्षित और अनपढ़ है, उनकी सांस्कृति सुरूचि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। हर मंगल अवसर पर गाया जाने वाला यह गीत देखिये -

आज दिन सोने का महाराज
सोने का सब दिन, सोने की रात
गैया को गोबर मंगाओं बारी सजनी ढ़िक दे आंगन लिपाओं
महाराज
थाल भरे मोती मंगाओं बारी सजनी मुतियन चौक पुराओं महाराज,
मंगल कलश भरओं बारी सजनी चहुमुख दिअल जलाओं महराज

इसमें मांग्लय के सभी उपकरण-गाय का हरा हरा गोबर, चोक पूराना मंगलकलश भराना, चौमुखी दीपक, मोती सें भरा थाल आ जाते है। ये सभी उपकरण शुभ के प्रतीक माने गयें हैं।

• छत्तीसगढी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन डा0 शकुन्तला शर्मा पृष्ठ 195

2. बुन्देली भाषा का विकास क्रम और काव्य भाषा

बुन्देली इस प्रान्त की जनभाषा है। इसका अस्तित्व यहाँ के सहस्त्रों नर नारियों के मुख से तरंगित होने वाली वाणी में देखने को मिलता है। बुन्देली का प्राचीन साहित्यक रूप प्राप्त नहीं होती । इसके अस्तित्व की परम्परा मौखिक रही है। अधिकांश विद्वानों की यह धारणा है कि आधुनिक भारत की विभिन्न भाषा और बोलियाँ मध्ययुगीन काल की दो चार भाषाओं के उत्पादन से बनी है । डा0 चिन्तामणि उपाध्याय का मत है बाकी लिखित साहित्य के समुचित प्रमाणों के अभाव में किसी भी भाषा के उद्‌गम एवं विकास के संबंध में मान्यताएँ निर्धारित करना अनेक भ्रान्तियों को जन्म देना है ।

हिन्दी प्रदेश में प्रचलित विभिन्न भाषा और बोलियों की भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से एक तथ्य स्पष्ट है कि मध्ययुगीन विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित अपभ्रंश भाषाओं में ही आज की भाषा और बोलियाँ का अस्तित्व बीज रूप में खोजा जा सकता है । जिस तरह अपभ्रंश के साहित्य को प्रभावित किया । इसी प्रकार हिन्दी की क्षेत्रीय भाषा और बोलियों को भी आगे प्रभावित किया है । डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही अपने विचार प्रकट किये हैं कि यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों नें अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी का ही मूल रूप समझा है तो ठीक ही किया है। इसी बुन्देली के उद्‌भव के संबंध में डा0 कृष्णलाल हंस ने विस्तार पूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया है उनके अनुसार भारतीय इतिहास 10 वीं शती में चालुक्यों ने गुर्जरों सौराष्ट्र और भड़ौच से पूर्व की ओर खदेड़ दिया । इसके साथ इनकी अपभ्रंश भाषा भी मध्यप्रदेश में आई । मध्यप्रदेश में शौर्य सैनी अपभ्रंश का एक रूप पहले से ही प्रचलित था जिसे हमने मध्यदेशीय अपभ्रंश गूजरों के इस भू-भाग में आकर उनकी गूर्जर अपभ्रंश से प्रभावित हुई इन दोनों अपभ्रंशों में अधिक अंतर नहीं था, जिससे यह दोनों सहज ही घुल मिल गई, अपभ्रंश के इस मिश्रित रूप ने ही बुन्देली को जन्म दिया। मध्यदेशीय का उल्लेख अनेक पौराणिक व ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है । ऐतरेय ब्राहम्ण कुरु, पांचाल वंश तथा उशीनरो के प्रदेश को मध्यप्रदेश के अन्तर्गत बतलाया गया है। महर्षि मनु के
अनुसार :-

'हिमवत् विन्ध्ययौर्मध्ये यत् प्राक् विनशनादीप ।
प्रत्यगेव प्रयोगाच्च मध्यदेशं प्रकीर्तितः ।।

प्रस्तुत श्लोक द्वारा मनुस्मृतिकार का हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में स्थित भू-भाग को 'मध्यप्रदेश' मानना स्पष्ट हैं यह पूर्व में प्रयाग तक और पश्चिम में विनशन (सरस्वती) तक विस्तृत था । कवि राजशेखर ने मनुस्मृतिकार की मान्यता स्वीकार करते हुये लिखा है- 'कि गौड़ आदि संस्कृत में स्थित है, लाट देशियों की रुचि प्राकृति में है। मरूभूमि, टक्क और मादानक के वासी अपभ्रंश का प्रयोग करते हैं, अवंती, पारियाज और दशपुर के निवासी भूत भाषा की सेवा करते हैं जो कि मध्यदेश में रहता है वह सर्वभाषाओं का ज्ञाता है।

- हिन्दी साहित्य और उसका उद्‌भव पृष्ठ सं.17
- श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी- पुरानी हिन्दी पत्रिका पृष्ठ सं.10
- बुन्देली और उाके क्षेत्रीय रूप डा0 कृष्णलाल हंस पृष्ठ सं. 23-24
- भाषा विज्ञान डा0 मंगल देव शास्त्री पृष्ठ सं. 266-267

इस उद्धारण से राजशेखर के काल में (9 वीं शती में) मध्यदेश के कवि को तत्कालीन सभी भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची) का ज्ञान होता है। इस काल में मध्यदेश (जिसमें वर्तमान बुण्देलखण्ड स्थित है) में ही सर्वाधिक साहित्यक विकास भी प्रमाणित होता है । यह वास्तव में मध्यदेशीय अपभ्रंश के साहित्यक भाषा के रूप में विकास का द्योतक है ।

डा0 मंगलदेव शास्त्री ने क्षेत्रीय भाषाओं को अपभ्रंश का विकसित रूप माना है उन्हीं के शब्दों में - 'अत्यन्त प्राकृत या अपभ्रंश से आशय मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की प्रारंम्भिक अवस्था के बीच में रही थी । अपभ्रंश भाषायें प्रायः पुस्तकों के लिखने के काम में ही नहीं लायीं गयी । दुर्भाग्यवश अपभ्रंशों के स्वरूप में विषय में हमारे पास थोड़ी बहुत सामग्री है जो कुछ है उससे प्राकृत भाषाओं से आधुनिक भाषाओं के विकास के समझने में बड़ी सहायता मिलती है । इसी संबंध में डा0 धीरेन्द्र वर्मा ने अपने विचारों को प्रकट करते हुये कहा है कि - शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पहाड़ी भाषा का संबंध है। इसमें से गुजराती, राजस्थानी तथा पहाड़ी भाषाओं का संबंध शैारसैनी के नागर अपभ्रंश से है । बिहारी बंगला, आसामी और उड़िया का संबंध मगध अपभ्रंश से है । पूर्वी हिन्दी का अर्ध मगधी अपभ्रंश से तथा मराठी का महाराष्ट्री अपभ्रंश से है।

प्रथम बुन्देला शासक हेमकरण ने सन् 1050 से 1071 तक राज्य किया । उत्तराधिकारियों में परिवर्तन होते हुये सन 1501 ई0 में महाराजा रूद्रप्रताप के शासन काल में बुण्देलखण्ड को विस्तृत व सुव्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ । इन्हीं के शासनकाल में ओरछा सर्वप्रथम बुण्देलखण्ड की राजधानी बनी तथा इस भूभाग को बुण्देलखण्ड की संज्ञा प्राप्त हुई । इसी समय से इस भूभाग की भाषा बुन्देली अथवा बुण्देलखण्डी कहलाई । डा0 धीरेन्द्र वर्मा ने कन्नौजी को ब्रजभाषा का अंग माना है तथा ब्रजभाषा को दक्षिणी उप बोली के रूप में स्वीकार किया है उनका कथन है कि- " हिन्दी बोलियों में बुन्देली तो ब्रज के सबसे निकट है । वास्तव मे बुन्देली को ब्रज का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है । दोनों में अन्तर शब्द रचना की अपेक्षा ध्वनियों में अधिक है । वास्तव में बुन्देली को हिन्दी की बोली न मानकर ब्रज की दक्षिणी उप बोली कहा जा सकता है ।

उर्पयुक्त कथन के आधार पर सभी उप बोलियों व क्षेत्रीय बोलियों का संबंध हिन्दी में है । इसी हिन्दी भाषा की प्राचीनता के संबंध में डा0 सुनीत कुमार चटर्जी ने लिखा है - 'हिन्दी कम से कम तीन हजार वर्षों की एकधारा एक सिलसिले के अन्त में आ रही है हिन्दी एक प्रकार की परम्परागत वस्तु हैं, अचानक सामने आकर खड़ी हुई कोई चीज नहीं है ।

श्रीहरिहर निवास द्विवेदी ने मध्यदेश की भाषा को मध्यदेशीय भाषा अथवा ग्वालियरी भाषा नाम दिया है। वे ब्रज व बुन्देली भाषा के नामकरण के संबंध में लिखतें है- ब्रज भाषा नाम अपने साथ मथुरा की परिक्रमा की संकुचित भावना लेकर चलता है, वह उसका प्रतीक बन गया है । इसके कारण हमें इस मध्यकालीन काव्य भाषा में बुण्देलखण्डी, कन्नौजी, मालवी, अवधी, विभेदों की दीवारें खड़ी दिखाई देती हैं। जो वास्तव में उसमें कभी नहीं मानी गई।

ग्वालियर के संबंध में श्री राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है- तुगलकों के अन्त में दिल्ली की सल्तनत कमजोर पड़ जाने पर ब्रज-ग्वालिय भाषा के क्षेत्र में जो राज्य कायम हुआ उसका केन्द्र ग्वालियर था, इसलिए ब्रज बुण्देलखण्ड का नाम ग्वालियरी भाषा भी कहा जाने लगा । आगे एक अन्य स्थल पर राहुलजी कहते हैं जिसे हम ब्रज साहित्य कहते हैं वह ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध था वह आज का ब्रज बुन्देली कन्नौजी का सम्मिलित साहित्य था ।

डा0 केशवचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि चन्देल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देली भाषा अपनी अनेक स्थानीय बोलियों के साथ ग्यारहवीं बारहवी सदी में विकसित हो रही थी अतः इन्हीं स्थापित बोलियों के मिश्रण से मध्यदेशीय भाषा को बुन्देली अथवा बुण्देलखण्डी रूप प्रदान किया गया हो ।

कृष्णा नन्द ने बुन्देली को ब्रज और कन्नौज की सहौदर माना है उनके कथानुसार तीनों का विकास वैदिक छंद, पाँचाली शौरसेनी पालि, पांचाली शौरसेनी प्राकृत और पाँचाली शौरसेनी । (मध्यदेशीय) अपभ्रंश के क्रम से हुआ है। वस्तुतः हिमालय की तराई से लेकर सतपुड़ा के समीप तक कन्नौजी ब्रज बुन्देली के रूप में एक ही भाषा प्रवाहित है। अपभ्रंशकाल छटी से बारहवीं सदी तक में यहीं थी । शिष्ट भाषा और सारे उत्तर भारत की सामान्यतः अर्न्तप्रान्तीय या राष्ट्रीय भाषा रही जिस तरह से आज हिन्दी है।

डा0 श्यामसुन्दर राय बुन्देली के सम्बंध में लिखतें है यह बुण्देलखण्ड की भाषा है और ब्रज भाषा के क्षेत्र में बोली जाती है। मध्यकाल में बुण्देलखण्ड में अच्छे कवि हुए हैं। पर उनकी भाषा ब्रज ही रही है। उनकी इस ब्रज भाषा पर कभी कभी बुन्देली की अच्छी छाप देख पड़ती है।

बुन्देली के संबंध में विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार से मत दिये है, इसे भाषा विभाषा तथा उप बोली आदि रूपों में स्वीकार किया है। बुन्देली को प्रारंभ में बुन्देलखण्ड की बोली के रूप में स्वीकार किया गया होगा । बाद में क्षेत्र विस्तार हो जाने के कारण वह इसमें साहित्यिक रचनाऐं होने के कारण इसे भाषा का रूप दे दिया गया । कोई भी बोली जब पनप कर साहित्य में स्थान ले लेती है तो वही भाषा कही जाने लगती हैं । डा0 धीरेन्द्र वर्मा का कथन है साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी के व्यापक प्रभाव के रहते हुए भी हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलियाँ अपने अपने प्रदेश में जीवित अवस्था में है। मध्यदेश की गाँव की समस्त जनता अब भी खड़ी बोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुन्देली, भौजपुरी, छत्तीसगढ़ी, आदि उपभाषाओं के आधुनिक रूप का व्यवहार करती रहीं हैं।

बुन्देली भाषा जिसे डा0 धीरेन्द्र वर्मा ने एक उपभाषा के रूप में स्वीकार किया है इसका यह बुन्देली नामकरण अधिक प्राचीन नहीं है। स्थान तथा काल के परिवर्तन के अनुसार भाषाओं के नाम तथा रूप में भी परिवर्तन होता रहता है। जिस समय हिन्दी का विकास हो रहा था उस समय बुन्देली या बुण्देलखण्डी भाषा नाम प्रचलित नहीं था अतः स्पष्ट है कि यह नाम हिन्दी के बाद इसे प्राप्त हुआ । बुन्देली की प्राचीनता के सम्बंध में भाषा शास्त्री डा0 रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अशोक के समय की पाली भाषा का शौरसेनी और मगधी की अपेक्षा विन्ध्य प्रदेशी की पैशाची भाषा से निकट का संबंध है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों से हम इसी निष्कर्ष में पहुँचते हैं कि तैरहवीं शताब्दी तक इसे प्रदेश को मध्यदेश और यहाँ की भाषा को मध्यदेशीय भाषा, मध्यदेशीय बोली तथा ग्वालियरी कहा जाता था । उस समय ग्वालियर तथा बुण्देलखण्ड की भाषा को काव्य भाषा की प्रमाणिक रूप माना जाता था ।

- डा0 धीरेन्द्र वर्मा ब्रज भाषा पृष्ठ सं. 129
- ग्वालेयरी और हिन्दी कविता भारतीय अगस्त 1955 पृष्ठ सं. 167

बुन्देली का उस समय काफी विस्तार हो चुका था वह राज दरबारों में काव्य भाषा के रूप में प्रयुक्त की जाती थी । डा0 कृष्णलाल हंस ने इसके उद्भव को विस्तार पूर्वक निम्न से आगे बढ़ाया है । शौरसैनी अपभ्रंश (मध्यदेशीय) पश्चिमी हिन्दी बुन्देली इस क्रम से बुन्देली भाषा आगे बढ़कर अपने विकसित रूप को प्राप्त करने में समर्थ हो सकी है।

2.1 बुन्देली भाषा का विकास क्रम

प्रत्येक बोली अथवा भाषा में नित्य प्रति कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। यही परिवर्तन उस भाषा का विकास या जीवन भी कहें तो अनुचित न होगा । जिन बोली या भाषाओं में परिवर्तन नहीं होते स्थिरता आ जाती है । उनका थोड़े समय बाद अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अतः परिवर्तन ही भाषा या बोली का विकास है। डा0 रामस्वरूप "स्नेही" लिखते है कि "भाषा का एक गुण यह रहा कि वह सदा विकासशील रही है उनमें नये नये शब्द जुड़ते रहे और भाषा समृद्ध होती रही है।

भाषा व साहित्य के विकास में तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक परिस्थितियों का भी विशेष योग रहा है। बौद्ध धर्म के पतन व हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के समय जहाँ एक ओर धार्मिक क्रान्ति हुई वहाँ दूसरी ओर साहित्यिक रूप में भी परिवर्तन हुआ है । प्राचीन देववाणी संस्कृत भी प्राकृत, अपभ्रंश व आगे तत्सम रूप ग्रहण कर धर्मावलम्बियों की मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी । प्रान्तीय बोलियाँ विकसित होकर भाषा का रूप धारण करती हैं व साहित्यक बन जाती है । बुन्देली का विकास क्रम भी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी तथा आगे वही बुन्देली के रूप में परिवर्तित हो गयी । भाषा का यह परिवर्तन एक ग्राम से दूसरे ग्राम पहुँचने पर ही बदल जाता है। अतः बुन्देली में भी कहावत कही गयी है ,यथा -

चार कोस पै पानी बदले ,
आठ कोस पै बानीं । ।

भाषाओं में धीरे धीरे परिवर्तन होता रहता है और एक समय ऐसा आता है कि एक पीढ़ी की कही या लिखी बात दूसरी पीढ़ी की समझ में नहीं आती है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जगनिक कवि (सन् 1165 ई0) कृत आल्हखंड है ।
प्राचीन काल में आल्हखण्ड अत्यंत लोकप्रिय था हो सकता है आज के रामचरितमानस की ही तरह लोकप्रिय रहा हो किन्तु आज की पीढ़ी उसको समझने में पूर्णतया समर्थ नहीं है । इसी बोली के परिवर्तन के संबंध में डा0धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं- " यद्यपि अभी भेदों की मात्रा अधिक नहीं हो पाई है किन्तु सम्भावना यही है कि ये बढ़ते ही जायेंगे और सौ दो सौ वर्ष के अन्दर ही ऐसी परिस्थिति आ सकती है कि जब तुलसी, सूर आदि की भाषा को स्वाभाविक ढंग से समझ लेना अवध और ब्रज के लोगों के लिये कठिन हो जाये इस प्रगति का प्रारंभ हो गया है ।

- चन्देलों का इतिहास पृष्ठ सं. 213
- हिन्दी भाषा का इतिहास डा0 धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ सं. 83
- भाषा विज्ञान डा0 श्याम सुन्दरदास पृष्ठ सं. 109
- बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन डा0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल पृष्ठ सं.9
- बुन्देली लोक साहित्य-डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' पृष्ठ सं.20

डा0 कृष्णलाल हंस ने बुन्देली के विकास को तीन रूपों में विभक्त किया है । यहाँ केवल काव्य भाषा का वर्णन ही समीचीन है , यथा :-

1- काव्य भाषा ।
2- राज भाषा ।
3- लोक भाषा ।

2.2. काव्य भाषा

बुन्देली एक भाषा अथवा बोली कही जाती है जिस प्रकार कोई भी भाषा आरम्भ में बोली ही रहती है पर स्थितियाँ पाकर उसका विकास होता है ,और वह काव्य अथवा साहित्य रचना के माध्यम के रूप में ग्रहीत हो जाती है। तब उसे भाषा की संज्ञा प्राप्त होती है ।

बुन्देली को ब्रज की तरह काव्य भाषा के रूप में विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हो सका किन्तु इसका विकास सर्वथा अवरुद्ध भी न रहा । इसे भक्ति के माध्यम के रूप में विकसित होने का अवसर तो न मिला पर बुण्देलखण्ड के अनेक राजाओं के राजदरबारों में इसका बहुतायात से प्रयोग हुआ । सर्वप्रथम जन कवियों ने रचनायें लिखी उनमें ब्रज व बुन्देली का सम्मिलित रूप ही प्राप्त होता है। इन दोनों भाषाओं में विभाजन 16 वीं शताब्दी के बाद ही हुआ है । यह तो सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि ब्रज और बुन्देली के प्रारंम्भिक रूप में किसी तरह का अन्तर नहीं था इसी संबंध में राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है, बुन्देली और ब्रज में इतनी समानता है कि अभी भी कितने ब्रज भाषा-भाषी बुन्देली को ब्रज की एक बोली ही समझते हैं जब आज इतनी समानता है, तो आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व तो और भी अधिक रही होगी जिस समय ब्रज भूमि में कृष्ण भाषा काव्य का निर्माण ब्रज भाषा में हो रहा था उसी काल में बुन्देली में भी विभिन्न दरवारों में काव्य रचनायें हो रहीं थीं ।

2.2.1 - ओरछा राज-दरबार में बुन्देली

महाराजा भारतीचन्द्र ;1588-1611 वि0 के आश्रय में अनेक कवि रहे गुलाब कवि, मनसाराम व खेमराज ब्राहण विशेष प्रसिद्ध रहे इसमें खेमराज ब्राह्मण ने प्रताप हजारा की रचना सं. 1590 में की । इसमें महाराजा रुद्रप्रताप के वैभव व परिवार का भी वर्णन है । काव्य की भाषा बुन्देली है यथाः-

प्रथम भारतीचंद दुतिया मधुकर सा जानों
कीरत उदयाजीत सिंह , आमन पहिचानों
भूपत भूपतशाह चान चाह न विहीन का
प्रगदास, दुरगेस, स्याम, सुन्दरहिं लीन का
कह खेमराज गढ ओरछे गढ़ कुडार पति मानियै
लव पुत्र रुद्र परताप के सो जौऊ खण्ड पहिचानिये

- हिन्दी भाषा का इतिहास, भूमिका डा0 धीरेन्द्र वर्मा पृ0 83 है
- बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप डा0 कृष्णलाल हंस पृ0 40

जब महाराजा वीरसिंह जू देव के घर हरदौल जी का जन्म हुआ तो उनके आश्रित कवि राममिश्र ने उन्हें काव्य पंक्तियाँ भेंट की उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

जनम लियो हे लला वीर वीरसिंह जू के,
मंगल मनोगय शुभ साज सजवे लगे ।
बजत बधाई लगीं राज महलों के मांहि
भेरी, शंख, तुरइ मृदेव बजिवें लगे ।
मिश्र कवि गावत गुणावली कवि लगे ।
मोदमान दाढ़ी ठाढ़ नृत्य करिवे लगे ।

अठारवीं शताब्दी में बुन्देली कवियों में अक्षर अनन्य, छत्रसाल व रसनिधि महान कवि हुए हैं । अक्षर अनन्य का पन्ना के राजा छत्रसाल व सेंवड़ा के महाराजा पृथ्वीसिंह से घनिष्ठ संबंध था । श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ने अक्षर अनन्य के साहित्य को सम्पादित कर भोपाल से प्रकाशित कराया है जिसमें पृथ्वीसिंह के नाम अक्षर अनन्य का लिखा एक पत्र इस प्रकार है:-

माइबौ जेबो हमारों नहीं, सनकादि के घास के आसन मंडी ।
तीरथ देवल राज समाननि, जात नहीं, भ्रमना सब छंडी ।।
नीके रहे प्रथिचन्द नरेस, सदा यह आसिस देत अखंडी ।
केवल भक्ति विरापत या मंह, जौई कहीं हम सौई न छंडी ।।

इसी प्रकार ओरछा के राजा मधुकरशाह बुन्देला ने ओरछा का यशो गान किया है इसकी भाषा भी बुन्देली ही है:-

ओरछा वृन्दावन सो गांव ।
गौवरधन सुख सलि पहरिया, जहाँ चरन नृत गाय ।
जिनकी पद रज उड़न सीस पर, मुक्त मुक्त हो जाय ।
सप्तधार मिल बहत बेतवा, जमना जल अनमान ।
नारी नर सब होत पवित्र, कर कर के स्नान ।।

2.2.2 - पन्ना दरवार में बुन्देली

डा0 कृष्णलाल हंस ने पन्ना दरवार की बुन्देली का सविस्तार वर्णन किया है उसी के कुछ अंश इस प्रकार हैं - महाराजा छत्रसाल के पिता महाराजा चम्पत राय का जन्म बुन्देल राजवंश में हुआ था । महाराजा चम्पतराय के सं0 1721 वि0 में स्वर्ग सिधारने पर महाराजा छत्रसाल इस राज्य के अधिपति हुए । महाराजा स्वयं एक अच्छे कवि व आश्रयदाता थे ।

● श्री रामचरन हयारण मित्र- बुन्देली संस्कृति और साहित्य पृ0 38

जब महाराजा वीरसिंह जू देव के घर हरदौल जी का जन्म हुआ तो उनके आश्रित कवि राममिश्र ने उन्हें काव्य पंक्तियाँ भेंट की उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

जनम लियो हे लला वीर वीरसिंह जू के,
मंगल मनोगय शुभ साज सजवे लगे ।
बजत बधाई लगीं राज महलों के मांहि
भेरी, शंख, तुरइ मृदेव बजिवें लगे ।
मिश्र कवि गावत गुणावली कवि लगे ।
मोदमान दाढ़ी ठाढ़ नृत्य करिवे लगे ।

अठारवीं शताब्दी में बुन्देली कवियों में अक्षर अनन्य, छत्रसाल व रसनिधि महान कवि हुए हैं । अक्षर अनन्य का पन्ना के राजा छत्रसाल व सेंवड़ा के महाराजा पृथ्वीसिंह से घनिष्ट संबंध था । श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ने अक्षर अनन्य के साहित्य को सम्पादित कर भोपाल से प्रकाशित कराया है जिसमें पृथ्वीसिंह के नाम अक्षर अनन्य का लिखा एक पत्र इस प्रकार है:-

माइबौ जेबो हमारों नहीं, सनकादि के घास के आसन मंडी ।
तीरथ देवल राज समानिन, जात नहीं, भ्रमना सब छंडी ।।
नीके रहे प्रथिचन्द नरेस, सदा यह आसिस देत अखंडी ।
केवल भक्ति विरापत या मंह, जौई कहीं हम सौई न छंडी ।।

इसी प्रकार ओरछा के राजा मधुकरशाह बुन्देला ने ओरछा का यशो गान किया है इसकी भाषा भी बुन्देली ही है:-

ओरछा वृन्दावन सो गांव ।
गौवरधन सुख सलि पहरिया, जहाँ चरन नृत गाय ।
जिनकी पद रज उड़न सीस पर, मुक्त मुक्त हो जाय ।
सप्तधार मिल बहत बेतवा, जमना जल अनमान ।
नारी नर सब होत पवित्र, कर कर के स्नान ।।

2.2.2. - पन्ना दरवार में बुन्देली

डा0 कृष्णलाल हंस ने पन्ना दरवार की बुन्देली का सविस्तार वर्णन किया है उसी के कुछ अंश इस प्रकार हैं - महाराजा छत्रसाल के पिता महाराजा चम्पत राय का जन्म बुन्देल राजवंश में हुआ था । महाराजा चम्पतराय के सं0 1721 वि0 में स्वर्ग सिधारने पर महाराजा छत्रसाल इस राज्य के अधिपति हुए । महाराजा स्वयं एक अच्छे कवि व आश्रयदाता थे ।

• श्री रामचरन हयारण मित्र- बुन्देली संस्कृति और साहित्य पृ0 38

इन्होंने 60 वर्ष की अवस्था में सन्यास ले लिया इनकी रचनायें भक्तिपूर्ण हैं । कवि भूषण महाराजा छत्रसाल के बड़े प्रशंसक थे । इन्होंने छत्रसाल दशक की रचना की । लाल कवि ने छत्र-प्रकाश ग्रन्थ की रचना की जिसमें महाराजा का आंखों देखा चित्रण किया है । कुछ पंक्तियाँ में औरंगजेब के अत्याचारों का भी वर्णन किया है :-

हिन्दु तरक दीन द्वे गाये, तिनसों वेर सदा पल आवें ।
लेख्यो सुर असुरन को वैसी, के हरि कारन बरवान्यौ जैसी ।
जबते शाह तखत पर बैठे, तवते हिन्दुन सौं उर ऐंठे ।
मंहगे कर तीरथन लगाये, देव दिवाले निड़र ठहाये ।
घर घर बांधे जिजया लीन्हीं, अपने मन भाये सब कीन्हीं ।
सब राजपूत शीश नित नावें, ऐड़ करैं नित पैदल धायें ।।

चरखारी के महाराजा खुमान सिंह के आश्रित मान कवि थे । खुमानसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र वीर बहादुर सिंह गद्दी पर बैठा । कवियों के बहकाने से उन्होनें मान कवि का दरवार में अपमान कर निकाल दिया व चुनौती दी कि जा पत्थर के बन्दर हनुमान के पास वह हमारा क्या बिगाड़ लेते हैं । मान कवि ने हनुमान जी के मंदिर में जाकर पच्चीस छन्द रचे अन्तिम छन्द पड़ते ही राजकुमार का सिर टूट कर गिर गया व अन्य कवि विकलांग हो गये । इन्होंने ग्यारह ग्रन्थों की रचना की जिनमें लक्ष्मण शतक, नीति निदान, मान पच्चीसी, चित्रकूट महात्म आदि प्रसिद्ध हैं ।

2.2.3. - दतिया दरवार में बुन्देली

दतिया दरबार में ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव के पुत्र भगवानराव इस राज्य के संस्थापक थे । इस राज्य को सं0 1740-62 वि0 में महाराजा दलपतिराव के शासन काल में प्रसिद्धि प्राप्त हुई । इन्हीं के नाम पर यह दिलीप नगर कहलाया । यहाँ के कवियों में कृष्णदास, खण्डन कायस्थ, शिवप्रसाद कायस्थ, जानकी दास, सीताराम आदि प्रमुख हैं । खण्डन कायस्थ की प्रमुख कवि भूषणदास और सुदामा चरित्र व शिवप्रसाद कायस्थ की रसभूषण तथा अदभुत रामायण है । इसी राजवंश में महाराजा भवानी सिंह के राज्य में गरीबदास गोस्वामी, राधालाल गोस्वामी पतिराम, गदाधर भट्ट, लक्ष्मणसिंह व बिहारीलाल भट्ट कन्हैयालाल गोस्वामी आदि कवि थे ।

2.2.4 - अजयगढ़ दरबार में बुन्देली

अजयगढ़ दरबार भी कवियों का आश्रयदाता रहा है । यहाँ सन् 1620 विक्रम के लगभग कविराज पुरुषोत्तम ने राजविवेक नामक ग्रन्थ की रचना की थी । सं0 1830 वि0 के लगभग प्रेमदास अग्रवाल ने प्रेमसागर तथा श्री कृष्ण लीला ग्रन्थों की रचना की ।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि बुन्देली में 16 वीं शदी में 19 वीं शदी तक निरन्तर काव्य रचना होती रही । अतः बुन्देली बोली भाषा कहलाने का अधिकार रखती ही है ।

3- बुन्देली लोक गीतों में छन्दों का प्रयोग

बुन्देली लोक गीतों में लोक कवियों द्वारा मात्रिक तथा वार्णिक दोनों प्रकार के छंदों को अपनाया गया है । यद्यपि लोक कवि छंद- शास्त्र के सूक्ष्म विश्लेषण तथा उसके ज्ञान से परिचित नहीं दिखायी देते । लोक कवियों में न तो आचार्य केशव के समान छंद रचने की प्रवृत्ति है और न पिंगल के आचार्यों की भाँति उनका विस्तृत तथा गहन अध्ययन ही है । लोक कवि सीधी साधी बुन्देली भाषा का कवि है । जनपद में छंदों के प्रति लोक कवियों की धारणा यह है:-

बिन पिंगल कविता करें, बिन गीता का ज्ञान ।
कोक शास्त्र बिन रति करें, वे नर पशु समान ।

तात्पर्य यह है कि जनपद का बुन्देली लोक कवि भी बिना पिंगल के कविता करना पशुत्व की भूमिका को निभाना मानता है । लोक कवि का पिंगल क्या है यह एक विचारणीय समस्या मूलक प्रश्न है । लोक कवि गीता ज्ञान को ज्ञान मानता है । लोक शास्त्र के ज्ञान बिना रति क्रीड़ा स्त्री सहवास करना असंगत मानता है तथा बिना छंद शास्त्र के आचार्य पिंगल द्वारा प्रणीत ज्ञान के काव्य रचना पशु का कृत्य समझता है । वास्तव में पवित्रता चाहता है । अपनी ज्ञान सीमानुसार अपने छंदों को पवित्रतम बनाना चाहता है । लोक कवि स्व0 श्री रामसहाय कारीगर अपने लोक काव्य के प्रारंभ में माँ शारदा वांग्देवी से मंगलाचरण में कहते हैं:-

पैला गुरू के चरण मनांऊ
फिर शारदा को ध्याऊँ
हूं अज्ञान ज्ञान ना हिरदै
थोड़ी मति सकुचाऊँ
कठिन ज्ञान कविता का कइये
तासें तुम्हें मनाऊं
राम सहाय परे शुभ अक्षर
,मैया ये वर पाऊँ ।।

,इस प्रकार वे अपने चरणों में शुभ वर्ण आने का वर माँ शारदा से मांगते हैं । इसी प्रकार लोक कवि ईसुरी कहते हैं:

मोरी खबर शारदा लइये ।
कंठ विराजी रइये ।।
मैं अपढ़ा अक्षर नई जानत
भूली कड़ी मिलइये ।।

साधारणतः जनपदीय लोक कवियों में अधिकांश ने छंद शास्त्र के पचड़े में न पड़कर मोटे मोटे छंदों में अपने हृदयोद्गार उद्भाषित किये हैं । यही उनका विशुद्ध एवं प्रभाव शाली लोक काव्य हैं। झाँसी जनपद के लोक काव्य में फिर भी अनेकानेक छंदों का प्रयोग है। कबीर की भाँति पद, गारी,

भजन हैं। सूर की तथा मध्यकालीन अन्य कवियों की छाया इस काव्य के छंदों पर है। तुलसी के पद राग रागनियों का रूप जनपद के लोक काव्य में हैं। यह लोक काव्य मिश्रित छंदों में भी प्राप्त होता है । यह साकार रूपा अनेक छंदों को अपने में समेटे हुए है । स्वतंत्र मुक्तक छंदों में भी लोक काव्य का मनोहारी रूप दिखाई देता है । संक्षेप में निम्न लिखित छंद जनपद के लोक काव्य में अपनाये गये हैं :

3.1-दोहा

यह मात्रिक छंद है इसे लोक काव्य में साखी भी कहा जाता है । इसी दोहे को दीपावली के अवसर पर अथवा चाचर लोक नृत्य में जब प्रयोग किया जाता है तो उसे दिवाई भी कहते हैं परन्तु उसकी लय में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जाता है । सामान्य रूप से प्रथम चरण में 13 तथा द्वितीय चरण में 11 तथा तृतीय चरण में 13 और चतुर्थ चरण में 11 मात्रायें होती हैं । विषय चरणों के आदि में जगण ;लघु गुरू लघु नहीं आना चाहिये तथा सम चरणों के अंत में गुरू लघु होना चाहिये । भले ही इस सूक्ष्म प्रक्रिया छंद शास्त्र का ज्ञान लोक कवियों में न रहा हो परन्तु लोक कवियों के दोहे बड़े मार्मिक और प्रभावशाली बन पड़े हैं । उदाहरण देखिये-

गुरू गनेश श्री शारदा बसौं हिये में आय
फाग राग वरनन करूं दीजों वरन मिलाय

इसी दोहा छंद को जब लोक काव्य में गेयता की कसौटी में कसते हैं तो पूर्व में
हॉ-----------आं-----------आं-----------अूं-----------अूं---------
इस लय से अधिकांश रूप में प्रारम्भ कर कोई दोहा या साखी गाते हैं । विशेष राग में विशेष लय दोहा छंद में जोड़ी जाना आवश्यक है। इससे लोक काव्य स्वरूप की परम्परा का निर्धारण तथा लालित्य बढ़ता है । इसी प्रकार से यही दोहा जब दीपावली या चाचर लोक नृत्य के साथ प्रयोग करने में निश्चित स्वरूप के साथ अन्य लय के साथ सम्बन्द्ध किया जाता है । यथा-
'हे----------ये-----------ये-------------ये ------------ये---------'
तात्पर्य है कि दोहा छंद की निश्चित मात्रा के परिवार में निश्चित लोक काव्य के समय उपर्युक्त मात्रायें जोड़ना आवश्यक है । उपर्युक्त तान के बाद दोहा-
राम नाम की कोठरी चंदन जड़े किवार
तारे लागे प्रेम के तो खोलो कृष्ण मुरार--------ये आदि दोहे का विकृत रूप बन जाता है । भजन गाते समय इसी दोहे को लोक गायक निश्चित मात्रायें होते हुए भी द्रुत गति में गाते हैं । तात्पर्य है कि यह छंद शास्त्र का दोहा जब लोक काव्य के धरातल पर प्रयुक्त किया जाता है और संगीत धारा से प्रवाहित किया जाता है तो ऊपरी निश्चित मात्राओं के साथ पूर्व या पश्चात लय वश मात्राओं को बढ़ाता कमाता है इससे छंद में विकार नहीं अपितु नाद सौंदर्य का संवर्द्धन और गेयता का लालित्य बढ़ता है ।

3.2-पद

जनपदीय लोक काव्य में विभिन्न प्रकार के पद प्राप्त हैं । इन पदों को खंजरी, झीका, ढ़ोलक, हारमौनियम, नगड़िया सारंगी आदि वाद्य यंत्रों के साथ तथा पृथक से भी गाया जाता है । इन पदों को अधिकांश में भजन कहा जाता है क्योंकि भक्ति परक गुण इन पदों में विद्यमान रहता है । भक्ति

बुन्देली पदों की आत्मा है । पहली पंक्ति में टेक होती है जिसमें 16 मात्रायें होती है वाद के चरणों में 28 मात्राओं का चरण तथा 16, 12 पर यति होती है । यह चरण 4 या 6 या 8 कवि की इच्छानुसार होते हैं । यह पद सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है इनमें वैवाहिक, उपदेशात्मक, भक्ति, आदि की उत्कृष्ट भवनायें समाहित हैं । इस परम्परा का एक भजन डा• दयाराम•द्वारा रचित सम्प्रति रूप में प्रेषित है-

प्रमुख में कहीं कौन दिन राम ।	16 मात्रायें
वालापन हंस खेल बीत गये ,पलना दये आराम ।	28 मात्रायें
बीस गयी ज्वानी के मद में, गड़े व्याव के खाम ।	28 मात्राये
चालिस रंग रसन में कड़ गई, जनमें पुत्र तमाम ।	28 मात्राये
रुच रुच व्याव करें पचपन लौ, जोरे भोतक दाम ।	28 मात्राये
हात मलें जब इंद्री रे गयीं, हो गये काम तमाम ।	28 मात्राये
दयाराम रसना लो हिली ना, आखिर लेवे नाम ।	28 मात्राये

इस प्रकार परम्परागत रूप में अज्ञात कवियों द्वारा प्रणीत यह पद चले आ रहे हैं। यथा-

मोरे लक्ष्मण वीरा- मोरे मारे लक्ष्मन वीरा	16 मात्रायें
पैले वान घले हिरदे में लक्ष्मन खां भई पीरा ।	28 मात्रायें

इस पद में लक्ष्मण शक्ति का मार्मिक प्रसंग कहा गया है। इस प्रकार के हजारों पद लोक काव्य की महत्व पूर्ण सामग्री हैं।

लावनी तथा ख्याल

लावनी तथा ख्याल दोनों पृथक पृथक छंद हैं ख्याल में प्रत्येक चरण में 30 मात्रायें होती हैं । लावनी में प्रत्येक चरण में 22 मात्रायें होती हैं । 4 या 6 टूटों पर ख्याल या लावनी पूर्ण माना जाता है ।

3.3-गारी

जनपद में गारी गाने की सर्व प्रमुख विद्या है । गारियाँ हजारों प्रकार की हैं । जनपद में रामसहाय, द्विज, दुरगा, रामदास कुशवाहा की गारियाँ प्रख्यात एवं प्रचलित हैं । हजारों गारियाँ परम्परागत रूप से चली आ रहीं हैं । शंकर विवाह में तुलसी दास जी ने बालकाण्ड में देवताओं को भोजन करते समय स्त्रियों द्वारा गारी गाने का उल्लेख किया है जिवनार के समय गारी विशेष आनन्द देती है ।

नारि वृाद सुर जेंवत जानी ।
लगीं देन गारी मृदु वानी ।

•डा0 दयाराम वर्मा के शोध ग्रन्थ से प्राप्त । पृष्ठ सं0 488

गारी मधुर स्वर देहि सुंदरि व्यंग्य वचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुर अति विलंबु विनोद सुनि लघु पावहीं ।।

इसी प्रकार से राम विवाह में भी देवतागण गारी सुनके अत्यधिक अनुराग में जेवनार पाते हैं-

पंच कवल करि जेवन लागे
गारि गान सुनि अति अनुरागे ।
❖ ❖ ❖ ❖
,जेवत देहिं मधुर धुनि गारी
लैं लैं नाम पुरुष अरू नारी

तात्पर्य यह है कि हिन्दु समाज में गारियों का अत्यधिक महत्व है । संस्कार गीत गारियों में बद्ध है । इन्हीं गारियों में लोक संस्कृति का गीतात्मक रूप है । प्रत्येक वर में राम कृष्ण तथा प्रत्येक बधू में सीता व राधा का रूप हमारे लोक मानस में देखा जाता है । यह गारी छंद मात्रिक रूप में है । यथा-

टेक- बने दूला छवि देखो भगवान की
दुल्हिन बनी सिया जानकी ।
❖ ❖ ❖ ❖

स्व0 श्री राम सहाय जी कारीगर ने समाजोत्थान की सैकडों गारियां लिखी हैं । जनपद में उनका लोक काव्य अत्यंत सम्मानित तथा प्रचलित है । गाँवों में हरी फसल चराने की कुरीति का वर्णन उनकी एक गारी में देखिये-

कैउ गांवन में चोरी की आदत परी
छवाने फसल हरी ।

गारियों में सैकड़ों विषयों का वर्णन है । हास्य व्यंग्य विनोद धार्मिक सामाजिक, उत्सव, विवाह, आदि अनेक अवसरों की गारियों अनेक रूपों में लोक कवियों ने रचीं हैं । अतः गारी भी लोक काव्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण छंद हैं । गारी गाने के पश्चात जेवनार के उपरांत जब बाराती उठने लगते हैं तो स्त्रियां गाती हैं । 'नाम लगा लगा कर विनोद करती हैं तथा भोजन कराते समय नारियों से अलौकिक आनन्द प्रदान करतीं हैं । लोक काव्य के छंदों में फागें शेर, राछरे, विलवारी, अछरी, दिनरी, गारी, सावन, दादरे, सोहरे, मल्हार, आल्हा, गीत, बाबा, गीत, टेसू गीत, धार्मिक गीत, ऋतु गीत, संस्कार गीत तथा पल-पल क्षण-क्षण के छंद विद्यमान हैं । इन पर विषय विस्तार की दृष्टि से संकेत मात्र करना उपयुक्त समझा गया है ।

4- शास्त्र सम्मत अलंकार -प्रियता

4.1. लोक साहित्य में अलंकार

जनपदीय लोक काव्य जनभाषा में तथा सामान्य बोल चाल की भाषा में है । इस लोक काव्य के प्रणेता लोक कवि अलंकारों के पचड़े में इसलिए नहीं पड़े हैं कि वे उतने अधिक शिक्षित नहीं दिखाई देते । परन्तु वांग्देवी के वरद हस्त से इनके लोक काव्य में पर्याप्त अलंकार हैं । अल्प शिक्षित लोक कवि शिक्षित लोक कवियों तथा साहित्याचार्यों के समान अपने काव्य का सौन्दर्य अलंकारों के माध्यम से बढ़ाते हैं । सामान्यतः अनुप्रास, यमक, अतिशयोक्ति, श्लेष, उपमा, तथा रूपक तो बड़े ही अनहोने बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ लोक कवि श्री मुन्ना लाल चतुर्वेदी की रचना देखिये- इसमें तलवार का विरोध शांति का प्रयास किया गया है -

तीर तमंचा तुवक तिरशूल त्यार तीक्ष्ण तलवार ।
मगर दिलावर मरद की हरदम होती है हिम्मत हथयार ।
चूम चार चौ तरफ, चुमाचुम खड़े वीर वीरन सरदार
विविध भाँति बाजने बाजते चौव बढ़े सुनकें झनकार,
कर चंचल चंचला सी चमके चकाचौंध से चवे निगार ।
कायर सटकन लगे समर सेंब बांधे थे हथयार अपार
छोड़ भगे तलवार गीदड़े सुनत समर सूरन हुंकार ।
मगर दिलावर मरद की हरदम होती है हिम्मत हथयार ।।

प्रस्तुत लोक छंद "ख्याल" में अनुप्रास की सुन्दर छटा विद्यमान है इससे पदलालित्य बढ़ गया है । इस प्रकार की आनुप्रासिकता सुंदर एवं सहस्त्रों छंद जनपदीय लोक काव्य में भरे पड़े हैं। उक्त रचना महाकवि भारतेन्दु बाबू "हरिचन्द्र" द्वारा रचित "यमुना छवि वर्णन" से कहाँ कम है। यथा -

तरनि तनुजा तट तमाल तरवर बहु छाये ।
झुके कूल सौ जल परसन हित मनहुँ सुहाये ।"

लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय कारीगर का काव्य तो अलंकारों की निधि ही कहा जा सकता है उसमें यथा स्थानों अलंकारों का प्रयोग स्वभावतः होने से मणिकांचन संयोग हो गया है उनकी एक चौकड़िया में यमक अलंकार देखिये -

असुवा उद्वल विन ढ़ड़कावे, ऊदल विकल कहावे ।
ऊदल आउत राम सहाए ऊदल सव भग जावे ।

इस प्रकार यमक व समंग श्लेष का सौन्दर्य बड़ा बेजोड़ है। उनका दृष्टान्त अलंकार भी बड़ा बेजोड़ है- यथा

भारत बीच अड भारई के गज घंटा सों ढ़ाके ।
सेठ सिंगाई के बाली बच्चा ऐसेई लये बचाके ।

- 'लोककवि स्व0 री मुन्ना लाल चतुर्वेदी' मऊरानीपुर की रचना स्वयं उनहीं से प्राप्त।

चीतें को देख जैसे भागे कुरंग है
बाज देख जैसें भागे विहंग है।
❖ ❖ ❖ ❖

बुन्देली के प्रतिनिधि कवि एवं जनपद के आशु लोक कवि स्व0 श्री ईसुरी के काव्य में अलंकारों की भरमार है। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, सांगरूपक अतिशयोक्ति, विभावना आदि के सुन्दर प्रयोग सरल लोक भाषा में हैं । यथा :-रूपक देखिये-

दीपक दया धरम को जारौ, सदा रात उजियारी
धरम करें बिन करम खुले ना, बिना कुची ज्यौं तारो ।
समजा चुके करें ना रइयो, दिया तरें अंदियारें ।
कात ईसुरी सुन लो प्यारी लग जै पार नवारें ।।

ईसुरी काव्य के उद्धारण की बानगी मात्र पर्याप्त है । विषय विस्तार के भय से समस्त उद्धारण प्रस्तुत करना उपयुक्त नहीं समझा गया है । एक श्लेष का सुन्दर लोक छंद देखिये- रावण से मन्दोदरी कह रहीं हैं-

बरा हमारे न बने मुंदरी काये खां ल्याय ।
मुंदरी के धोकें पिया सीस फूल धर आये ।।
सीस फूल धर आयें धरे बाजूबंद नइयों ।
वेसर गई विकान नों गिरै आ गई सइयौं ।।

उक्त छंद में वरात्र आभूषण है । मुंदरी शीश फूल वाजू वंद, बेसर तथा नोगिरे ये अनेकानेक आभूषणों के नाम हैं । श्लेषात्मक भाव में-वरा का अर्थ है

आभूषण तथा वर अर्थात रावण से है
मुंदरी का अर्थ अंगूठी तथा सीता से है ।

सीस फूल का अर्थ आभूषण सिर का तथा मन्दोदरी के सुहाग से है । तथा बाजूबंद का अर्थ भुजा का आभूषण अर्थात विर्भाषण भाई रूपी भुजा से है । बेसर का अर्थ नाक आभूषण तथा बिना भाव से है । नौगिरे भी आभूषणों के अर्थ में तथा 'नवग्रह' के अर्थ में प्रयुक्त है । मन्दोदरी के इस कथन में रावण को जोर देकर समझाया गया है । श्लेष के ऐसे सुन्दर उद्धारण अनेक स्थलों पर दृष्टव्य हैं । प्रत्येक लोक कवि के साहित्यक परिचय के साथ अलंकारों का भी संकेत किया गया है । कवियों की साहित्यक वानगी मात्र प्रस्तुत की गयी है ।

तात्पर्य यह है कि जनपद के लोकक्काव्य में न तो अलंकारों का अभाव है और ना ही रसों की कमी । नव रसों का सागर लोक काव्य में आन्दोलित है । साहित्यिक दृष्टि से जनपदीय लोक काव्य समृद्ध है ।

5- श्रृंगार रस और तद्विषयक वर्णन

हमारे सजग लोक कवि केवल भक्ति के सागर में ही नहीं डूब रहे उससे निकलकर उन्होंने लौकिक जीवन का भी आनन्द उठाया । उसने एक ओर वेदान्त प्रचारा तो दूसरी ओर हृदय की रसिकता को उड़ेल दिया । लोक कवि सरस हृदय के जागरूक कवि रहे हैं ।

सुप्रसिद्ध साहित्य मनीषी पदुमलालपुन्नालाल वख्शी जी ने लिखा है---- हिन्दू साहित्य में धर्म के तीन स्वरूपा परिलक्षित होते हैं - प्राकृतिक,नैतिक, और आध्यात्मिक । हिन्दू साहित्य के आदिकाल में धर्म की प्राकृतिक अवस्था विद्यमान थी । मध्य युग में नैतिक अवस्था का अविर्भाव हुआ और जब भारतीय समाज में धार्मिक क्रांति हुई तब साहित्य में नवोत्थान काल उपस्थित होने पर अध्यात्मिक भाषा की प्रधानता हुई । हिन्दी साहित्य के आदि काल की अपेक्षा जनपदीय लोक काव्य में वीर गाथाओं के बाहुल्य का अभाव है । मध्य युग अर्थात भक्ति काल के पर्याप्त प्रभाव के कारण लोक मानस अधिक द्रवित हुआ और भक्ति रस होकर वह निकला लोक काव्य के रूप में । यह भक्ति की अक्षुण्य धारा जब तक अधिक बलवती रही है । यद्यपि श्री पदुमलालपन्नालाल वख्शी ने लिखा है -------' साहित्य का स्रोत भी भिन्न भिन्न अवस्था में भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करके अविच्छिन्न ही बना रहता है । लोक साहित्य में धार्मिकता की धारा अधिक वही, उसका मूल कारण धार्मिकवाद का बाहुल्य ही है ।"साहित्य समाज का दर्पण है। इस प्रसिद्ध साहित्यिक स्वीकारोक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारा निश्छल लोक मानस सीधा सच्चा रहा । उसने ईश्वरोन्मुख होने में ही कल्याण समझा । अतः जनपद के समग्र लोक काव्य पर धार्मिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । यही भक्तिकाल का सवर्ण युग लोक काव्य में भी है ।

डा0 सम्पूर्णानन्द जी ने - जीवन और साहित्य निबंध में लिखा है -- समाज का प्रभाव साहित्यकार पर न पड़े यह असंभव है ।

शेर - अज्ञान जान जननी दे जन को ज्ञाता ।
दे जोर करी छंद शेर सुनें सुजाना ।।

इस प्रकार के कला पक्षीय लोक काव्य की शैली भी एक विशिष्टता के आधार को लिये हुए है । उसमें शब्द संगठन, छंद रचना अलंकारिकता के साथ साथ शैलीगत भाव के प्राकट्य की कला भी है । श्री श्याम सुन्दर दास जी ने लिखा है -

'कला पक्ष से हमारा अभिप्राय केवल शब्द संगठन अथवा छंद रचना तथा विविध आलंकारिक प्रयोगों से नहीं है, उसमें प्रयुक्त भावों को व्यक्त करने की शैली भी सम्मिलित है ।'

हमारी समग्र वांग्मय संस्कृत तथा हिन्दी श्रृंगार रस से आप्लावित है । तो लोक मानस बिना प्रभावित हुये भला कैसे रह सकता है । परन्तु मेरा अपना मत यह हैं कि हमें लोक काव्य निम्न लिखित रूपों में श्रृंगार रस को संजोये हुए है ।

● 1-निबंध साहित्य का मूलपदुमलाल पुन्ना लाल वख्शी पृष्ठ 97,98 जीवन और साहित्य ग्रंथ

1- मर्यादित श्रृंगार
2- श्रृंगार
3- नग्न श्रृंगार

5.1- मर्यादित श्रृंगार

आचार्य तुलसी की भाँति मर्यादित या शिष्ट श्रृंगार के मर्मज्ञ अनेकों लोक कवि हुये हैं । जैसे बुन्देली छंद के आचार्य लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय जी कारीगर ने लिखा है-

दोहा - भौंरा वे दिन आंय फिर धरें रहो मन धीन ।
फिर फूले वा चांदनी तकियो नहीं करीर ।।

लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय ग्रंथ नई टकसार
अन्योक्ति के माध्यम से शिष्ट श्रृंगार की सुन्दर अभिव्यंजना है ।

5.2. श्रृंगार

इस श्रृंगार में रति भाव विकसित होने लगता है । राधा कृष्ण के वर्णनों की आधार, नायक नायिका का आधार ऐसे लोक काव्य में हैं । परन्तु रीति कालीन कवियों से इतर यह वर्णन है ।- यथा -

मोहन कीने भेष जनाने पैरन लागे गाने
सुंदर मोतिन मांग समारी
जामें रुनका करें बहारी
माथें दयी दावनी प्यारेः नेचें विंदिया
ताके नेंचें बुंदका कारे
विच विच बुंदा लगत प्यारे
कानन कन्न फूल झुमकारे । दांतन मिसिया
नैनन रेख लगी कजरा की लागत भौत सुहाने ।
मुख में दये पान, की बिरियौं लाली कंठ दिखाने ।

दोहा पैर विचौली लल्लरीसर माला लई डाल ।
गजरा हीरन के हिये पेरी मोतिन माल ।।
विच विच कनी लगी हीरान की लागत भौत सुहाने ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

दोहा चोली पैरें आंग में जाने कहा छिपांय ।
चूनर ओढ़े बैजनी मन ही में मुसकांय ।
दानन घूम घुमारौ पैरें पवन लगें फारानें ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

यहाँ पर यह श्रृंगारिक वर्णन अलौकिक नायक को लौकिकता के धरातल पर लाकर किया गया है परन्तु यह माधुर्य भावना मय है । लोक कवि अश्लीलत्व के दोष के पूर्णतः सतर्क रहा है और अंत में लोक कवि ने कहा है -

रंग भरिया छलिया बड़े हैं नटखट की खाने ।

नित प्रत चरित करत हर नये नये राम सहाय वखाने ।।

ऐसे श्रृंगार में मेलों का मजा, जीजा साली की कथा, विवाहादि के गीत, पति पत्नी के संवाद, नख-शिख, प्रेमिका-प्रेमी प्रसंग आदि सहस्त्रों प्रसंग हैं । परन्तु अश्लीलत्व से परे हैं ।

5.3-नग्न या घोर श्रृंगार

मेरे मत से श्रृंगार का यह तीसरा भेद है जिसे प्रवृत्ति के अनुसार लोग पसंद भी करते हैं । परन्तु हमारे साहित्याचार्यों ने इसे अश्लीलत्व दोष से युक्त रखा है । जनपद के अनेक लोक कवि नग्न श्रृंगार के पंक पयोधि में जा गिरे हैं । यह उनका दोष नहीं है मानव हृदय रस रंगी है । अश्लीलत्व दोष युक्त होने के कारण यहाँ उद्धरण देना उचित नहीं समझा गया है ।

6- अन्य रसों का विवेचन

जब हम समग्र रूप से बुन्देली लोक साहित्य को रसों की कसौटी पर कसते हैं तो हमें नव रसों की तरंगों के ज्वार भाटों का साम्राज्य दिखाई देता है । राजा महाराजाओं के यश वर्णन में रासों काव्य को लोक कवियों ने अनेक लोक छंदों में प्रस्तुत किया है और उसमें वीर रस का सुन्दर निरूपण है । यथा आल्ह खंड के प्रसिद्ध पात्र आल्हा, ऊदल, मलखान, इंदल, पृथ्वीराज चौहान, परमाल, देवा ,मछला रानी, फुलवा रानी आदि पात्रों की गाथायें वीर रस से ओत-प्रोत हैं ।

बुन्देली के रस सिद्ध आशु कवि स्व0 श्री राम सहाय जी कारीगर ने समस्त आल्ह खंड को जनपदीय लोक काव्य में प्रस्तुत किया है । आपने राम चरित मानस की कथा भी इसी प्रकार से लोक काव्य के सँाचे में ढाल दी है । उदाहरणार्थ उनका वीर रस पूर्ण लोक काव्य वानगी स्वरूप प्रस्तुत है ।

दोहाः- चारउ औरन दल परे, घेरों सरसा कोट ।
गज मोतन कये भूप सब, चड़े बांद के गोट ।

शरः- बैरिन जा आँख कंत दांई मोरी फरकती ।
माथे सें गिरी बिदिया सिर सारी सरकती ।

टेकः- आया पृथ्वीराज नृप चड़के-कंत जिया जो धड़के ।

छंदः- देखौ तोपन की धंदकारन, लागे हथिया सोउ चिंगारन
सुन लो टापन की ठनकारन-थोड़ा हीसें ।
जो तों परे नोवदन डंका, दे रये सूर सिंग से हंका
सुन सुन होत मोय मन शंका-मुसकिल दीखै ।

उठानः- बारई से कोउ भीतरौ आ ना पावै गड़ के ।
चारउ कोद बंदे है नाके बाहर पांय न कड़के ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

उड़ानः- माता मैं इकली करों विजै युद्ध लड़ लड़के ।
थर थराय भू मंडल सारौ तेग करूं जा तड़के ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

नई टकसारी कात हे गाँय अगारी बड़के
परत ताल ढोलक के ऊपर सुन कायर दिल धड़के ।

तात्पर्य यह है कि लोक मानस में वीर भाव, राष्ट्रीय प्रेम जागृत कराने में ऐसी पराक्रम व साहस पूर्ण कहानियों का अत्यधिक महत्व हैं । अपनी आन बान पर मिटना भारतीय जन के लिए एक सरल खेल है । स्वराष्ट्र रक्षा की भावना की शिक्षा भी वीर काव्य में भली भाँति समाहित है । इस प्रकार वीर पात्रों में राम, कृष्ण, अर्जुन, मेघनाद, रावण, अंगद, लवकुश आदि के प्रेरणास्पद प्रसंग लोक काव्य में भरे पड़े हैं । लोक काव्य में शांत रस की प्रधानता है । जनपद के समस्त लोक कवियों ने किसी न किसी रूप में अपने काव्य में भक्ति भाव ' निर्वेद ' को स्थान दिया है । इसका प्रधान कारण यह है कि हमारी संस्कृति में धार्मिक भावनाओं की प्रचुरता है । यह भावनायें आस्तिकता के कारण है । इस सन्दर्भ में उद्भट विद्वान डा0 श्याम सुन्दर का मत है -

' धार्मिकता के भाव से प्रेरित होकर जिस सरल तथा सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई , वह वास्तव में हमारे लिये गौरव की वस्तु है । '

लोक मानस के आराध्य देव अनेक हैं । कारण स्पष्ट है कि हमारे यहाँ बहु देवोपासना है । लोक कवियों ने राम, कृष्ण, शंकर, गणेश, सरस्वती, हरदौल, संत तथा उच्च कोटि के भक्तों का गायन अपने लोक काव्य में किया है। राम कृष्ण आदि के चरित्रों के साथ साथ प्रभु के अनेकानेक अवतारों की लोक कथायें लोक काव्य में संग्रहीत हैं । यह धार्मिक साहित्य लोक कवियों की वरद लेखनी से प्रस्तुत है । उदाहरणार्थ - चाहे हम वाणी के पुत्र प्रतिनिधि लोक कवि ,बुन्देली के रस सिद्ध, कवि ईसुरी को लें तो उनकी चौकड़ियाँ भक्ति रस की पिचकारियों के समान है जो पाठक को बिना सरावोर किये नहीं रहतीं -यथा-

भज मन राम सिया भगवानें साठ संग कछू ना जानें ।
भारतीय साहित्य की विशेषतायें निबंध से
धन सम्पत सब माल खजानें, रे जै ऐई टिकाने ।
भाई वंद सब कुटुम कवीला, जे स्वारथ के लाने ।
केंड़ा कैसो छोर ईसुरी हंसा हुयें रमानें ।। '

इस प्रकार रामावतार की तरह कृष्णावतार तथा निर्गुण, सगुण का समन्वय तथा माधुर्य भक्ति के सहस्त्रों उद्धारण लोक काव्यान्तर्गत लोक कवियों ने रचे हैं । कृष्णावतार संबंधी ईसुरी की भक्ति चतुष्पदी देखिये :-

चल मन वृन्दावन में रइये, कृष्ण राधका कइये ।
झाडूंदार हुओ गोकुल के खोरें सु करइये ।
जो दोरे देवतन खा' दुर्लभ, तिनें बुहारू दइये ।
बचे खुंचे ब्रज जन के टूंका - माँग माँग के खइये ।। "

इस प्रकार के शांत रस में पद, ख्याल, लावनी, चौकड़ियाँ ,कवित्त, सवैया, शैर, दोहा, छंद, आदि अनेकों छंद भरे पड़े हैं । लोक कवि श्री राम सहाय जी कारीगर का भक्ति भाव देखिये-

दोहा:- जपत नाम जिनका सदा शारद शेष गनेश ।
नारद ब्रह्मा रटें, भजें सुरेश महेश ।
शेर:- सो चरित करत ब्रज में नित नये नये हैं ।
प्यारी के मिन हेतु नार नर से भये हैं ।।
टेक:- मोहन कीनें भेष जनानें-वैरन लागे गाने ।
छंद:- सुंदर मोतिन माँग संवारी-माथें दई दावनी प्यारी, तामें रूनका करें वहारी-नेंचे बिदिया ।

वाकें नेंचें बुदका कारे, बिच में बूंदा लगत प्यारे,
कानन कन्न फूल झुमकारे- दौंतन मिसिया ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

बुन्देली लोक काव्य में श्रृंगार रस का भी अभाव नहीं है । इस श्रृंगार रस में कहीं कहीं अश्लीलत्व का दोष आ गया है । शुद्ध श्रृंगार महाकवि बिहारी की तरह अनेक लोक कवियों ने लेखनी चलाई है । इस श्रृंगार वर्णन में नायिका वर्णन, नख-शिख वर्णन, प्रेम लीलाओं, मर्मस्पर्शी श्रृंगारिक प्रसंगों का बाहुल्य है । इस श्रृंगार वर्णन में संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों की पर्याप्त विवेचना है । लोक कवि श्री भोगी लाल जी द्वारा रचित ख्याल का उद्धरण प्रस्तुत है -

सोउत में सेज पै गिर कई आज बिंदुलिया ।
कोऊ देखी होय तो हम खौं बता दो हम खौं बतादो ।
नातर कटा दो हुलिया-कटा दो हुलिया
सोंउत में सेज पे गिर गई आज बिंदुलिया ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मन तरंग सागर भोगी लाल सेठ

कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा जनपदीय लोक काव्य श्रृंगार, वीर, शांत रसों की प्रधानता लिये हुए समस्त रसों का परिपाक करने वाला है । उसमें वेदान्त के गहन ज्ञान का भी सरलतम शैली में वर्णन है । ब्रह्मम, जीव ,माया, काया, संसार, आदि की विशद विवेचना है । रस और अलंकारों की दृष्टि से यह साहित्य अपने में बहुत ही उत्कृष्ट है । लोक साहित्य का इसी कारण से जन सामान्य में आदर तथा प्रचार है ।

बुन्देली लोक काव्य में कला पक्ष की सबलता दृष्टि गोंचर होती है । उसमें एकाक्षर छंद से लेकर दो अंग, चौ अंग, अठंग, अधरोष्ठ, सिंहावलोकन, गतागत, छेड़गतागत, लता पक्षीय, वारामासी आदि के अलंकारिक तथा सुन्दर शैली में छंद रचना मिलती है । जिन्हें देखकर रस मर्मज्ञ पाठक वाह-वाह किये बिना नहीं रहता । कला पक्ष की काट छांट तो देखते ही बनती हैं । उदाहरणार्थ- एकाक्षरी रचना देखिये-

नानी नान नुनों नन्नी ना, ने ने नुनों ननीना ।
नन्नी ना नों नाने ने नें, नुने ननू नोंनी ना ।
नन्नू नों नन्ने नन्ने ने, नुनें नना नों नी ना ।। '

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

ऐसी चमत्कारिक रचनायें किसी साहित्य में दुलर्भ है । इनके रचयिता भी दुर्लभ है । उक्त रचनाओं में खेत काटने का प्रसंग का वर्णन है । इस प्रकार की रचनाओं का आधार फड़ काव्य में घर जीत का मानदंड माना जाता है । लोक काव्य में फड़वाजी का अपना निराली महत्व है । एक रचना देखिये जिसमें पा वर्ग को निकाल दिया गया है -

हे जननी हरि के चरित करन चाहें कुछ गान ।।

तात्पर्य यह है कि बुन्देली भाषा में इस श्रेणी के लोक काव्य को साहित्य की ही संज्ञा से अभिहित किया जायेगा । इस प्रकार के लोक

- ईसुरी प्रकाश गौरी शंकर द्विवेदी शंकर पृष्ठ 21,96
- ग्रंथ मनमोहन भागः-2 पृष्ठ -11 लोक कवि श्री राम सहाय कारीगर
- लोक कवि श्री राम सहाय ग्रंथ नई टकसार

साहित्य को रसानुभूति करने के लिए कुछ बुद्धिजीवी सरस हृदय पाठक तथा साहित्य मर्मज्ञ की आवश्यकता होती है । यह बुन्देली भाषा बहुत समय तक छोटे बड़े राज्यों की राजभाषा रही है । डा0 कृष्णलाल हंस ने बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप में पृष्ठ 305 पर लिखा है –

बुन्देली का यह काव्य भाषा और राज्य भाषा का रूप किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित बुन्देली रूप नहीं, वरन एक ऐसा रूप है जो समस्त बुन्देली भाषी भूभाग में समान रूप से जन गृहीत है । यही बुन्देली का परिनिष्ठ रूप है । बुन्देली ने अपने परिनिष्ठित रूप में अपने मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए अन्य भाषाओं और बोलियों की शब्दावली गृहण कर अपने शब्द भंडार और अभिव्यक्ति क्षमता में वृद्धि करने का प्रयास किया है । परिष्कृत तथा साहित्यिक बुन्देली लोक भाषा के प्रयोग में काव्य में ईसुरी के चुने हुए छंद जनपद में बड़े बेजोड़ हैं । ईसुरी के अतिरिक्त कवीन्द्र नाथूराम माहौर, मदन मोहन द्विवेदी मदनेश राष्ट्र कवि श्री घासीराम व्यास एवं श्री घनश्याम दास जी पाण्डेय हैं । आपके काव्य में सरल बुन्देली तो है ही परन्तु साहित्यिक एवं हृदयग्राह्य बुन्देली का भी अभाव नहीं है । बुन्देली के प्रतिनिधि कवि ईसुरी की रचनाओं के उद्धरण देखिये :-

लागे नख सिख सें तन नीकों, कुंवर राधिका जीको ।
केहरि, कदली, श्रीफल, दाड़िम, गति मंडल गज फीको ।
आनंद कंद मंद कुसकैवो, गिरधर को मन झीकौ ।
ईसुर उड़त सुवास सुकृत की, शोभन घर कौ टींकौ ।। •

जनपद के पर्याप्त कवियों ने नारी के नख शिख सौंदर्य का चित्रण किया है । उसमें प्रतीकात्मकता तथा विम्वात्मकता भरी पड़ी है । नेत्रों का वर्णन, बालों का वर्णन, चोटी का वर्णन, कपोल, उरोज, अधर, कटि प्रदेश, जंघायें, हाथ, चितवन, मुस्कान, यानि नारी सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन लोक काव्य में विद्यमान है । इन लोक कवियों के श्रृंगार वर्णन का चित्रण तथा मधुर कल्पनायें देख कर ऐसा लगता है कि मानों बिहारी और आचार्य केशव, रसलीन, जैसे उद्भट विद्वानों का श्रृंगार इन कवियों का उत्कोच हो । अथवा इनसे उन्होंने सीखा हो । बुन्देली बसुंधरा के जनपद झाँसी के बुन्देली लोक कवि, वाणी के वरद वत्स आचार्य 'ईसुरी' का हिन्दी साहित्य में कोई शानी नहीं है । नायिका भेद तथा प्रेम की सूक्ष्म प्रकृतियों का दिग्दर्शन छोटी सी चौकड़िया में करा देना इनका काव्य है । सम्प्रति स्वरूप महाकवि ईसुरी के श्रृंगार वर्णन की चतुष्पदियाँ प्रेषित हैं – नायिका के मांसल शरीर का सौंदर्य देखिये-

नग नग केसों बनो वंदवारो, रजऊ को डील दुरारौ ।
अंड़िया' जबर मसीली जागे, कबजन कोद निहारौ ।
ओले तिहरीं परें पेट में, माफिक को तुंदवारौ ।
गोरी वदन स्यामली सारी, लगे लिपड़तन प्यारौ ।
ईसुर नचत मांय सें आ गई गज घूमत नचवारौ ।।

लोक कवि के काव्य में यद्यपि अश्लीलत्व का दोष आ गया है परन्तु वह बिहारी जी के काव्य से गया बीता नहीं है । नायिका के नख वर्णन के तारतम्य में -

नग नग बने रजऊ के नोने, ऐसे की के होने ।
गाल नाक और भौंय चिबुक लग, अँखिया करती टोने ।

• ईसुरी प्रकाश श्री गौरी शंकर 'द्विवेदी शंकर' पृ0 64

ग्रीवा जुवन पेट कर जागे, सबही भौत सलौने ।
ईसुर कबैं संग ले परवी, एकई पलंग बिछोनें ।।

इस प्रकार नेत्र बद्ध नायक नायिका की अनेक प्रेम भावनाओं के पर्याप्त उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । परन्तु आचार्य ईसुरी पर अधिक विवेचन करना समीचीन नहीं समझकर अन्य कवियों पर दृष्टि पात करना ठीक है क्योंकि ईसुरी पर पर्याप्त कार्य हो चुका है ।
अतः यह कहा जा सकता है कि लोक काव्य वर्तमान साहित्यिक धारा के साथ साथ चल रहा है । क्योंकि खड़ी बोली साहित्य की पर्याप्त भाव सम्पदा का सौम्य हमें जनपदीय लोक काव्य में मिलता है । इस जनपदीय साहित्य में उत्कृष्टता ही मानी जायेगी क्योंकि न तो इसमें प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का भूत सवार हे और न इसमें छायावाद की छाया है, इस लोक काव्य में नये फूहड़ प्रतीकों की उत्प्रेक्षायें नहीं है तथा नई कविता छंदवद्ध हीन रवड़ छंद की होड़ नहीं है । इस लोक काव्य में अनोखा लालित्य, सुन्दर तुक तथा तीर की तरह जा चुभने वाले मर्म भेदी काव्योक्तियाँ' सरलतम शैली में हैं ।

बुन्देलखण्ड के काव्य क्षेत्र में झाँसी के वयोवृद्ध कवि श्री नाथूराम माहौर एक ऐसे ही प्रतष्ठित मलयगिरि के समान रहे जिनके संसर्ग और आश्रय से अनेक जन काव्यानुरागी और प्रतिष्ठित कवि हो गये । माहौर जी उन कवियों में से थे जिन्होंने रीतिकाल की प्राचीन परम्परा से प्रभावित होकर काव्य रचना के लिए प्रेरणा प्राप्त की । अतः स्वभाविक रूप से छन्दशास्त्र ,अलंकार शास्त्र , रस शास्त्र के साथ नायक-नायिका भेद आदि का अध्ययन किया, किन्तु प्राचीन काव्य परम्परा में बंधकर नहीं रहे । यह समय का ही प्रभाव था कि महौरजी ने श्रृंगार रस को छोड़कर अपने काव्य में वीररस को स्थान दिया । उत्प्रेक्षा अलंकार का अच्छा निर्वाह हुआ है तथा अनुप्रास आदि शब्दालंकार सुन्दर रूप में पाये गये हैं ।

श्री बुण्देलखण्ड की अनुपम वीर वधू बांकी है ।
मूरतिवंत वीर रस की जनु झांकी सुम झांकी है ।।

श्रृंगार -रस का बुन्देली लोकगीतों में अच्छा वर्णन प्राप्त होता है । नारी का श्रृंगार प्रसाधन पुरूषों के लिए आकर्षण की वस्तु रही है । उसे पुरूष की श्रृंगारिक प्रकृति का पूरा पूरा ज्ञान है तभी वह साधिकार पुरूष जाति को चुनौती दे देती है ।

ररकाए बैठी , केश ममर कारे,
कौन पै पैरीं हरी पीरी चुरियां ।
काए पे नैन करे कारे । ररकाए
व्याहें पै पैरीं हरी पूरी चुरियां,
छेला पै नैन करें कारे ।
ररकाए बैठी केश ममर कारे ।?

बुन्देली लोकगीतों में वियोग-श्रृंगार का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है । विरहणी नायिका पशु-पक्षियों से अपने सुख-दुख की बात कहतीं हैं और सहचरण की भावना से प्रेरित होकर उसी के द्वारा प्रियतम के पास अपना संदेश भी भेजती है :-

चिठियाँ लिखि के सुअना खों दे दई,
सुअना गऔ परदेश मोरे लाल ।
स्वामी के आंगन लौंगन बिरछा,
सुअना बैठो जाय मोरे लाल ।

मायें से आयें जो क्रिसन कन्हैया,

चिठियाँ दई हैं छुटकाय मोरे लाल ।

लोकगीतों की भाव धारा में इस प्रकार काग या तोता बोलता है और कार्य करता है । फलस्वरूप जब गायक उसके चरित्र में मानवीय गुणों का आरोप करता है । विरह की स्थिति में नायिका की क्या दशा होती है इसका सजीव चित्र खींचा है ।
नायिका भेद के अन्तर्गत विरह-वेदना नायिका की स्वप्नावस्था का बड़ा चित्रण किया गया है जिसमें वियोग की दशाएं, चिन्ता, स्मृति, उमंग, जड़ता, आदि का वर्णन किया जाता है । जन कवि ईसुरी द्वारा किया गया ऐसा ही वर्णन देखिए:-

सपनन दिखा परे मोय सइयां, सुनौ परोसिन गुइयाँ ।

आपुन आय उसीसें ठांड़े , झपट परी मैं पइयाँ ।

उनके दृग दोऊ भर आये, मोरी भरी तलइयाँ ।

'ईसुर' आँख दगा में खुल गई, इतौ उतै कोउ नइयाँ ।।1

बुन्देली काव्य कला में अन्योक्तियों का भी अच्छा प्रयोग देखने को मिलता है । माहौर जी की 'व्यंग-विनोद' नामक अन्योक्ति काव्य ऐसे ही तीखे तीरों का तरकस है । भ्रष्ट त्यागशील कहलाने वाले व्यक्तियों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर आपने 'व्यंग-विनोद' में लिखा है:-

त्यागिन के तप त्याग को भ्रष्ट भयौं संसार ।

तके कारन आज-कल फेलों भ्रष्टाचार ।

फेंलों भ्रष्टाचार चार कै बनिगै चेरे ।

सदाचार कर लोप चार की और न हेरे ।

,है मराल को भैंस किन्तु करतव कागन के ।

माहुर कवि का कहैं हाल ऐसे त्यागिन के ।।

बुन्देली लोक गीतों में हिन्दी काव्यकला की भाँति दोहा, छन्द, सोरठा, चौपाई, कवित्त, कुंडरिया, साखी, सिहर आदि सभी का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है । दोहा तथा छन्द का उदाहरण देखिए :-

दोहा:- अवला वृंद बिलोक बहु नखसिख सजे सिंगार ।

हाट-बाट पुर देख सब लागौं करन विचार ।।

छन्द:- अस कहि कैं कीनौं गौन जवै । टीकमगढ़ पांचौ पास तवै ।।

रानी नोंजाय जुहारत है । झाँसी की हाल सुनावत है ।।

मेरे मन ऐसी झूल रही । जा तुमरी मरजी होय सही ।।

ठकुरास नौकरी पाय रही । अब आवेगी क्या काम सही ।।

तासे सबरै नौकर बुलाय । तौपैं संगे दीजे लगाय ।।

हम जातन झाँसी लैय छीन । वहाँ है न फौज पलटन प्रवीन ।।

इस प्रकार बुन्देली काव्य में भाव पक्ष एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है ।

7- व्याकरण की प्रयोगात्मक व्याख्या

किसी भी भाषा का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । अन्य आधुनिक आदि भाषाओं की भाँति बुन्देली

भाषा की भी अपनी व्याकरण व नियम हैं । बुण्देलखण्डी भाषा में 10 स्वर 27 व्यंजन कुल 37 ध्वनियाँ या अक्षर है । देवनागरी लिपि के शेष 16 अक्षर ऋ, ऋ, अं, अः भ, ड0 ,ण, ढ , श, ष ,य, व, क्ष ,त्र ,ज्ञ इसमें नहीं हैं । बुन्देली भाषा में संस्कृत के समान संधियाँ नहीं हैं । अक्षर स्वर व व्यंजन सभी स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं । व्याकरण की प्रयोगात्मक व्याख्या के उदाहरण इस प्रकार है।

7.1. क्रिया

क्रियायें सामान्यतः चार प्रकार की होती हैं यथा - अकर्मक ,सकर्मक, द्विकर्मक, प्रेरणार्थक ।

1- **अकर्मक क्रियाओं** का संबंध कर्ता तक ही सीमित रहता है तथा इसके लिंग,वचन व पुरुष उसी के अनुसार प्रयुक्त होतें हैं । यथा में निगो, वा निगो, ये निगें, सें निग

2- **सकर्मक क्रिया** में कर्ता के साथ एक कर्म भी होता है और क्रिया का फल उससे संबंधित होता है । इससे क्रिया के लिंग और वचन उसी के अनुसार हाते हैं जेसे पथरा मारो, लुडिया मारी ।

3- **द्विकर्मक क्रिया** में मुख्य कर्म के साथ एक गौण कर्म भी रहता है यह कमी छिपा भी रहता है । यथा- पुनू ने मोय पोथी पढ़ाई, बान से रावन मराओ ।

प्रथम वाक्य में पुनू सहायक निर्देशक है किन्तु पढ़ाने का कार्य 'मोय' द्वारा हुआ है प्रेरणार्थ क्रिया - में कर्ता का संबंध और दूर का हो जाता है जैसे पढ़वाओ (क्रिया से ज्ञात होता है कि न पढवाने वाला है न पढ़ने और पढ़ाने वाला अतः हो सकता है उसने केवल पढ़ाने की आज्ञा दी हो ।

क्रिया के कहीं तीन रूप व कहीं चार रूप देखने को मिलते हैं व प्रधानता अकर्मक क्रिया की होती है ।

उदाहरण - कटबो, काटबो, कटाबो, कटबाबौ ।
निगबौ, गिबौ, निगबाबौ ।

7.2. पुरुष

बुन्देली में पुरुष तीन ही होते है, क्रियाओं में यह पुरुष भेद केवल भविष्यकाल में होता है । वर्तमान व भूतकाल में नहीं ।

सभी संज्ञायें अन्य पुरुष में होती हैं उत्तम पुरुष व मध्यम पुरुष का प्रयोग तभी होता है जब क्रिया के भविष्य कालिक या विधि रूप हों । पुरुष भेद कर्ता के अनुसार ही होता है । लिंग एक ही रहता है स्त्रीलिंग के अलग रूप नहीं बनते । यथा -

मैं जेंओं - हम जैं
तैं जे - तुम जेवो
वो जें - वे जें

विधि रूप में -

मैं जाऔं -- हम जायें , अपन जावी
तैं जा, तैं जइये -- तुम जाऔ
बो जाऐ, जावें -- वे जांये , बे जावें

7.3. लिंग

बुन्देली में स्त्रीलिंग, पुलिंग केवल दो ही लिंग होते है। कैलाश बिहारी द्विवेदी के अनुसार प्राकृतिक लिंग के अनुसार ही वैयाकरणिक लिंग का निर्धारण होता है। महत्वपूर्ण और दीर्घकाय प्राणियों के लिए यह नियम ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है। किन्तु छोटे आकार के प्राणियों में उसी वर्ग के आकार की सापेक्षता के अवसर पर लिंग परिवर्तन होता है। प्राकृतिक लिंग से कोई संबंध नहीं रहता है । नानासहाब ओरछा के महाराजा मधुरकरशाह आदि वीर गाथायें साहित्यकार द्वारा रची कपोल कथायें नहीं है। अपितु वे इतिहास की ऐसी वीर-गाथऍं हैं जिन्होनें देश के इतिहास में सुनहरें पृष्ठ लगायें है।

बुण्देलखण्ड का कलाकौशल प्राचीन काल से ही उच्चकोटि का रहा है। सागर जो कि प्राचीन समय का एरन नगर था में जयस्तंम तथा बारह मूर्तियों में प्राचीन शिलालेख खुदें पडें है। पाटलीपुत्र राजा अशोक की प्रशस्ति जवलपुर की रूपनाथ की चट्टानों पर अकिंत है। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से इस प्रदेश पर बुन्देली का अधिपत्य रहा है। यहाँ के बुन्देल कालीन किले, महल, तालाब, शिलालेख, तथा स्मारक ग्वालियर से रींवा तक स्थान स्थान पर प्राप्त होते हैं। बुण्देलखण्ड के पुरातत्व डायरेक्र का कहना है कि ओरछा के राजमहलों में जो कला पाई जाती है वह भारतवर्ष में अत्यंत दुर्लभ है उनके अनुसार सिविल आर्ट भारतवर्ष में केवल ओरछा और दिल्ली के किलों में तथा वीर सिंह जू देव के महलों में ही पाया जाता है।

प्राचीन कलाकृति में मुख छवि, रंगों का मिश्रण पोशाक की चमक वर्ण की सुन्दरता और भावों की स्वाभाविकता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। डा0 रामस्वरूप स्नेही ने लिखा है कि बुण्देलखण्ड बावनी में बुण्देलखण्ड के 53 प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों मंदिरों, महलों, किला गढ़ी, वाघ, कुंड, प्रपात, स्मारक, गुफायें कुटी, मूर्तियाँ, घाट वन टौरिया आदि स्थानों का रोचक वर्णन किया गया है। कुंडेश्वर महादेव, जो टीकमगढ़ से 4 मील दूर हैं की पूजा करने वाणासुर की पुत्री ऊषा वानपुर ग्राम से आतीं थीं ।

बुण्देलखण्ड के नगरों व ग्राम का भी अपना प्राचीन इतिहास है यहाँ कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हुए जिससे उसकी प्राचीनता व कीर्ति आज भी इतिहास में दिक ऋषियों ने इसी स्थल को अपनी तपस्या भूमि बनाया था । पाण्डवों के अश्वमेघ यज्ञ के लिए श्यामकंटी नामक घोड़ा भांड़ेर से होकर गया था । उसी से यहाँ के तालाब का नाम सोन तलैया पड़ा । सोनागिर जहाँ जैनियों के 66 शिखर सहित जैन मंदिर हैं पहले श्रवनगिरि नाम से जाना जाता था । कारण श्रवण जैनियों को कहा जाता है। झाँसी अपने प्राचीन काल में वलवंतकुमार के नाम से जानी जाती थी ओरछा के महल से देखने पर झाँसी सी दिखाई देती थी अतः इसका नाम झाँसी पड़ा ।

इस पुण्यस्थली में महाराजा रघूराजसिंह के काल में संगीत कला भारत में चरम सीमा पर थी । तानसेन व मधुरअलि जैसे संगीतज्ञों ने इस प्रदेश को गौरव प्रदान किया । दतिया नरेश स्व0 भवानीसिंह के समय में गुल्ला प्रसिद्ध नर्तक था तथा कुदौसिंह पखावज वादक । कुदौसिंह के संबंध में एक किवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि उसने एक ऐसे मस्त हाथी को जो उस पर प्रहार करने हेतु छोड़ा गया था गजाकर्ण पखावज बजाकर अपने वश में कर लिया था ।

बुण्देलखण्ड के कवियों व साहित्यकारों की गौरव गाथाओं से इतिहास के पृष्ट भरे हुए है। वीरगाथा-कालीन चारण कवि चन्दवरदाई और जागनिक ने इसी प्रदेश से प्रतिभा प्राप्त की । अकबर के विनोद प्रिय दरबारी बीरबल व उनके मन्त्री टोडरमल यहीं के थे । कालीदास जैसे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित ने भी यहीं से प्रेरणा प्राप्त की । छतरपुर के ठाकुर कवि दतिया के गढ़घर कवि, इसी

भूमि की सन्तान थे । इसी तरह फाग साहित्य में झाँसी जिले के कवि ईसुरी व छतरपुर के गंगाधर व्यास अमर फागकार हुए हैं। यहाँ के राजा साहित्य प्रेमी रहें है। राजा छत्रसाल स्वयं काव्य रचना किया करते थे ।

यथा - चोखरौं पु0। चुखरिया स्त्री ।
मैंदरो पु0। मिदरिया स्त्री ।

अति लघु व महत्वहीन प्राणियों को केवल एक ही लिंग के अन्तर्गत रखा जाता है। पुलिंग के आने वाले कुछ उदाहरण :-

तिरूला, कछुआ, केंचुआ, अंगरक्टा आदि स्त्रीलिंग के अन्तर्गत आने वाले शब्दों के उदाहरण इल्ली, सुड़ी, चील, वटेर, मैना ।

कहीं रोचक उदाहरण मिलतें हैं जहाँ एक वर्ग के पुलिंग को दूसरे वर्ग का स्त्रीलिंग मान लिया जाता है यथा चिंटा पु0 लि0। और दूसरे वर्ग का चिन्टी । स्त्री लि0 । मान लिया जाता है।

सामान्तः पुलिंग के कुछ निश्चित नियम इस प्रकार हैः-

1- औकारान्त शब्द - घामो, प्यादौ, गाड़ी
2- वाकारान्त शब्द - बैलवा, चिरवा, घुरवा आदि
3- रकारान्त शब्द - संज्ञायें अधिकतर कर्म या व्यवसाय की आधार वस्तु के नाम के साथ और प्रत्यय लगाकर संज्ञा बनती है।

उदाहरण - सोना - सुनार, लोहा - लुहार,

कुछ पुलिंग स्त्रीलिंग शब्दों के साथ प्रत्यय जोड़कर बनायें जाते है। । इसका कारण यह है कि यह स्त्रीलिंग शुद्ध कारण रूप में है । यथा

बैन - बैनैउ, मौसी - मौसिया, नन्द - नन्देउ

तिरिस्कार वाची पुलिंग शब्द बनाने के लिए शुद्ध शब्द की अंतिम ध्वनी दीर्घ हो जाती है और इसके पूर्व की ध्वनियों में स्वर प्रतिस्थापन हो जाता है।

यथा - बामन - बमना, सुनार - सुनरा आदि ।

तिरिस्कार की अधिकता और तीव्रता में ट्टा प्रत्यय के रूप में जुड़ जाता है उदाहरण स्वरूप - अहीर - अहिट्टा, लुहार - लुहट्टा, नाऊ - नउटा ।

स्त्रीलिंग शब्द

स्त्रीलिंग शब्दों के कुछ निश्चित नियम है जों संस्कृत के विकसित रूपों पर आधारित है।

ई प्रत्यय लगाकर बनें शब्द मौड़ा - मौड़ी, चैला - चैली ।

द्विय या सयुक्त व्यंजनान्त शब्दों में जब इया जुड़ता है तो ध्वनि वियोजन या लोप हो जाता है यथा - कुत्ता - कुतिया ।

लघुता बैला - बिलिया
हीनता - चमार - चमरिया

7.4. वचन

बुन्देली में क्रिया के वचन एक वचन और बहुवचन होते है भूतकाल में इनके परिवर्तन के नियम लिंग के परिवर्तन के ही अनुसार है।

अकर्मक क्रिया के वचन कर्ता के अनुसार लगता है। यदि कर्ता के साथ ने चिन्ह होतो उसका वचन कर्म के अनुसार लगता है। किन्तु कर्म के साथ यदि खौं लगा होतो उसका वचन एक वचन में ही होगा ।

सामान्य वर्तमान, काल में पुलिंग के दोनों के वचन के रूप के अनुसार बढ़ जाता है।

7.5. काल

काल मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते है यथा-

भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्य काल - इसी के अनुसार क्रियाओं के रूप चलते है खाओ - खात - खै । आऔ- आऊत - आएं । मूल क्रियाओं में सहायक क्रियाओं के रूप जोड़कर काल भेद बनाये गये है। दोनों लिंग और दोनों वचनों से ओ, ए, ई धातु में इनकों जोड़ देने से निम्न रूप बनतें है खाओ, खार, दाई आदि पूर्ण भूतकाल क्रियाओं के रूप के साथ भूत कालिक रूप जुड़ जाते हैं यथा करो तो, करे, ने, करी ती पिओ तो ,

वर्तमान काल में क्रियाओं की धातु में ता, ती प्रत्यय लगते है बहु0 वचन स्त्रीलिंग में ती एक वचन स्त्रीलिंग व पु0 दोनों में त जुड़ता है यथा में खात,अ हस खात, वा खात, वे खातीं आदि ।

भविष्य काल में वचन और पुरूष भेद से सामान्य प्रत्यय क्रिया की धातु लगतें हैं। यथा -

में खेऔं, हम खैं , तै खैं, तुम खैओं, बों खै, बै खै ।

7.6. स्वर

बुन्देली में ''अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ ये दस स्वर माने गये है । डा0 कृष्णलाल हंस ने भी बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप में पृष्ठ 129 पर इतने ही स्वर माने है।

इन दस स्वरों में अ, इ, तथा उ ह्रास स्वर अथवा लघु स्वर है तथा आ, इ, ऊ, ए, ऐ, ओ तथा औ दीर्घ स्वरों को हम संयुक्त स्वर भी कह सकते हैं। यथा आ अअ । ए त्र अइ । आदि यह स्वर उच्चारण के अनुसार अनुनासिक भी हो जाते हैं यथा अंदर, अंकरा, इंरियाव, उंगरिया इन समस्त स्वरों को अनुनासिक रूप में प्रयोग किया जाता है। यथा - अंसुवा, आंकरा, इंजन, ईदन, उंगरी, ऊंट, ऐना, आदौ आदि । यह स्वर अपने स्वरों के साथ व्यंजनों में भी अपनी अपनी अनुनासिकता अथवा निरानुनासिकता के रूप में जुड़ जाते है। । जैसे -

गद्दा त्र आ, कही त्र ई, मली त्र ई, कयै त्र यै, गये त्र ये, पड़ो त्र ओ, पदू त्र ऊ आदि । भाषा के प्रयोग में स्वरों से संजोग से विभिन्न रूपों व्यंजनों का उच्चारण होता है तथा बिना स्वरों के सहयोग से भाषा का रूप बनना असंभव है।

7.7. व्यंजन

"डा0 कृष्णलाल हंस ने अपने ग्रंथ बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप में पृष्ठ 147 पर मात्र 28 व्यंजन निर्दिष्ट किये हैं।

क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ढ़, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व तथा स, ह डा0 हंस के अनुसार बुन्देली में ड तथा ण व्यंजनों का प्रयोग नहीं होता है। परन्तु मेरे मतानुसार '' ण '' मात्र बुन्देली में प्रयोग नहीं होता । शेष दो वर्णो - ड0 तथा ञ का प्रयोग भी बुन्देली में होता हैं । यथा-

ड0 का प्रयोग - इस वर्ण का प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं होता । क्योंकि यह अनुनासिक वर्ण हैं। अनुनासिक वर्ण मुख तथा नासिका की सहायता से ही बोले जा सकते है। गडा, अड़बंडा, नडा, कंडा, आदि उच्चारणों में ड का प्रयोग है। इन्हें लिखनें में भले ही गंगा, अडबंगा, दंगा, कंगा, सैंया आदि

रूपों में लिख लेते है। इसी प्रकार - पैयां, नैयां, गैयां, मैयां, सैयां, आदि शब्दों में अंत में ड वर्ण का प्रयोग होता है । इसी प्रकार से ज्ञ का प्रयोग भी होता है। यथा - इतै भ, ना, जाव, उतै भम्र पाव । जिस प्रकार स्वर मिश्रित होकर प्रयोग होता है उसी प्रकार निश्चित रूप से ड तथा ज्ञ भी प्रयुक्त होते है।

व्यंजनो के भेद

1 अनुनासिक व्यंजन - म, न, ड, ज्ञ हैं इनको नाक के स्वर की सहायता के बिना नहीं बोला जा सकता ।

2 मिश्रित स्वर - य, व वर्ण इन्हें अर्द्ध स्वर भी कहा जा सकता है।

3 कंठ्य व्यंजन - कंठ से उच्चारित होने वाले वर्ण है - क, ख, ग, घ

4 मूर्द्धन्य व्यंजन - ट, ठ, ड, ढ़ वर्ण है।

5 दन्त धवनियों के व्यंजन - त, थ, द, ध है। इनमें दाँतों का सहारा प्रधान होता है।

6 ओष्ठ्य व्यंजन - प, फ, ब, भ वर्ण है ओठों की सहायता के बिना इन्हें नहीं बोला जा सकता ।

प्राण के आधार पर

1 अल्प प्राण :- वर्गो के पहले तथा तीसरी वर्ण - क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब वर्ण है।

2 महाप्राण :- वर्गो के दूसरे व चौथे वर्ण - ख, घ, छ, झ, ठ, ढ़, ध, ध, फ, भ

घोष के आधार पर

1 अघोष वर्ण - वर्गो के प्रथम तथा द्वितीय वर्ण- क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ है।

2 घोष वर्ण - वर्गो के तीसरे तथा चौथें वर्ण - ग, घ, ज, झ़, ड, ढ, द; थ, ब, भ है।

नोट - बुन्देली में एक *स* का प्रयोग अधिक होता है। बोलों में *श* भी कहीं कहीं प्रयोग होता है परन्तु *ण* का प्रयोग नहीं होता । इसकी जगह *न* का प्रयोग होता है। पुरानी भाषा में *ख* के स्थान पर *ष* भी बोला जाता था परन्तु आधुनिक रूप में इसका प्रयोग नगण्य है।

अक्षर

स्वर अथवा स्वर की सहायता से उच्चारण होता है । अक्षर है।

शब्द

स्वर तथा स्वर व्यंजनों की सहायता से बनने वाले एक अक्षर से लेकर 4-4 या अधिक अक्षरों तक शब्दों का निर्माण होता है । शब्द संगठन में उपसर्ग और प्रत्यय का योग होने से विभिन्न प्रकार के शब्दों की सृष्टि होती है।

7.8. संज्ञा

किसी प्राणी या वस्तु का नाम संज्ञा होता है ।

जिस प्रकार विभिन्न प्रत्ययों के योग से क्रियायें बनती हैं । उसी प्रकार से संज्ञा शब्दों का निर्माण भी विभिन्न प्रत्ययों तथा उपसर्गों के योग से होता है । कुछ शब्द मूल रूप में संज्ञा होते हैं । हिन्दी खड़ी बोली की भाँति बुन्देली में भी 5 प्रकार की संज्ञायें होती हैं ।

1- **व्यक्ति वाचक संज्ञाः-** दाउ, कक्का, दद्दा, हरी, झाँसी, गंगा, हंसपर्वत आदि
2- **जाति वाचक संज्ञाः-** भेड़, गाय, आदमी, मछली, आदि ।
3- **समूह वाचक संज्ञाः-** मंडल, जमघट, झमड़का, छरा, हाट आदि ।
4- **पदार्थ वाचक संज्ञाः-** लोव, सोनों, सिल्वर, पानी, नोंन, चना, आदि ।
5- **भाव वाचक संज्ञाः-** हंसी, नाराजी, खिलाई, पुण्य, लराई, वदमाशी, उचक्कपन, अंधियाव, उजियाव, भुकाभुकौ इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त बुन्देली में युग्म शब्दों का प्रयोग भी संज्ञा के रूप में होता हैं । कुछ शब्द सार्थक तथा कुछ निरर्थक युग्न शब्द भी होते हैं । जैसे- वेलावसाई, गड़ाछिरौरा, मऊसानियां, मऊरानीपुर, तलापुखइया, पतराई, चायपानी, पानी पंगल, बीड़ी बंडल, असनान, ध्यान, नोंन तेल, दरिया, सरिया, उन्ना लत्ता, लीपा पोती, चौका वासन, दातुन मों, भाजी भुंजी, बौंनी बरौनी, बाला बच्चा, आदि ।

बुन्देली साहित्य में इन युग्म संज्ञाओं का बड़ा महत्व है । इनके प्रयोग से साहित्य में रोचकता तथा मौलिकता आ जाती है ।

7.9. प्रत्यय

बुन्देली संज्ञा शब्दों के निर्माण में डा0 कृष्णलाल हंस ने अपने ग्रंथ ' बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप में '25 प्रत्ययों का उल्लेख किया है तथा 13 विदेशी भाषा के शब्दों के प्रत्ययों का भी उल्लेख किया है । परन्तु यह संख्यायें अपने में सम्पूर्ण कदापि नहीं कहीं जा सकतीं । कुछ प्रत्ययों का उल्लेख अग्रांकित है ।

क्र0सं 0	नाम प्रत्यय	शब्द रचना
1	'नो '	जरयानों, दर्रानों, भर्रानों आदि
2-	'आस '	प्यास, मुतास, हुलास, हगास आदि ।
3-	'न्ना ' '	भन्ना, दन्ना, मन्ना, पन्ना आदि ।
4-	'अई '	मवई, रिवई, ककरवई, सिंघई, आदि ।
5-	'ई '	खेती, वारी, व्यारी, वसारी, गंवारी आदि मस्ती, वस्ती, सुस्ती आदि ।

6–	'औआ'	मैआ, दौआ, जउआ, रौआ, बुलौआ, ठटौआ, दिखौआ, हगौआ, आदि
7–	'पा '	सूपा, फूफा, लुपा, तूपा, पीपा, लीपा, आदि ।
8–	'आट'	वुकलयाट, चिरपिराट, गर्राट, घिनियाट, चाट ,खाट, चिकनयाट, इत्यादि ।
9–	'आत'	चिकचिकात, मुसमुसात, सुकपुकात चिमिलात, लुकलुकात, दमदमात, फरफरात, चुलबुलात, आदि ।
10–	'आर '	टकरार, ससरार, पनहार, गुड़मार, दार मुरार इत्यादि ।
11–	'रे '	भारे, सारे, तारे, झारे, पारे, चारे, नारे, इत्यादि ।
12–	'रौ'	पारौ, झारौ, नारौ, चारौ, सारौ, आदि ।

,इस प्रकार विषय विस्तार के भय से उक्त नवीन प्रत्ययों की संख्या और अधिक नहीं बढ़ायी गई है । कुछ उपसर्गों का उल्लेख किया जा रहा है जो इस प्रकार हैं –

7.10. उपसर्ग

उपसर्ग वे शब्दांश है जो शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं । इनसे नवीन शब्दों की रचना होती है । यथा-

1–	'बु'	बुराई, बुरऔ, बुचड़ा, बुकिया आदि ।
2–	'ठ '	ठौआ, ठगना, ठगनू, ठलुवा आदि ।
3–	'बल'	बलवलाऔ, बलवा, बलबूला आदि ।
4–	'बे '	बेढंग बेकार, बेरा, बेमौत आदि ।
5–	'क'	करवौ, करवरौ, कडुअल , कपूत आदि ।

,इस प्रकार के शब्दांश संज्ञा सर्वनाम, क्रिया आदि में लगाये जाते हैं । जिनका उल्लेख मात्र संकेतिक रूप में किया गया है ।

7.11. समास

हिन्दी की भाँति बुन्देली में भी समास होते हैं । डा0 कृष्णलाल हंस ने द्वंद, तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु, अव्ययी भाव तथा बहुब्रीहि आदि 6 समासों को माना है । जब कि लक्ष्मी चंद जी नुना ने अव्ययी भाव समास को छोड़कर शेष 5 समास माने हैं । बुन्देली में निम्न 6 प्रकार के ही समास मिलते हैं ।

1–अव्ययी भाव समासः- पहला पद अव्यय होता है – यथा हरकौर, भरसक, रोजीनामा आदि ।

2–बहुब्रीहि समास ः-दो पक्षों से मिलकर अन्य अर्थ निकले यथा– गलमुच्छा, नौघेरा, कनसुवा आदि ।

• बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप , डा0 कृष्ण लाल हंस पृ0 292
• बुन्देली भाषा 'लक्ष्मी चंद नुना' पृ0 सं0 97

अर्थ:- गलमुच्छा- जिसकी गालों तक मूछें है अर्थात अमुख व्यक्ति ।

3-**कर्मधारय समास** :- पहला पद विशेषण और दूसरा संज्ञा होता है । यथा-
कारी मिर्च, गुलबटरा, कठिया गौंउ आदि ।

4-**तत्पुरुष समास** :- इस समास में कारक विशेष का बोध होता है । विभक्तियों का लोप होता है । द्वितीय तत्पुरुष संस्कृत की तरह से सप्तमी तक का बोध होता है । जैसे-मुफतखोरा, जी दुकावन , चूहामार, धोखावाज, काम कराई, तेल पिराई, गौशाला, मस्तमौला, बैलगाड़ी आदि ।

5-**द्वंद समास** :- दो पदों के बीच 'और' शब्द का लोप हो वहाँ द्वंद समास होता है । जैसे-
रिंकू -टिंकू, लैला-मजनूं , बाल-भुंटिया, चूलौ-चकिया आदि ।

6-**द्विगु समास** :- पहला पद संख्या वाचक होता है । जैसे - तिवाव, दुआवा,
लखटकिया,चौपाल आदि ।

7.12. संन्धि

इस साहित्य में स्वर तथा व्यंजन संधि दोनों होती है । बानगी रूप में कुछ शब्दों की संधियाँ प्रस्तुत हैं :-

1-डारने का संधिरूप त्र डान्ने
पारनें का संधिरूप त्र पान्ने — र का लोप होकर 'न्नें ' हो गया है
तारनें का संधिरूप त्र तान्ने

2-जात हते	त्र	जातते	
खात हते	त्र	खातते	भूतकाल में 'त्ते'संधि रूपा में हो गया ।
परत हते	त्र	परत्ते	
लरत हते	त्र	लरत्ते	

3-लरकन नें	त्र	लरकन्ने	
हमन नें	त्र	हमन्ने	न के साथ नें त्र न्नें हो गया ।
तुमन नें	त्र	तुमन्ने	
पुरखन नें	त्र	पुरखन्ने	

इस प्रकार इन्ने, उन्ने, किन्ने, आदि अनेक शब्द हैं तथा अनेकों शब्द संधियाँ बुन्देली भाषा में विद्यमान हैं ।

7.13. भाषा

बुन्देली लोक की समग्र भाषा मर्म भेदी है । विशेष रूप से बुन्देली लोक काव्य की भाषा लावण्यता के साथ-साथ श्रुति माधुर्य ओज तथा प्रसाद गुणों से युक्त है । उसमें एक अजीव मोहनी सी है जो अन्य भाषा भाषियों के दिलों को थोड़ी हिन्दी के ज्ञान से जीत लेती है । भाषा में प्रवाह,

सरलता, प्रभावोत्पादकता के अनूठे गुण है । लालित्य में ब्रज से आगे ही कहीं जायेगी । समग्र रूप से बुन्देली लोक काव्य की जनपद झाँसी की भाषा सामान्य जन मानस 'बुन्देलीखंडी' के लिए एक जादू की मोहिनी स्वरूप है । जो उसे अपनी ओर खींच लेती है ।

7.14 अलंकार

यथा स्थान शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों की सुंदर सृष्टि के दर्शन होते हैं । बुण्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोकगीतकार अध्याय दो में इनका यथावत उल्लेख है ।

7.15 छन्द

विभिन्न प्रकार के लोक छंद बुन्देली लोक काव्य में दृष्टव्य हैं । यथा- गारी, पद, भजन, ख्याल, लावनी, आल्हा, दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, साखी, झूलना, टेक, उड़ान ,छंद, सोरठा आदि के सुन्दर उदाहरण है ।

7.16 रस

रस का विस्तृत विवेचन अध्याय 3 में किया गया । यथा स्थान प्रसंगानुसार सभी रसों की सुन्दर अभिव्यंजना इस शोध ग्रंथ में की गई है ।

7.17 शैली

विभिन्न प्रकार के राग रागनियों में वद्ध बुन्देली का लोक काव्य बुन्देली लोक कवियों ने सरल, सुबोध तथा ग्राहय, शैलियों में प्रस्तुत किया है । वीरता के वर्णनों में ओजपूर्ण शैली, ऐतिहासिक वर्णनों में वर्णनात्मक तथा विम्वात्मक शैली तथा यत्र तत्र प्रतीकात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं । वेदांत तथा गंभीर विषयों के वर्णनों में भावात्मक शैली भी पायी जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देली लोक काव्य का कला पक्ष यति, गति, लय तुक, नाद सौन्दर्य, लालित्य यथा कला पक्ष के काट छाँट से पर्याप्त समृद्ध है । संक्षेप में कवि परिचय के साथ-साथ यथा स्थान इसका उल्लेख भी किया जा चुका है ।

चतुर्थ अध्याय
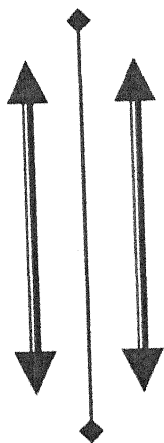
बुन्देली लोक काव्य में समाज और संस्कृति

चतुर्थ अध्याय
बुन्देली लोक काव्य में सामाज और संस्कृति

लोकगीत व लोक संस्कृति का पारिस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है। लोक गीत लोक संस्कृति का ही अंग है। यह विधा सदियों से हमारी संस्कृति में चली आ रही है। इसकी उत्पत्ति का कोई निशचित ठिकाना नहीं है फिर भी हमारी संस्कृति इसे निम्न रूपों में जीवित रखे हुये है-

1- समाज में प्रचलित पर्व और मेलों का वर्णन

जब तक व्यक्ति अन्तस्थल की निहित कामना मूर्तिमती बनकर समूह को प्रभावित करती है तो वह व्रत या उत्सव को जन्म देती है। एक अकेला इष्टदेव की सेवा में जप-तप आराधना तो कर सकता है परन्तु उत्सव नहीं मना सकता । पर्व, त्यौंहारों और व्रतों में धार्मिक भावना के समावेश से पूजा-उपासना, अनुष्ठानों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। यद्यपि उपासना और उत्सव का मनाना दोनों अनुष्टान हैं, किन्तु उपासना एक ही में सीमित है और आत्मसन्तोष उसका लक्ष्य हैं, इसके विपरीत उत्सव दस-बीस मनुष्यों से सम्बन्धित होता है और कामना की चरितार्थता द्वारा आनन्द का उपभोग उसका ध्येय है।

बुण्देलखण्ड में व्रत, पर्व, मेलों का आधिक्य है। कोई वर्ष की कोई ॠतु कोई महिना, कोई दिन ऐसा नहीं जो किसी न किसी देवी-देवता के व्रत या पर्व से जुड़ा न हो। वास्वतिकता यह है कि निर्धारित सप्ताह की परिधि में इनका समावेश कर पाना सम्भव नहीं। त्यौहार, पर्व, मेले प्रकृति की परिवर्तित अवस्थाओं को आनन्ददायी अनुभूति के साथ मानव मन के उल्लास और वैभव के प्रतीक हैं। पर्व, व्रत सांस्कृतिक एकीकरण, धार्मिक समन्वय के सूचक एवं मनोरंजक उपादानों के सृजक हैं। व्रतों की संख्या एवं विधियॉं पौराणिक युग में अगणित थीं। व्रतों में विविध उपवास, दान, ब्राह्मण भोजन तथा पूजन से मरणोपरान्त सद्गति की प्राप्ति होती है, ऐसी मान्यताएं प्रचलित हैं प्रायः सभी पर्व, व्रत, और मेलों के आयोजनों में लोकगीतों का गायन होता है। समस्त धार्मिक पर्वो, व्रतों और उत्सवों में नई ॠतुओं की सौन्दर्यानुभूति के साथ मन की उमंग, सामाजिक शुभचिन्तन समृद्धि कामना, रीति-रिवाज, परम्परा और शिक्षा का विशद समावेश रहता है। ॠतु क्रमानुसार मुख्य व्रतों और पर्वो की सूची निम्नलिखित है-

1- गनगौर 2- अख्ती 3- सावित्री व्रत 4- रक्षा बन्धन 5- कुनघुसू 6- सावन 7- नाग पंचमी 8- कजली 9- तीजा (हरतालिका) 10- गणेश जन्म 11- अनन्त चतुर्दशी 12- महालक्ष्मी 13- दशहरा 14- शरद पूर्णिमा 15- इच्छा नवमी 16- दीपावली 17- मकर संक्रान्ति,(भंवरात) 18- होली 19- बसन्त पंचमी 20- शिवरात्रि ।

इन विभिन्न पर्वो उत्सवों मेलों व्रतों के अवसरों पर गाये जाने वाली लोक गीत, भजन, कीर्तन में ही बुन्देली लोक संस्कृति सुरक्षित है आज भी सभी त्यौहार प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के अनुसार ही मनाये जाते है। इन पर्वो आदि की विस्तृत व्याख्या अध्याय एक में की गई है।

बुण्देलखण्ड का लोक जीवन त्यौहार, पर्व, मेले की दृष्टि से बड़ा धनी रहा है यहाँ के बहुत से त्यौहार ऐसे हैं जो अन्य प्रदेशों में नहीं मनाये जाते है। इन त्यौहार पर्व, मेलों के माध्यम से बुण्देलखण्ड के धार्मिक, सामाजिक तथा संस्कृति अन्तचेतना के स्वरूप के उद्घाटन तथा परम्परा का निर्वाह होता है, प्रत्येक माह में सम्पन्न होने वाले व्रत, उत्सव, त्यौहारों पर्वादि की सूची निम्नवत् है-

क्रमांक	महीना	तिथि	व्रत, त्यौहर,	पर्वप्रयोजन, प्रवृत्ति
1-	चैत्र	कृष्ण प्रतिपदा	होली	ऋतु उत्सव एवं
		शुक्ल प्रतिपदा		सांस्कृतिक परम्परा
		नवमी	नवरात्रि	अनुष्टान
		शुक्लतीज	गनगौर	सौभाग्य व्रत
		शुक्ल नवमी	रामनवीं	धार्मिक उत्सव
		पूर्णिमा	हनुमान जयंती	धार्मिक उत्सव
2-	वैशाख	शुक्ल तृतीया	अख्ती(अक्षय तृतीया)	सांस्कृतिक परम्परा
3-	ज्येष्ठ	अमावस्या	व्रत सावित्री	सौभाग्य व्रत
		शुक्ल दशमी	गंगादशहरा	धार्मिक भावना
		शुक्ल एकादशी	निर्जला एकादशी व्रत	मोक्ष कामना
4-	आषाढ़	शुक्ल एकादशी	हिरश्यना एकादशी व्रत	अनुष्टान
		पूर्णिमा	गुरू पूर्णिमा	धार्मिक भावना
5-	श्रवण	शुक्ल तृतीय	हरियाली तीज (सावनतीज)	त्यौहार
		शुक्ल पंचमी	नागपंचमी	त्यौहार
		पूर्णिमा	रक्षाबंधन	त्यौहार, सांस्कृति परम्परा
6-	भाद्रपद	कृष्ण तृतीया	कजली तीज	सौभाग्य व्रत
		कृष्ण चतुर्थी	गणेश चौथ	धार्मिक उत्सव
		कृष्ण अष्टमी	जन्माष्टमी	धार्मिक उत्सव
		शुक्ल तृतीया	हरितालिकातीज	सौभाग्य व्रत
		शुक्ल पंचमी	ऋषि पंचमी	व्रत
		शुक्ल चर्तुदशी	अनंत चर्तुदशी व्रत	पौराणिक परम्परा
7-	आश्विन	कृष्ण पक्ष	पितृ प्रारम्भ	पौराणिक परम्परा
		आमावस्या	पितृ विसर्जन	पौराणिक परम्परा
		शुक्ल प्रतिपदा नवमी	नवरात्र शारदीय	अनुष्टान
		शुक्ल दशमी	विजयदशमी	त्यौहार
		पूर्णिमा	शरद पूर्णिमा	धार्मिक उत्सव
8-	कार्तिक	कृष्ण चतुर्थ	करवाँचौथ	सौभाग्यकांक्षा हेतु व्रत
		कृष्ण त्रयोदशी	धनतेरस	धार्मिक सांस्कृतिक त्यौहार व परम्परा
		कृष्ण चतुर्दशी	नरक चौदस	धार्मिक सांस्कृतिक त्यौहार व परम्परा

		अमावस्या	दीपावली	लक्ष्मी पूजन
		शुक्ल प्रतिपदा	गोवर्धन(अन्नकोट)	कृषि सत्यता की परम्परा
		शुक्ल द्वितीया	भाई दोज	सामाजिक परम्परा
		शुक्ल नवमी	अक्षय नवमी	धार्मिक भावना
		शुक्ल एकादशी	हरियोधिगी व्रत	धार्मिक भावना
		पूर्णिमा	सम्पूर्ण पूर्ण मास	मोक्ष कामना
9–	मार्गशीष (अगहन)	कृष्ण अष्टमी	महाभैरव अष्टमी	धार्मिक भावना
10–	पौष	शुक्ल त्रयोदशी	मंकर संक्राति	धार्मिक उत्सव
11–	माद्य	शुक्ल पंचमी	बसंत पंचमी	त्यौहार
		सम्पूर्ण माद्य	माद्य स्नान	मोक्ष कामना
12–	फाल्गुन	कृष्ण चतुर्दशी	शिवरात्रि	मोक्ष कामना
		पूर्णिमा	होलिका दहन	ऋतु उत्सव एवं सांस्कृतिक परम्परा

बुण्देलखण्ड के त्यौहार, पर्व व मेले मानव जीवन के वे सुन्दर अवसर है जिनके आगमन से प्राणी मात्र अपनी आंतरिक वेदना को भूलकर सुख में नाच उठता है, स्वंम को पूर्ण रूप से भुला देता है और अपनी सारी समस्याओं को भूलकर अलौकिक आनन्द में लीन हो जाता है।'' किसी लेखक का उक्त कथन सत्य प्रतीत होता है।

भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति उदार हृदय बुण्देलखण्ड में भी अनेक प्रकार की प्राचीन नवीन लोक पद्धितियों का समन्वयात्मक रूप मिलता है इन लोक गीतों में सौन्दर्यता स्वाभाविक रूप से अभिव्यंजित होती है कोई भी अवसर हो चाहे वह जन्म, विवाह का हो, चाहे व्रत, पर्व, मेले, तीर्थ यात्रा का हो, चाहे खेतों में निराई, गुड़ाई या देवपूजन आदि सभी में अलौकिक सौन्दर्य की चर्चा की गई है। देवी के अचरी गीत कारसदेव की गोटें, हरदौल की गारी, लांगुरिया, शंकर जी व गणेश जी के भजन, राम कृष्ण परक गीत तथा कार्तिक स्नान के गीतों में भी पूजा विधान, परिधान, मान्यता, व्रत, अनुष्ठान आदि क्रियाओं में सौन्दर्य की झाँकी देखने को मिलती है।

बुण्देलखण्ड में गाये जाने वाली देवी की अचरी स्तुति परक होती है इनमें देवी के भक्त वात्सल्य, कृपा पूर्ण, सौभाग्य रूप का गायन भी अधिक होता है। देवी की शक्ति का प्रतीक मानकर उसके विभिन्न स्वरूपों दुर्गा, काली, उमा, महिषासुर आदि की उपासना में अनुष्टान व्रत, उपवास हवन आदि किये जाते है।

लांगुरिया देवी के सेवक लांगूर की 'उपासना में गाये जाने वाले भजन है हनुमान की भक्ति रूप ही देवी के लांगूर गीतों में पूज्य माना जाता है। देवी की प्रसन्नता हेतु लांगूर को प्रसन्न करने के लिये श्रृंगारिक भजनों को गाया जाता है।

	अमावस्या	दीपावली	लक्ष्मी पूजन
	शुक्ल प्रतिपदा	गोवर्धन(अन्नकोट)	कृषि सत्यता की परम्परा
	शुक्ल द्वितीया	भाई दोज	सामाजिक परम्परा
	शुक्ल नवमी	अक्षय नवमी	धार्मिक भावना
	शुक्ल एकादशी	हरियोधिगी व्रत	धार्मिक भावना
	पूर्णिमा	सम्पूर्ण पूर्ण मास	मोक्ष कामना
9– मार्गशीष (अगहन)	कृष्ण अष्टमी	महाभैरव अष्टमी	धार्मिक भावना
10– पौष	शुक्ल त्रयोदशी	मंकर संक्राति	धार्मिक उत्सव
11– माद्य	शुक्ल पंचमी	बसंत पंचमी	त्यौहार
	सम्पूर्ण माद्य	माद्य स्नान	मोक्ष कामना
12– फाल्गुन	कृष्ण चतुर्दशी	शिवरात्रि	मोक्ष कामना
	पूर्णिमा	होलिका दहन	ॠतु उत्सव एवं सांस्कृतिक परम्परा

बुण्देलखण्ड के त्यौहार, पर्व व मेले मानव जीवन के वे सुन्दर अवसर है जिनके आगमन से प्राणी मात्र अपनी आंतरिक वेदना को भूलकर सुख में नाच उठता है, स्वंम को पूर्ण रूप से भुला देता है और अपनी सारी समस्याओं को भूलकर अलौकिक आनन्द में लीन हो जाता है।'' किसी लेखक का उक्त कथन सत्य प्रतीत होता है।

भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति उदार हृदय बुण्देलखण्ड में भी अनेक प्रकार की प्राचीन नवीन लोक पद्धितियों का समन्वयात्मक रूप मिलता है इन लोक गीतों में सौन्दर्यता स्वाभाविक रूप से अभिव्यंजित होती है कोई भी अवसर हो चाहे वह जन्म, विवाह का हो, चाहे व्रत, पर्व, मेले, तीर्थ यात्रा का हो, चाहे खेतों में निराई, गुड़ाई या देवपूजन आदि सभी में अलौकिक सौन्दर्य की चर्चा की गई है। देवी के अचरी गीत कारसदेव की गोटें, हरदौल की गारी, लांगुरिया, शंकर जी व गणेश जी के भजन, राम कृष्ण परक गीत तथा कार्तिक स्नान के गीतों में भी पूजा विधान, परिधान, मान्यता, व्रत, अनुष्ठान आदि क्रियाओं में सौन्दर्य की झाँकी देखने को मिलती है।

बुण्देलखण्ड में गाये जाने वाली देवी की अचरी स्तुति परक होती है इनमें देवी के भक्त वात्सल्य, कृपा पूर्ण, सौभाग्य रूप का गायन भी अधिक होता है। देवी की शक्ति का प्रतीक मानकर उसके विभिन्न स्वरूपों दुर्गा, काली, उमा, महिषासुर आदि की उपासना में अनुष्टान व्रत, उपवास हवन आदि किये जाते है।

लांगुरिया देवी के सेवक लांगूर की उपासना में गाये जाने वाले भजन है हनुमान की भक्ति रूप ही देवी के लांगूर गीतों में पूज्य माना जाता है। देवी की प्रसन्नता हेतु लांगूर को प्रसन्न करने के लिये श्रृंगारिक भजनों को गाया जाता है।

कार्तिक स्नान के गीतों में बुन्देली नारियों की कृष्ण के प्रति गोपियों जैसी अनंन प्रेम प्रदर्शित हुयी है। इन गीतों का विशाल भण्डार है, यहाँ प्रकृति पूजा सूर्य, चंद्र, नदी, वृक्ष, तीर्थ में सैन्धव एवं वैदिक युगीन भक्ति का समंन्यव्य दृष्टिगोचर होता है। इन गीतों में अंधविश्वास एवं महान श्रद्धा निहित है।मामुलिया, सुआटा, टेसू, झिझियां, आदि क्रीड़ा गीतों में परम्परागत सौन्दर्य एवं अंध विश्वास परलक्षित हुआ है परन्तु इन गीतों में सौन्दर्य के साथ सांस्कृतिक धार्मिक भावना परिपूर्ण तैयार बालसुलभ उन्मुक्तता, कौमार्य की उमंगित भावनाऐं ही अधिक दृष्टिगोचर हुयी है। इन गीतों का माधुर्य अनुठा है।

संस्कार गीत राम कृष्ण के प्रतीक के रूप में गाये जाते है इन गीतों में कृष्ण की अपेक्षा राम के आदर्श जीवन की व्याख्या अधिक है।' इनमें प्रत्येक को माँ कौशल्या, यशोदा और पुत्र राम-कृष्ण के प्रतीक रूप में वर्णित है। पर्व व्रत मेले गीतों के अन्तर्गत निश्चित तिथियों पर निदिष्ट देवताओं की उपासना का महत्व है इन गीतों में परम ब्रह्मम को तात्तविक विवेचना का आभाव है। शुभ चिन्तन, समृद्धि कामना, चिरसौभाग्याकांक्षा से प्रेरित व्रत, पर्व सम्बन्धी गीतों में सकाम अनुष्टानों की सांस्कृतिक परम्परा, धार्मिक विश्वास, मोक्ष कामना सन्निहित है।

धार्मिक गीतों में सगुण निर्गुण रहस्यवादी भजनों का समावेश है। जिसमें मानव मन को उपदेश नीति, वचन और दृष्टांतों द्वारा चेतावनी दी गई है। ईश्वर के प्रति सर्मपण भावना मुख्य रूप से अभिव्यंजित हुई है। सारांश यह है कि बुन्देली जन मानस ने सभी सम्प्रदायों के इष्ट देवों को अपना ईश्वर मानकर उनके सभी रूपों को तनमयता और अटूट श्रद्धाभाव से भक्ति की है।

2. इतिहास वृत्त,जाति गौरव, रीति-नीति परक संस्कृति

2.1 इतिहास वृत्त

सीमाक्षेत्रः

बुण्देलखण्ड का भूभाग 21.26 से 26.58 उत्तरीय आक्षांश तथा 46.51 से 81.56 पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। समुद्रतट से इस भूभाग की अधिकतम ऊँचाई 1352 मीटर तथा न्यूनतम ऊँचाई 152 मीटर है। उत्तर से दक्षिण तक अधिकतम लंबाई 580 किलोमीटर लगभग पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 450 किलोमीटर के लगभग है। यहाँ की राजनैतिक सीमायें विभिन्न शासकों की नीतियों के कारण सदैव परिवर्तित होतीं रहीं है। प्राकृतिक दृष्टि से पूर्व में टोंस और सोन नदियाँ, पश्चिम मे वेतवा, सिन्ध और चम्बल नदियाँ उत्तर में यमुना और गंगा नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा और मालवा आदि नदियाँ इसकी सीमा बनाती है इसकी भाषात्मक सीमायें कई प्रान्तों की भाषाओं के मिश्रण से निर्मित है इसके पूर्व में हिन्दी, अवधि, छत्तीसगढ़, उत्तर में पश्चिमी हिन्दी ब्रज और कन्नौज, दक्षिण में मराठी तथा पश्चिम में राजस्थानी, मालवी भाषाओं से प्रमाणित बुन्देली बोली जाती है। बुण्देलखण्ड के उत्तरी प्रदेश को झाँसी, हमीरपुर, जालौन बाँदा तथा ललितपुर जिले आते हैं। इसके अतिरिक्त ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी, गुना, विदिशा, जबलपुर, सिवनी, नरसिंहपुर, छिन्दवाडा, मंड़ला, बालाघाट, रायसेन, होसंगाबाद, बैतुल आदि भाग है। बुण्देलखण्ड को पहाड़ों का प्रदेश कहा

जाता है। यहाँ विंध्यानचल, पन्ना का पहाड़, भाण्डेर पहाड़ तथा तैमूर पर्वत श्रेणियाँ प्रमुख है। बनों में साल, सागौन, तेन्दु, महुआ, खैर, बाँस, इमली, आम, ताड़, खजूर, बबूल, पेड़ आचार, बेर, समेर, सलैया, जामुन, बेल, पीपल, शीशम आदि के वृक्ष पाये जाते है आर्थिक दृष्टि से इन वनों का बहुत महत्व है। बुन्देलखण्ड में तीनों ऋतुयें अच्छी होने से फसलें अच्छी होती है। यहाँ खरीफ की फसल के अन्तर्गत धान, सरसों, उड़द, मूँग, मौठ, बाजरा आदि तथा रवी के अन्तर्गत हरी सब्जियाँ यहाँ का मुख्य धन्धा कृषि व पशु पालन ही है। मसाले, फलफूल आदि की पैदावर भी अच्छी होती है।

बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल लगभग 1,28,000 वर्गमीटर है, जिसमें से उत्तर प्रदेश के जिलों का क्षेत्रफल 29,459 वर्ग किलोमीटर है, 1991 की जनगणना के अनुसार बुन्देलखण्ड की जनसंख्या है।

प्राचीनकाल में बुन्देलखण्ड रामायण काल के पूर्व से बौद्धयुग तक भारत के 16 जनपदों में से एक ''चेदि'' नाम से विख्यात था। चेदिजनपद का अत्याधिक महत्व महाभारत काल में भी रहा क्योंकि चेदि नरेश शिशुपाल ने कौरवों की ओर से कृष्ण के विरूद्ध युद्ध लड़ा था। चेदि जनपद व चेदि राज्य के शासक और निवासी ही प्राचीन बुन्देलखण्ड के शासक प्रजाजन है। ई0 पू0 243 के लगभग जबलपुर के पास सेवर में भी चेदि शासन था। मौर्यकाल में बुन्देलखण्ड कौशाम्बी प्रान्त में था। मौर्य शासकों में चन्द्रगुप्त, बिन्दुसागर और अशोक प्रमुख थे। अशोक ने बुन्देलखण्ड में मठों और बिहारों का निर्माण कराया था जिसके अवशेष यहाँ आज भी मिलते हैं। मौर्यो के पश्चात शुंग राजाओं ने 36 साल बुन्देलखण्ड पर राज्य किया। वाकाटकों के प्रबल राजा विन्ध्यशक्ति ने सन् 225 में एवं गुप्तकाल के समुद्रगुप्त ने 6, ई0 में बुन्देलखण्ड पर शासन किया। गुप्तकालीन वैभवपूर्ण बुन्देलखण्ड में लगभग इसी समय से प्रभावशाली कलचुरी शासकों का प्रादुर्भाव हुआ। स्कन्दगुप्त के समय हूण के आक्रमण भी प्रारम्भ हो गये थे। 40 वर्षो तक हूणों के राज्य करने के उपरान्त यशोवर्धन ने उन्हें परास्त किया। यशोवर्धन के पश्चात् हर्ष के समय में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड वैभवशाली राज्य बना। जिसका वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने बड़े विस्तार से किया है। हर्ष के पश्चात (सन् 674 से 1200 ई0 तक) बुन्देलखण्ड पर कलचुरियों और चन्देलों का विशेष प्रभुत्व रहा। अतः चन्देलकाल से पूर्वकलचुरी शासकों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। कलचुरी वंश के संस्थापक महाराज कोवकल जबलपुर के पास त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया, अतएव यह वंश ''त्रिपुरी'' के कलचुरी से भी विख्यात है। प्राचीन काल में नर्मदा के शीर्ष स्थानीय प्रदेश का विस्तृत भू-भाग चेदि जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। मध्यकाल में इसे ही डहाल कहा जाने लगा। कोवकल देव ने वीरता तथा बुद्धिमानी से चन्देलों की बढ़ती हुई ताकत से तुरन्त लाभ उठाने हेतु चन्देल राजकुमारी से विवाह किया। उसके बाद उसके पुत्र मुग्धतुंग ने राज्य विस्तार किया एवं अन्य सत्रह पुत्रों ने रजबाड़े बनाये। रत्नपुर के कलचुरी इन्हीं से सम्बद्ध हैं। मुग्धतुंग के बाद युवराज देव का उल्लेख मिलता है। अलबरूनी में डहाल, उसकी राजधानी तीसरी और राजा गांगेयदेव का वर्णन किया है। गांगेयदेव के पुत्र कर्णदेव (1042 से 1073) ने पूर्व में हुगली, उत्तर में अन्तवेर्द दक्षिणा में महानदी वेणगंगा, ताप्ती तक साम्राज्य बढ़ाया। पर उसके पुत्र और नाती यशकर्ण चन्देलों की बढ़ती शक्ति के कारण राज्य सुरक्षित न रख पाये और कलचुरी के अन्तिम शासको क्रमशः नरसिंह जयसिंह और वियज सिंह को देवगिरि के राजा ने 1200 ई0 में अपने अधीन कर लिया।

2.1.1. चंदेल काल

हर्षवर्धन के उपरान्त बुण्देलखण्ड के धसान नदी के पूर्व और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तरपश्चिम में बुन्देलों का शासन उत्तर में यमुना नदी और दक्षिण में केन नदी तक फैला हुआ था। बुण्देलखण्ड के संस्थापक नानुकदेव थे। नन्नुक के पौत्र जेजा अथवा जयशक्ति थे जिसके नाम पर चन्देलों के राज्य का नाम जैजाक भुक्ति पड़ा। इस काल का महत्वपूर्ण शासक यशोवर्धन था उसने चेदियों, मालवों कौशलों आदि पड़ौसी राज्य को जीतकर कालिंजर के दुर्ग को जीता और महोबा को अपनी राजधानी बनाया। महमूद गजनवी, बंगाल के पाल नरेश, एवं परमार, गौड़ नरेशों ने भी चन्देल राज्य पर आक्रमण किये। धंग, गंड, विद्याधर और कीर्तिवर्मा चन्देलवंश के विशेष उल्लेखनीय राजा थे। कीर्तिवर्मा और मदन वर्मा के समय में बुण्देलखण्ड का विस्तार पश्चिम की ओर ग्वालियर राज्य को पश्चिमी सीमा में लांघकर राजपूताना तक, पूर्व में काशी तक तथा दक्षिण में मालवा तक फैल गया था। अन्तिम शासक परमर्दिदेव था। उसी के आश्रय में बुण्देलखण्ड के दो वीर योद्धा आल्हा-ऊदल रहते थे। सन् 1182-83 में सिरसागढ़ में पृथ्वीराज चौहान और चन्देलों का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। चौहान ने कालिंजर को लूट लिया जिसे चन्देलों ने पुनः 1201 में अपने अधिकार में कर लिया परन्तु 1203 में कुतुबुद्दीन ऐवक ने इसे जीत लिया। सन् 800 के आसपास से सन् 1390 तक 25 चन्देल शासकों ने बुण्देलखण्ड पर राज्य किया। चन्देलकालीन बुण्देलखण्ड में वास्तुकला, मूर्तिकला का विकास हुआ तथा खजुराहो, आजमगढ़, कालिंजर किले को अपने अधीन करने हेतु सभी मुस्लिम शासक प्रयत्नशील रहे। इब्राहीम लोदी के शासनकाल में अफगान सरदार उससे असन्तुष्ट थे। फलतः जौनपुर और बिहार में अफगानों ने क्रमशः सरदार नादिर खां लोहानी एवं दरिया खां और आलम खां भी इब्राहीम के विरूद्ध हो गये थें। इब्राहीम लोदी के बाद बाबर ने अफगानों को घाघरा के युद्ध में परास्त किया । यहीं से मुगलों का शासन प्रारम्भ होता है। सन् 1021 में महमूद गजनवी ने बुण्देलखण्ड में पहला आक्रमण किया और कालिंजर किले पर अधिकार कर लिया । मुगल शासक बाबर ने अफगानों को परास्त किया था परन्तु अफगानों की शक्ति समूल नष्ट नहीं हुई थी। बिहार में अफगान सरदार शेरखां अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। इन समस्त आक्रमणों का प्रभाव बुण्देलखण्ड पर भी पड़ा और बाबर के पुत्र हुमायूँ ने बुण्देलखण्ड के कालिंजर किले पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। 1532 में अफगान परास्त हुए लेकिन 1536 में शेर खां ने बिहार, बंगाल, को जीतकर गौडौं पर अपना अधिकार कर लिया। चौसा के युद्ध में भी अफगान विजयी हुए और 1540 में कन्नौज पर उन्होंने अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार अफगानों ने मुगलों के विरूद्ध राष्ट्रीय युद्ध छेड़ दिया और 1542 के लगभग अफगानों की सत्ता फिर से स्थापित हुई। सन् 1544 में शेरशाह ने कालिंजर के किले पर कीर्तिसिंह के समय आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। सन् 1545 में शेर खां की मृत्यु के पश्चात हुमायूँ ने पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। अकबर के शासनकाल 1564 में गौड़वाना की रानी दुर्गावती पर आसफ खां ने आक्रमण किया और क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। 1568 में अकबर ने कालिंजर दुर्ग को अधिकृत किया। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी कालिंजर दुर्ग को अपने अधीन रखा। औरंगजेब के समय में बुन्देले अपनी शक्ति बढ़ा चुके थे लेकिन बुन्देला शासकों के पूर्व बुण्देलखण्ड पर गौड शासकों का राज्य रहा । इनमें सबसे शक्तिशाली रानी दुर्गावती रही है। सन् 1633 में बुन्देला राजा जुझार सिंह ने गौड राजा प्रेम शाह के चौरागढ़ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में लिया है। अन्तिम गौड शासक शंकर सहाय और रघुनाथ सहाय हुये, बुण्देलखण्ड

पर अफगान और गौडों का राज्य बहुत समय तक ही रहा । मुगल लम्बे अरसे से अकबर के शासनकाल से लेकर औरंगजेब के शासनकाल तक बुण्देलखण्ड की राजनीति में छायें रहे। मुगलों से बुन्देलों का भी निरन्तर विरोध चलता रहा फिर भी वे बुण्देलखण्ड को मुगलों से नहीं बचा सके और बुण्देलखण्ड विभिन्न सूबेदारों द्वारा शासित होता रहा। महमूद गजनवी के बाद वि0 सं0 1304 में नसीरूद्दीन, वि0 सं0 1407 में फिरोज तुगलक वि0 सं0 1447 में नसीरूद्दीन महमूद तथा वि0सं0 1555 में सिकन्दर लोधी ने कालिंजर किले पर अधिपत्य किया। और बुण्देलखण्ड पर राज्य किया इसके बाद बुण्देलखण्ड के होशंगावाद और कालपी राज्य पर बहलोंल लोधी तथा चंदेरी पर महमूद शाह ने राज्य किया। बहलोंल लोधी के पश्चात सिकन्दर का आक्रमण हुआ । इसने अपने भतीजें अजीम हुमायूँ से कालपी लेली और उसे मोहम्मद खां लोधी को दे दिया। यहाँ से यह ग्वालियर की ओर वि0सं0 1547 में आया। इस समय भी मानसिंह तौमर का राज्य था।

2.1.2. बुन्देला काल

बुन्देला हेमकरन ने सन् 1055 से 1071 तक उत्तरी भारत पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया। उनके बाद उनके पुत्र वीरभद्र ने अफगान तातारखां को परास्त कर कालपी बुन्देल राज्य में मिलाकर बुन्देल राजवंश की स्थापना की परन्तु इस वंश के सोहनपाल बुन्देला शासन के सही संस्थापक माने गये है। इनके पश्चात पृथ्वीराज, रामचन्द्र, मेदनीमल, अर्जुनदेव आदि ने वि0सं01494 से 1525 तक बुन्देला राज्य की स्थापना की। तदुपरान्त मलखान सिंह ने वि0सं0 1525 से 1558 तक यहाँ राज्य किया और ओरछा अपनी राजधानी बनाई। मलखान सिंह के बाद रूद्रप्रताप (सन् 1501, मधुकरशाह) सन् 1554 बुण्देलखण्ड के शासक बनें। इनके बाद राम सहाय शासक बने पर अक्षम रहे और वीरसिंह देव को शहजादे सलीम ने बुण्देलखण्ड का शासक बनाया। अकबर के समय वीरसिंह देव ने वि0 सं0 1664 ओरछा पर अधिकार किया। इस प्रकार जहांगीर के समय में प्राप्त बुण्देलखण्ड राज्य को शाहजहां के समय में वीरसिंह देव ने स्वतन्त्र घोषित कर दिया। बुन्देलों के छापामार रणकौशल के सामने अकबर, जहांगीर और शाहजहां इनके बढ़ते साम्राज्य को दवाने में असफल रहें। वीरसिंह देव के उपरान्त इनके बड़े पुत्र जुझार सिंह को गद्दी दी गई एवं भाइयों को जागीरें दी गई। इनमें पहाड़ सिंह को एरच, नहरदास को धामौनी, तुलसीदास को गढ़, वेनीदास को जैतपुर, कोंच, किशुनसिंह को देवराहा, वाघराज को गरौली और माधवसिंह को खरगापुर जागीर में दिये गये। परमानन्द को कोई जागीर नहीं दी गई और वे ओरछा में ही रहे दीवान हरदौल जागीर रहते हुये भी ओरछा में रहे। जुझार सिंह के बाद देवीसिंह, पहाड़ सिंह शासक रहे पर वे असफल रहे। औरंगजेब के समय पन्ना के चम्पतराय को ओरछा से जमुना तक की जागीर मिली। पर निरन्तर बुण्देलखण्ड को स्वतन्त्र करने में प्रत्यनशील रहे। इसके बाद छत्रसाल ने औरंगजेब के दवाव के बाद भी मैहरवाबा, कालिंजर, सागर तथा भेलसा पर अपना अधिकार कर लिया। इनके समय में मराठों की शक्ति भी बढ़ रही थी। छत्रसाल के पश्चात बुण्देलखण्ड के तीन भाग हुए - प्रथम भाग पन्ना, मऊ, गढ़ाकोट, कालिंजर, शाहगढ़ हृदयशाह को, द्वितीय भाग जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़ और बाँदा जगतराम को तृतीय भाग कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसरायं, झांसी, गुना, गढ़ा कोटा और सागर बाजीराव पेशवा को मिली। बुन्देला राजाओं के गृहकलह के परिणामस्वरूप मराठों ने बुण्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया परन्तु हिम्मत बहादुर के सहयोग से अंग्रेजों और मराठों के बीच युद्ध हुआ परन्तु वि0 सं0 1875 तक बुण्देलखण्ड अंग्रेजी राज्य से मिला लिया गया।

2.1.3. आधुनिक काल

वि0 सं0 1877 बुन्देलखण्ड कमिश्नरी का निर्माण हुआ। वि0 सं0 1892 में जालौन, हमीरपुर, बाँदा के जिलों पश्चिम उत्तर प्रदेश में और सागर मध्य प्रदेश में मिला दिया गया जिसकी देखरेख आगरा से होती थी। वि0सं0 1906 में सागर, दमोह, जिलों को मिलाकर एक कमिश्नरी बना दी गयी। जिसकी देखरेख झाँसी से होती थी। कुछ दिनों बाद कमिश्नरी का कार्यलय से झाँसी से नौगांव आ गया। वि0 सं0 1899-1900 में सागर, दमोह जिलों में अंग्रेजों के खिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन हुआ किन्तु उन्होंने फूट डालने की नीति का आश्रय लेकर शीघ्र ही शान्ति की स्थापना कर ली । बुन्देलखण्ड भारत के मध्य स्थित होने के कारण परिणाम स्वरूप समूचे देश में विदेशी सत्ता की स्थापना की सुनिश्चतता के बाद ही विदेशी आक्रमणकारी वहाँ पहुँचने में सफल हो सके थे। सन् 1905 लार्ड डलहौजी के अंग्रेजी राज्य के गर्वनर बनते ही पुनः राज्य विद्रोह हुये और बुन्देलखण्ड में झांसी की रानी को हटाने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये। रानी ने उत्तरी बुन्देलखण्ड के विद्रोह को दबाया परन्तु दक्षिणी बुन्देलखण्ड में सागर, दमोह, जबलपुर, बानपुर, खुरई और चंदेरी के विद्रोह भयंकर थें । अतः असफल रही। झांसी और कालपी के युद्ध में रानी और तात्या ने अंग्रेजों से टक्कर ली लेकिन अंग्रेज सफल हो गये। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड अंग्रेजों के अधीन हो गया परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के समय बुन्देलखण्ड वासियों ने पुनः रामप्रसाद विस्मिल श्चीन्द्र नाथ सान्याल तथा योगेश चटर्जी के क्रांतिकारी नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन छेड़ दिया। इस समय झांसी की परमानन्द जी, कतारसिंह, विष्णु गणेश पिगलें, दतिया के दीवान नाहर सिंह, खनियाधानां के खलक सिंह जू देव, सागर के वासुदेव राव सूबेदार आदि व्यक्तियों ने अंग्रेजी शासक को एक बार फिर कम्पित कर दिया। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बुन्देलखण्ड वासियों की अविस्मरणीयं भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

2.1.4. सांस्कृतिक महत्व

प्रकृति ने अपना अति सौन्दर्य बिखेरकर मानव के आल्हाद और अवसाद में निरन्तर साँझा बटाया है। सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत विदेशों में भी सांस्कृतिक वैभव के कारण प्रसिद्ध है। यहाँ की भूमि आर्य सभ्यता के आगमन से पूर्व अनीय कालीन संस्कृति के प्राचीनतम रूपों की क्रीड़ा भूमि रही है। यहाँ का प्रत्येक जनपद अपनी निजी विशेषताओं व संस्कृति के कारण अपना अलग महत्व रखता है किन्तु बुन्देलखण्ड जनपद- भारत के मध्य में स्थित होने के कारण व सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण प्रमुख स्थान रखता है।

भारद्धाज, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों के आश्रम बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ही थे। रामायण के वर्णन के अनुसार बाल्मीक, मीड़ा शरमंग सुतीक्ष्ण तथा अगस्त ऋृपियों के आश्रम इसी प्रदेश में प्राप्त होते हैं। बुन्देलखण्ड मर्यादा पुरूषोत्म राम के समय में दण्डाकारय का भाग था। भगवान राम यमुना को पार करके चित्रकूट में आकर रहे। इसकी पुष्टि निम्न दोहे से भी हो जाती है।

चित्रकूट में राम रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परत है सौ आवत यदि देस।।

भवभूति के उत्तर रामचरित्र में बाल्मीकि आश्रम के निकट मुरला, नर्मदा व तमसा, टौंस नदियों का वर्णन किया है। वास्तव में बुन्देलखण्ड की तपस्थल ने ऋषि मुनियों के अपार ज्ञान कोष को संग्रह कर सारे देश में प्रकाशित किया। अतः आर्यों-अनार्यों की संस्कृति का संगम स्थल यही बुन्देलखण्ड रहा है। अठारह पुराणों और महाभारत के रचियता कृष्ण द्वपायन वेदव्यास की जन्मभूमि कालपी थी जिसका पौराणिक नाम कालीप्रिय था। महर्षि सन्दीपनिका आश्रम इसी भू-भूगा में था। निषिध देश के राजा जल की राजधानी नलपुर में थी जो अब नरवर कहलाता है। शिशुपाल की राजधानी चन्देरी प्रदेश के मध्यभाग में स्थित है। कौशाम्बी में भगवान बुद्ध ने बहुत समय तक निवास किया था तथा मौर्यकाल में सागर जिलों के ऐरन नगर को समुद्रगुप्त ने अपना प्रमुख केन्द्र बनाया था।

बुन्देलखण्ड प्राचीन समय से ही धर्म प्रधान देश रहा है। यहाँ ओरछा के ऐतिहासिक महल के प्रत्येक आँगन में जिसे महाराजा वीरसिंह जू देव प्रथम ने सम्राट जहाँगीर के काल में बनवाया था, तुलसी का पौधा लगाने के लिए बहुत से तुलसीघर बनें है । ये महल के स्वामी की धर्म परायणता के द्योतक है। यह युग भारत में भागवत धर्म के प्रतिष्ठित कृष्ण भक्ति का युग था। तभी से बराबर राधाकृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित होती रही हैं। इससे पूर्व विष्णु व शिव की उपासना की प्रधानता थी। खजराहो तथा देवगढ़ इसी युग के स्मारक है। इससे भी पूर्व शताब्दियों से लेकर अब तक हमें बुन्देलखण्ड के एक धर्मप्रिय जनपद का इतिहास मिलता है। सनक, सनन्दन संतकुमार का सनकुआ, चित्रकूट के शैलशिखर, पुरातन कुण्ड तथा सरितायें उसी के प्रतीक रूप है।

बुन्देलखण्ड जनपद में धर्म का स्थान विश्वास, परम्परागत रूढ़िवाद तथा धर्म के अधिकारी वर्गो द्वारा प्रसारित भावनाओं तक सीमित हो गया है। पुरातन काल के मन्दिर और मठों के भग्नावेश आज भी बुन्देलखण्ड की प्राचीन संस्कृति व गौरव गाथाओं को सत्यापित करते है।

ग्रहण को यहाँ के लोग बहुत भयंकर आपदा मानते है। खाने के वस्तुओं को ढक देते हैं जल में कुश तथा भोजन व अनाजों में तुलसीपत्र डालते हैं। ग्रहण के आरम्भ होने से समाप्ति तक भोजन नहीं करते । ग्रहण के समाप्त होने पर बसौर, मेहतर, गहन को दान देऔ महराज" के गगन भेदी नारे लगाकर ग्रहण दान एकत्रित करते हैं। इस अवसर पर तुलादान करने की प्रथा भी इस प्रान्त में प्राचीन समय से प्रचलित है।

इस बुन्देलखण्ड प्रान्त में उपवास स्त्रियों में बहुत रखा जाता है रविवार से शनिवार तक सभी वारों का कोई न कोई व्रत होता है। एकादशी विशेषकर निर्जिला ग्रीष्मकाल में बहुत ही कष्टप्रद होती है। व्यक्तियों का पूर्ण विश्वास ही इस संयम को पूरा करने में सफल होता है। चतुर्यमास या लौदमास में भागवद् का सप्ताह भी स्त्रियाँ उपवास करके सुनती हैं। भूत-प्रेत, स्वर्ग-नरक, आवागमन आदि में यहाँ की अनपढ़ जनता का खूब विश्वास है। यही कारण है कि यहाँ के अधिकांश निवासी छल-प्रपंच, झूठ आदि से दूर सीधे साधे व ईश्वर आस्था में अटूट विश्वास रखने वाले है। अतिथि सत्कार को विशेष महत्व दिया जाता है । लोगों का यही विश्वास रहता है न जाने किस भेष में नारायण मिल जायें।

शताब्दियों से यहाँ की निम्न जातियाँ आकार-हीन पत्थरों, वृक्षों और पशुओं को पूजती आ रहीं हैं तथा अब भी पूजती हैं। पीपल, नीम, वट, अक्षयवृक्ष आदि मुख्य रूप से पूजे जाते हैं। बहुत

से आदमियों के सिर डौगरबाबा, खाती-बाबा आदि आते है। शराब पीकर यह लोग खूब कूदने फांदते लगते हैं। लोग इन पर नारियल फोड़ते है तथा ये लोग जिसके सिर देवता आते हैं। देवताओं की वाणी में इधर उधर इकट्ठे लोगों के प्रश्नों का उत्तर देते हैं लोग उन पर विश्वास भी करते हैं। पूजा अर्चना की इन विविध विधियों में आर्य और अनार्य दोनों संस्कृति के दर्शन होते है।

दीपावली पर घर-घर दीपक जलाये जाते है लक्ष्मी की मूर्ति बनाकर पूजा होती है व रात्रि में गोपाल सहस्त्रनाम का पाठ किया जाता है। तथा दिवारी गीत गाने की भी प्रथा प्रचलित है। कृष्ण अष्टमी व शिवरात्रि पर लोग उपवास करते व रात्रि जागरण करते है। कृष्ण अष्टमी को अर्द्ध रात्रि के समय ककड़ी या खीरा काटकर काल्पनिक नाल काटने की प्रथा प्रचलित है। इसके अतिरिक्त राम-नवमी, जानकी-नवमी, राधा अष्टमी अक्षय तृतीया, इच्छा नौमी आदि भी मनाई जाती है। होली यहाँ का सार्वजनिक त्यौहार है। ग्रामीण और निम्न जाति के लोग रातभर जागकर कोंमड़ी होली के गीत गाते है। गुलाल रंग व कीचड़ का खूव प्रयोग होता है। दशहरे पर मछली व नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है। कार्तिक में स्त्रियाँ सुबह चार बजे उठकर तालाबों पर स्नान हेतु जातीं हैं। इस प्रकार के भ्रमण से शीत की प्रभातकालीन वायु स्वास्थ्य वर्धक होती है। तथा गाँव व नगर के निकटवर्ती स्थानों का परिचय भी हो जाता है।

बुण्देलखण्ड का पहनावा अत्यंत सादा है। लोग प्रायः घुटनों तक धोती पहनतें है । शरीर पर आधी वाहों वाली वण्डी । अंगरखी । पहनते हैं। कंधे पर साफिया या पिछोरा तथा सिर पर अंगोछा या साफा बाँधते हैं। धोती या पंचा के ऊपर यहाँ के निवासी पुराने ढंग का तनीदार कुरता पहनते है, पैरों में चमडे की बनी पनहियाँ (देशी जूता) पहनते है। यहाँ का रजवाड़ी रिवाज घुटनों तक अंगरखा या मिरजई, पाँव में सरई तथा सिर पर पगड़ी बांधने का था, किन्तु अब कुछ समय से पगड़ी के स्थान साफा तथा मिरजई के स्थान पर कोट और कमीज पहनने लगे हैं। आज कल नई सभ्यता के साथ कुरता, पायजामा, कमीज और टी शर्ट का प्रचलन भी तेजी के साथ गाँव तक पहुँच रहा है।

स्त्रियाँ सामान्यतः लंहगा, जम्फर, पोलका, लुंगरा और औढ़नी का प्रयोग करतीं हैं। लाल रंग में रंगी हुई धोती पहनने का यहाँ बड़ा प्रचलन है। तेजी से मूल्यों के बदलने के कारण इस युग में लोक संस्कृति पर भी मुलावे की चादर चढ़ती चली जावे तो कोई आश्चर्य नहीं । यहाँ पाँच पाँच सेर के मोटे पैज़ना नारियों के पैरों से देखते देखते विदा हो गये तथा उनका स्थान पतली पायल ने ले लिया। एक ओर जहाँ अंग्रेजी हटाओ का नारा बुलन्द है तो दूसरी और काला अक्षर भैंस बराबर । आने जाने वाले लोग भी अपने घरों में दद्दा को पापा कहलाने में गर्व का अनुभव करने लगे । संस्कृति व सभ्यता में परिवर्तन भले ही होता रहे पर प्रत्येक प्रान्त की संस्कृति की जो अपनी विशेषतायें होती हैं। उनकी कुछ-कुछ छाप तो शेष रह ही जाती है।

2.2. जाति गौरव

भारत में आर्यों के पूर्व आदिम जातियाँ थी। "वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात आर्यो और भारत की आदिवासी जीतियों के परस्पर विरोधी रूप रंग के आधार पर हुआ । बुण्देलखण्ड में भी आर्य-अनार्य संस्कृति के सम्मिश्रण से प्रभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों की संख्या प्रर्याप्त है। ब्राह्मणों में सनाढ़्य, कन्नौजिया, जुझौतिया तथा सखरिया, क्षत्रियों में - बुन्देल, चंदेल,

चौहान, पवार, परमार, सोलंकी, सैंगर, तोमर, राजपूत, रघुवंशी आदि वैश्यों में - अग्रवाल, गहोई, ओमरे, पवार, शूद्रों तथा अन्य जातीयों में - अहीर, चमार, कोरी, भंगी, कुर्मी, काछी, लोधी, कुम्हार, केवट, बसोर, माली, धोबी, ढीमर, नाई, सुनार, धोबी, आदि जातियाँ इस प्रदेश में निवास करती है। ईसाई और मुसलमानों के अतिरिक्त गौड़, भोई, सोर, कोल तथा किरार आदि आदिवासी जातियाँ भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। ये सभी जातियाँ अपनी आजीविका हेतु समुचित व्यवसायों को अपनायें हुए हैं।

लोक काव्य का जाति के आधार पर भी एक वर्गीकरण दिखाई देता है। विशेष जाति विशेष प्रकार का लोक काव्य प्रयोग करती है। उनका एक विशेष राग, लय तथा विशेष प्रकार के वाद्य यंत्र भी होते है। उदाहरणार्थ भदौरियाउ फागों में केवल ढ़ोलक झाँझ बजती है। कछया राग में काछी लोग केवल खंजरी वाद्य यंत्र के साथ गायन करते है। इनका वर्णन आवश्यकता अनुसार पहले भी कर चुके हैं। ढ़ीमर जाती से ढ़िमरया राग, काछियों का काछया राग, धोबियों का धुबया राग, चमार जाति का चमरया राग, कोरी जाति का कुरया राग, कहकर समाज में पुकारा जाता है।

लोक काव्य के प्रयोग में एक विशेष बात शोध करने पर सिद्ध हुयी है कि समाज में इनका प्रयोग करने वाले अधिकांश निर्धन वर्ग व हरिजन जातियाँ है।अन्य जातियों से इनका प्रचार प्रारम्भ से ही कम रहा है। यह जातियाँ परम्परागत रूप से इसको सुरक्षित रख सकने में समर्थ रहा है। उदाहरणार्थ धोबी जाति के एक लोक काव्य का दिग्दर्शन कीजिये-

करम कौ डंडा फांस फसीलौ नर तन बीच,
अड़ो दइया।
सुन ले मोरे ओ भइया।
माया जाल की फांस कठिन जा
तन में लगी रहे दइया
सुन लै मोरे ओ भईया
बिना गुरू की फांस न इच है
कोटन जतन करौ दइया
सुन लै ओ मोरे भइया
सतगुर मिल गये फांस निकर गई
खिल खिल जी हो गओ दइया
अलख राग गारी में गावें
समझ लेव तुम समझइया।
सुन लै ओ मोरे भइया।।

प्रस्तुत लोक काव्य में उपदेश परक वेदान्त का सुन्दर व सरल काव्य लोक शैली में प्रवाहित है। संत कबीर ने भी इसी प्रकार कहा है।

बूड़े थे पर ऊवरे, गुरू की लहर चमंक।
मेरा देखा जर जरा, उतर परे फरेंक।।

वास्तव में सांसारिक कष्ट सागर से पार लगाने वाले गुरु ही हैं। धोबी राग में यही बात सरल लोक काव्य में वर्णित हैं। इसी तारतम्य में एक कोरी लोक काव्य भी रसास्वादन कीजियेः-

ई वन में रहो न जाय, मुरलिया तो धुन सुन खें,
भाई गधरी मोही कुडरी मोही धुन खें,
मेही कुआँ भरत पनहार, मुरलिया तो धुन सुन खें,
ई वन में रहो न जाये ।।
भाई रे गंगा मोही जमुना मोही धुन सुन खें
उनके शीत वह रयें बढ़िया नीर
मुरलिया की धुन सुन खें
ई वन में रहो न जाय मुरलिया की धुन सुन खें
भाई रे गैल चलत गैलारे मोहे धुन सुन खें
अरे गउयें चरावत मोहे ग्वाल-मुरलिया।।
ई वन में रहो न जाय। मुरलिया की धुन सुन खें
भाई रे चंद्र सखी राधा कौ झगरो
धुन सुन खें।
श्री कृष्ण लगावें बेड़ा पार
मुरलिया की धुन सुन खें
ई वन में रहो न जाय,
मुरलिया की धुन सुन खें।।

इन जातीय गीतों में सामाजिक व धार्मिक लोक काव्य का बाहुल्य है जातिय लोक काव्य में धार्मिक, वेदान्त भक्ति के लोक काव्य का प्रभाव है। इसी प्रकार चमार राग का उदाहरण देखियेः-

चलत प्रान कैसी रोई काया तो-
चलत प्रान कैसी रोई
तुमें न रोई हरि अपनई खों रोई
हमरी कौन गत होई मोरे लाल।
सास ससुर की आशा कर लेव
छोड़ों आस हमारी मोरे लाल।
मतलब के सब साथी मोरे लाल
जेठ जिठानी आशा कर लेव
छोड़ों आस हमारी मोरे लाल।
जेठ जिठानी कोइ काम न आहें
मतलब के सब साथी मोरे लाल
देवर देवरानी कोऊ काम न आहें
हैं मतलब के सब साथी मोरे लाल ।।

जनपद में ढ़ीमर (रायकवार) भी एक जाति रहती है। उसका लोक काव्य भी विचित्र है। यह जाति मल्लाह या केवट जाति के समकक्ष है। इस जाति का एक लोक काव्य प्रस्तुत है-

सदा भुमानी दायनी सनमुख रात गनेश
तीन देव रक्षा करें विरमा विशुन महेश
डबिया में के शालिगराम
बोलते काय नैयां।
बोलतें काय नैंया।
सपरत काय नैंया।
डविया में के शालिगराम
सपरत काय नैंया
डबिया में के-ऐ-अहां हां-एक
अहां हां-2, अहां हां-तीन।''

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि लोक काव्य के वर्गीकरण में जातिय लोक काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इस लोक काव्य में उच्च कोटि की ज्ञान राशि का असीम भंडार सुरक्षित है।

2.3 रीति-नीति परक संस्कृति

परम्परा प्रथित रीति-रिवाजों सें प्रथक रहकर व्यक्ति पारिवारिक सामाजिक जीवन के स्वंतन्त्र अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकता । उसका पारिवारिक जीवन जन्म से मत्यु तक विभिन्न रीति-रिवाजों और संस्कारों से संस्कारित होता है। सामाजिक रीति-रिवाजों संबंधित लौकिक उपादानों से बुण्देलखण्ड का लोक-जीवन प्रतिबिम्बित होता है । यहाँ की सामाजिक रीतियों को चार वर्गो में विभक्त किया जा सकता है।

1- संस्कार - जन्म, विवाह, मत्यु-संबंधी रीतियाँ ।
2- व्रत, पर्वोत्सव, त्यौहार संबंधी रीतियाँ ।
3- जाति संबंधी रीतियाँ ।
4- आचार, अनुष्ठान, रहन-सहन संबंधी प्रथाएं, परंपरा और रीतियाँ ।

बुण्देलखण्ड की उक्त चारों प्रकार की सामाजिक रीतियाँ शास्त्रीय और लौकिक रीतियाँ नियमों से आबद्ध हैं। शास्त्रीय रीतियों की अपेक्षा लौकिक रीतियाँ की यहाँ संख्या अधिक है। कुछ रीतियों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है-

जन्म से पूर्व 7 वें माह में सादें चौक जन्म पश्चात सोहर, छठी, देवपूजन, जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, अन्नप्राशन आदि जन्म संस्कार संबंधी रीतियाँ यहाँ प्रचलित हैं। विवाह बिना कोई भी व्यक्ति न तो समाज में प्रतिष्ठा पा सकता है। और न ही वह समाज का उपयोगी या उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य कर सकता है।'' वरेच्छा भात न्यौतना, मण्डप छाना, तेल चढ़ाना, कुल देवी पूजन, गठबन्धन, भाँवर,

विदाई, द्विरागमन आदि प्रमुख वैवाहिक रीतियों का यहाँ प्रचलन है। मृत्यु उपरान्त शव स्नान, अर्थी सज्जा, तिलांजलि, शवदाह, विर्सजन, पिण्ड पारन, श्राद्ध आदि मृत्यु संस्कार सम्बन्धी रीतियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं।

बुण्देलखण्ड में व्रत, पर्वोत्सव, त्यौहार सम्बन्धी रीति-रिवाजों में पौराणिक विश्वास अधिक आस्थाशील है। लोक के विविध देवताओं की पूजा-उपासना सम्बन्धी निष्ठा समाज में रीति बन गई। मानव समाज के आदिम युग से लेकर अब तक निरन्तर विकसित होते रूप में मानव मन तो आगे बढ़ता गया परन्तु समाज को व्रत, पर्व, त्यौहार सम्बन्धी लोक रीतियाँ आदिम विश्वासें पर आधारित वही पुरानी ज्यों की त्यों रह गई है"।

जातियों के विशिष्ठ क्रिया व्यापारों के अनुसार जातिगत रीतियाँ निर्मित हुई। यहाँ उच्चवर्ग और जमींदार स्वामी माने जाते हैं। और निम्न वर्ग की जातियाँ उनकी प्रजा सभी संस्कारों, पर्वोत्सवों, त्यौहारों के अवसर पर ये प्रजा जातियाँ अपनी यथा योग्य सेवा के फलस्वरूप नग, न्यौछार, वस्त्राभूषण पातीं हैं। तब से आज तक उक्त जातियों के रहन-सहन और समाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया है। गौना, भौज जेवना, तीज-त्यौहार, विवाहादि अवसर पर नये वस्त्र और सोलह श्रृंगार आदि की सामाजिक रीतियाँ, प्रथाएं और परम्पराएँ बुण्देलखण्ड की लोक संस्कृति के उपादानों के रूप में बिम्बित हैं।

2.4. लोक काव्य में संस्कृति, धर्म और परम्परायें

2.4.1. संस्कृति

बुन्देली लोक काव्य में संस्कृति, धर्म, परम्परओं, को समझने के लिये संस्कृति क्या है? पहले इसे जान लेना आवश्यक है-

संस्कृति शब्द संस्कार से बना है संस्कार का अर्थ है-"शुद्धि की क्रिया" अथवा परिष्कार । इसका तात्पर्य उन सभी पहलुओं और विचारों से है जो व्यक्ति का परिष्कार करते है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अभिप्राय सामाजिक प्रशिक्षण के उन सभी तरीकों तथा मानवीय ज्ञान से है जिनके द्वारा व्यक्ति समाज से अनुकूलन करना सीखता है। एक व्यक्ति जीवन के प्रारम्भ से ही परिवार, विद्यालय और बाहरी जगत के उन व्यावहारों को सीखना आरम्भ कर देता है। जिन्हें उसके समाज में आवश्यक समझा जाता है तो दूसरी ओर उसके सामने नयी नयी वस्तुओं के उपयोग के तरीकों को सीखने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कोई व्यक्ति किसी समाज का सदस्य होने के नाते जितने भी भौतिक-अभौतिक व्यवहार को सीखता है वे सभी उसकी संस्कृति के अभिन्न अंग है।

परिभाषा

1- "लोकसंस्कृति भारत की ग्रामीण संस्कृति है संस्कृति वह जटिल सम्पूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार कानून प्रथा और इसी तरह की उन सभी क्षमताओं का समावेश है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।" ---टायलर

2- "संस्कृति में सभी पदार्थ उपकरण तथा शारीरिक व मानसिक आदतें सम्मिलित रहती है जो मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है।"

--मैलोनॉस्की

3- "किसी समूह के कार्य करने और विचार करने के सभी तरीकों का नाम ही संस्कृति है।"

---बोगार्डस

4- "संस्कृति की विशेषताओं को समझते हुये कहा है-प्रत्येक समूह तथा प्रत्येक समाज में व्यवहार के कुछ ऐसे तरीके होते है जो लगभग समान रूप से सभी सदस्यों में पाये जाते है, जो एक पीढ़ी तक हस्तांतरित होते है और बच्चों को भी सिखलाये जाते है। साथ ही उनकी निरन्तर परिवर्तन की सम्भावना भी रहती है। व्यवहार के इन सामान्य प्रतिमानों को हम संस्कृति कहते हैं।"

---गिलिन तथा गिलिन

5- "संस्कृति उन सभी संस्थाओं का योग है जिसमें एक समाज के सभी सदस्य भाग लेते है।"

उपर्युक्त. परिभाषाओं के निर्ष्कर्ष के आधार पर निम्न परिणाम निकलते है-

1- संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार।
2- संस्कृति भौतिक भी होती है और अभौतिक भी।
3- संस्कृति सामाजिक होती है।
4- संस्कृति हस्तांतरित होती रहती है।
5- संस्कृति समूह का आदर्श है।
6- संस्कृति उपयोगी है।
7- प्रत्येक समाज की संस्कृति पृथक होती है।
8- संस्कृति व्यक्ति से उच्च है।
9- संस्कृति अधिसावयवी है।
10- संस्कृति में अनुकूलन का गुण है।

उपर्युक्त निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि संस्कृति एक सामाजिक घटना तो है ही, साथ संस्कृति में स्थायित्व का गुण इसकी प्रमुख विशेषता है। इस स्थायित्व के कारण ही संस्कृति समाज को संगठित रखती है।

भारत की ग्रामीण संस्कृति ही लोक संस्कृति है जिसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार आदि अनेक ऐसे कारण हैं जिनसे भारतीय ग्रामों की संस्कृति निरन्तर प्रभावित होकर परिवर्तन की दिशा में अग्रसर हो रही है जन-जातियों में बाहय सम्पर्क के कारण परिवर्तन हुआ है, उसी प्रकार ग्रामीण संस्कृति में भी परिवर्तन होना आरम्भ हुआ है। इसी परिवर्तन के आधार लोक संस्कृति का स्वरूप एवं महत्व संक्षिप्त में प्रस्तुत कर रहे हैं।

लोक संस्कृति का स्वरूप एवं महत्व

सभी देशों में लोक संस्कृति की विशेषतायें सामान्य रूप से एक जैसी हैं। लेकिन सामाजिक तथा भौगोलिक पर्यावरण के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों की लोक संस्कृतियाँ विभिन्न विशिष्टताओं से परिपूर्ण है। ग्रामीण भारत और जीवन एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं। कला न जीवन के निकट है और न दूर। बल्कि कला और जीवन एक दूसरे में मिलें

हुये हैं। कलात्मक तथा जीवन के पक्षों में समान रूप से सम्बंधित होती है। एक ही समुदाय के अंतर्गत एक व्यक्ति तथा दूसरे व्यक्ति की संस्कृति में अंतर बहुत कम पाया जाता है । गाँव के सभी लोग सांस्कृतिक क्रियाओं में समान रूप से भाग लेते हैं। उनमें कलाकार तथा दर्शक का अंतर नहीं होता । दर्शक स्वयं भी कलाकार होता है। इसके विपरीत कलाकार स्वयं भी दर्शक होता है।

भारतीय ग्रामों की संस्कृति परिवारात्मकता से परिपूर्ण है। गीत नृत्य, अभिनय तथा कहावतें आदि सभी परिवारात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित है। किन्तु ग्रामीण कला, नगरीय कला की भाँति तकनीकि प्रगति पर आधारित नहीं हैं। इसके निर्माण के लिये उन्नत उपकरण की आवश्यकता नहीं होती । गीत, नृत्य, अभिनय तथा चित्रकारी आदि के लिये जो भी उपकरण आवश्यक होते हैं वे सभी ग्रामीण पर्यावरण में ही सुलभ हो जाते हैं। ग्रामीण कला नगरीय कला की भाँति, व्यवसाय के रूप में विकसित नहीं है । कला का उपयोग सामूहिक मनोरंजन के लिये किया जाता है। इसके द्वारा सामूहिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। ग्रामीण कला मौखिक रूप में विकसित होती है। इसकी रचना के लिये ना तो विविध विचारक होते हैं और न विवादपूर्ण सिद्धातों की प्रतिस्थापना होती है। इसका स्वाभाविक विकास होता है और पीढ़ियों तक इसका स्वरूप समान बना रहता है। ग्रामीण जीवन के सभी पहलू ही लोक संस्कृति है।

उपर्युक्त आधार पर भारतीय ग्रामों की संस्कृति को सहज तथा सरल कह सकते हैं। किन्तु विगत वर्षो के औद्योगिक तथा राजनीतिक परिवर्तन का प्रभाव भी अब इसके ऊपर पड़ने लगा है अब यह क्रमशः व्यावसायिक आधार पर भी विकसित की दिशा में अनेक कदम उठाये है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों में स्थानीय कार्यक्रमों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार, वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप ग्रम्य जीवन के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पक्ष प्रभावित हुये हैं इसी प्रकार सांस्कृतिक पक्ष भी आधुनिकता से अछूता नहीं है। तकनीकी तथा आर्थिक शक्तियों के फलस्वरूप ग्रामीण सामाजिक संरचना के साथ-साथ ग्रामों कीं लोक संस्कृति भी उत्तरोत्तर बदलने लगी है। भारत में यह परिवर्तन विगत डेढ़ सौ वर्षो से प्रारम्भ हुआ है विदेशी शासन के कारण इस परिवर्तन की गति उतनी तीव्र नहीं रही जितनी अन्य पाश्चात्य देशों के ग्रामीण समाज में रही है। भारत की लोक संस्कृति में परिवर्तन के लक्षण धीरे-धीरे हुये हैं।

लोक कला, आदि कला से लोक जीवन की अभिन्न अंग रहीं हैं इसका सदा से सामूहिक सृजन होता रहा है। लेकिन विगत वर्षो में रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफोन आदि के प्रभाव स्वरूप लोक कला और लोक जीवन के मध्य पृथकता उत्पन्न होने लगी है। कला समूह की न होकर कलाकारों की व्यक्तिगत कुशलता बनाने लगी है। फलस्वरूप लोक कला जहाँ समूह की भावनाओं की अभिव्यक्ति करती थी अब कलाकारों की निजी भावनाओं को प्रकट करने की माध्यम बन रही है।
लोक कला सदा से अव्यवसायी रही है इसका उपयोग आर्थिक लाभ के लिये अब तक नहीं किया जाता था। लेकिन विगत परिवर्तन के साथ अवलोकन व्यवसायिक आधार पर विकसित होने लगी है। गाँवो में कलाकारों के संगठन विकसित होने लगे है। जो आर्थिक लाभ के लिये विभिन्न स्थानों पर लोकगीत लोकनृत्य आदि का प्रदर्शन करते हैं।

आज लोक संस्कृति का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्व बढ़ता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि आज व्यक्ति के जीवन में प्राकृतिक शक्तियों का इतना महत्व नहीं रहा जितना उनके द्वारा बनाई संस्कृति का। आज मनुष्य ने अधिकांश प्राकृतिक शक्तियों को अपने वश में करके उसमें इच्छानुसार परिवर्तन कर लिये है। मनुष्य हवा में विचरण करने, गहरे समुद्र में रहने, नदियों की धाराओं को मोड़ने जलवायु को परिवर्तित करने तथा प्रतिकूल भौगोलिक दशाओं को भी अपने अनुकून बनाने में समर्थ हो गया है। दूसरी ओर संस्कृति से अनुकूल किये बिना व्यक्ति किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। जहाँ प्रकृति ने मनुष्य को केवल जीवन प्रदान किया है वहाँ संस्कृति उसी जीवन का पालन पोषण करती है। जिस प्रकार किसी वस्तु को बनाना तो सरल है किन्तु उसकी रक्षा करना उतना सरल नहीं है। अतः स्पष्ट है कि सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव भौतिक वातावरण से अधिक है।

विभिन्न प्रकार की संस्कृति में विभिन्न प्रकार के संगठन पाये जाते हैं उदाहरण के लिये फ्रांस के समाजिक संगठन में भी महान अंतर देखने को मिला है। सामाजिक संगठन के अंतर्गत हम प्रमुख रूप से सदस्यों की स्थिति, सामाजिक संस्थाओं के स्वरूप, विवाह नियम, लोकाचार, जनरीतियों, सामाजिक नियंत्रण तथा स्थिति और भूमिका की व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं यदि समाज की स्थिति का लम्बा इतिहास होता है और उनमें काफी स्थिरता होती है । ग्रामीण भारत में विभिन्न जातियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं किन्तु देश विदेश की संस्कृति से यह भिन्नता कम है। आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हमारी लोक संस्कृति परिवर्तित हो रही है एक और पाश्चात्य देशों की संस्कृति के अनुरूप मानव जीवन जीने के प्रयास जारी हैं और दूसरी ओर हमारी प्राचीन लोक संस्कृति को स्थापित करने के प्रयास जारी हैं जिसके अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति भारतीय जीवन को बहुत प्रभावित कर रही हैं, किन्तु हमें सदैव दूसरों की अच्छाईयाँ ही देखना और अपनाना चाहिये क्या उचित है क्या अनुचित है इसे भलीभाँति समझना चाहिये। लोक संस्कृति के अनुसार ही मनुष्य सदैव वैसा ही व्यवहार करता है जैसी संस्कृति होती है, इसलिये जीवन में संस्कृति महत्वपूर्ण है।

भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन ने मानव जीवन के रहन सहन, खानपान यातायात, व्यवसाय, लोककला, लोकनृत्य शिक्षा व्यवस्था, जातिवाद, छुआछूत, भेदभाव को पूर्णता बदल दिया है। लोक संस्कृति व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है जिसके फलस्वरूप समाज में संघर्ष की मात्रा कम हो जाती है कारण यह है कि समाज में जैसी सदस्यों की आवश्यकतायें होती है उसके अनुसार ही वहाँ एक विशेष प्रकार की संस्कृति का विकास हो जाता है। यद्यपि संस्कृति का निर्माण व्यक्ति के द्वारा होता है लेकिन संस्कृति व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है लेकिन संस्कृति तब भी स्थायी रहती है। व्यक्ति द्वारा संस्कृति कम प्रभावित होती है लेकिन संस्कृति व्यक्ति के सभी व्यवहारों और कार्यो को प्रभावित करती है।

यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो विश्व बंधू बापू का यह विचार कि वास्तव में लोक गीत संस्कृति के रक्षक है पूर्णतः सत्य है। लोक संस्कृति लोक गीतों में लोक काव्य में सन्निहित है। बुन्देली लोक काव्य में लोक जीवन की विशद व्यख्या है। संक्षेप में यदि कहा जाये कि लोक संस्कृति ही लोक काव्य है और लोक काव्य ही लोक संस्कृति है। लोकाचार, जन, संस्कार, रीति, रिवाज, विवाह, उत्सव, देवी, देवताओं के पूजन, पहनावा, खान-पान, फसलें, प्रकृति वर्णन आदि सजीव चित्र ही तो

लोक काव्य की विषय सामग्री है यह लोक जीवन है। लोक संस्कृति को सजीव रखने में लोक काव्य का निराला स्थान है। सांस्कृतिक मूल्यों का रक्षक यहीं लोक काव्य है। लोक साहित्य हमारी सांस्कृतिक कसौटी का एक अनिवार्य स्तभं है। कहीं ऋतु गीतों का वर्णन तो कहीं बुन्देली वीरों की शौर्य गाथायें, कहीं धार्मिक गीतों की भरमार, कहीं हरदौल के गीत, कहीं कारस देव की गोटें, सास ननद, देवर भाभी आदि के रोमांचकारी प्रसंग, कहीं जन्म के दादरे, सोहरे, कहीं विवाह संस्कार गीत तो कहीं प्रयाण गीत इस लोक काव्य के क्लेवर है। यहीं हमारी लोक संस्कृति है इसकी विशद व्याख्या लोक साहित्य करता है। अतः यह कहा जा सकता है, कि लोक संस्कृति के प्राण लोक साहित्य में निहित है। हमारी लोक संस्कृति ग्रामों में निवास करती है और इन्हीं ग्रामों में लोक कवि अपने इष्ट देव गणेश, शारदा आदि को स्मरण कर अपने राग अलापने लगता है। जैसे,

सदा भवानी दाहिनी,, सनमुख रात गणेश
तीन देव रक्षा करें, बिरमा, विष्णु, महेश।।

लोक साहित्य का सम्बन्ध लोक से तथा संस्कृति से इस प्रकार जुड़ा है कि एक नापने में दूसरा नप जाता है। दूसरे को तौलने में पहला अपने आप तुल जाता है। संक्षेप में लोक साहित्य में ही लोक संस्कृति का चित्र प्रतिबिम्बित होता है। और लोक संस्कृति का व्यवस्थित स्वरूप लोक साहित्य के रूप में ही होता है। संस्कृति और साहित्य अयोन्याश्रित है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। अतः सांस्कृतिक धरोहर यदि है तो वह हमारा लोक साहित्य ही है और उसके प्रणेता लोक कवि इसके जागरूक प्राणी हैं।

2.4.2. धर्म और परंपरायें

भक्ति भावना से पूर्ण लोकगीतों में अनेक धार्मिक विचारधाराओं का मिश्रण मिलता है। कामनाओं की पूर्ति हेतु लोक में देवताओं के महत्व संबंधी लोकगीत गाये जाते हैं। भक्तिभावनामय लोकगीतों में एक और जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, अन्धविश्वास, चमत्कार, प्रकृति पूजा, जड़-जन्तु पूजा, नाग, यक्ष, अप्सराओं, मातृकाओं को मनौती और क्षैत्रीय ग्रामीण देवताओं की पूजन की प्रथा हैं तो दूसरी और पौराणिक चरित्रों के आधार पर निर्मित लोकगीत भी मिलते है। जिनमें राम-कृष्ण, ब्रह्ममा, विष्णु, सीता, राधा पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के उल्लेख निहित हैं। इन भक्तत्यात्मक गीतों में हिन्दू संस्कारों और प्रचीन भक्ति के तथ्य है। व्रत, त्यौहार आदि के अवसर पर भी ईश्वर महत्ता संबंधी लोकगीतों का गायन होता है। देवी-देवताओं को स्तुति-वन्दना संबंधी लोकगीतों में भक्ति का उद्रेक, एहिक-जीवन की निस्सारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता वर्णित है।

भक्ति भाव से आत्मविस्मृत हो भक्त जब भगवान के प्रति आत्म-समर्पण कर देता है तब उसे शान्ति और शक्ति की प्राप्ती होती है। कभी भक्त अपने कृत्यों पर ग्लानी करता है तो कभी परिताप, तो कभी स्वंय को ही धिक्कारने लगता है। इसी आशय से लोकगीतों में भक्तों के उद्गार देखियें -

हे हरी मो से पतित उबारौ ।

1- भारतीय संस्कृति - डा0 एस0 पी0 गुप्ता । पृष्ठ 157
2- भारतीय समाज एवं संस्कृति-राजेन्द्र जायसवाल, 67-72

जो हरी मो से पतित नई तोरौ स्वर्गलोक रैहे खारो ।
भक्ति करे सें सब कोऊ तारै, का हुइये नाव तुम्हारो ।।
हे हरी मो से पतित उबारौ ।
बिना भक्ति प्रभु मोय जो तारौ, तब जानौ नाव तुम्हारौ ।
और पतित तुम अनगिन तारे, अब की मोय जो तारो ।
विनती करौ तुमरौ भगवान, मौरी ओर निहारो ।।
हे हरी मो से पतित उबारौ ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मन रै तैने राम न जानौ रै ।
जैसो मोती ओस कौ रै तैसौई संसार ।
देखत में तो झिलमिलौ, चलत न लाबौ बार ।।
मन रै तैने राम न जानौ रै ।
सोने की गढ़ लंका बनाई सोने कौ दरबार ।
रत्ती भर सोनौ ना मिलौ रावण चलती बार ।।
मन रै तैने राम न जानौ रै ।

ओस बिन्दू के समान क्षणभंगुर संसार में मन को मुग्ध न होने के लिए चेतावनी दी -

अरजी हमारी प्रभू मरजी तुम्हारी है।
नरसिंह के सीस पै सिलाहु भारी है।
हम कहँ प्रभु वह सिला से भारी है ।
काहे के कारण तुमने रूप धारण कियो ।
काहे के कारण तुमने हिरणाकुस मारयो है ।
अरजी हमारी प्रभु मरजी तुम्हारी है।

निम्न भोजपुरी लोकगीत में एक भक्त की सहायता हेतु भगवान से प्रर्थाना -

सीता-राम, लक्षुमन, भरत, शत्रुघन, अगुआ हउवे माहावीरा ।
जय जय नारायण त्रिभुवन सामी, हर देहिया के दुख पीरा ।।
जरत अगिनि प्रहलाद उबरले, गनिका पढ़ावत कीरा ।
मध्य सभा में द्रौपदी प्रन रखेल, हरत दुसान चीरा ।
भारत में भरदूल के अण्ड़ा, घडा तोरी के छिपाई ।
गाह मारि गजराल उबरलें, संकट होई न सहाई ।

प्रायः सगुण, निगुर्ण दोनों प्रकार की भक्ति के लोकगीत प्राप्त होते है। सगुण भक्ति भावना से प्रेरित भजन और लोकगीत का सभी जनपदों में बाहुल्य है। इनमें अवतार लीलाओं का उल्लेख मिलता है। सगुण भक्ति के लोकगीतों में दास्य, सांख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि नवधाभक्ति के स्वरूप की झाँकी दृष्टिगोचर होती है । इन गीतों का प्रतिपाद्य विषय अटूट धार्मिक विश्वास, श्रद्धा भावना लोकमंगल की भावना और बीतें समय में ईश्वर स्मरण न करने का पश्चाताप भी है।

कबीर आदि संतों से प्रभावित निर्गुण भक्ति के गीतों की संख्या है तथा कहीं-कहीं नीति वचनों की भारमार, कहीं रहस्यावाद का संकेत हैं तथा कहीं द्वैत-अद्वैत भावनाओं का समावेश हो गया है। दर्शन और आध्यात्म संबंधी ज्ञान सामान्य जन की समझ से परे है। लेकिन इन्होंनें संतों के जीव, ब्रह्मम संबंधी प्रचलित पदों को लोकगीतों द्वारा स्थानीय भाषान्तर से अपना लिया है । निर्गुण भक्ति की निष्काम भावना से प्रेरित इन लोकगीतों में दया धर्म, परोपकार, गुरू-भक्ति तथा जीव-जगत सांसारिक माया जाल से मुक्ति का सन्देश है।

बुन्देली का अधिकांश लोक साहित्य परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतः चला आ रहा हैं ।

गॉव-गॉव में लोक गीतों के जीते जागते स्वरूप दिखाई देते हैं । प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव परम्परागत रूप से प्राप्त हैं । यह परम्परागत लोक साहित्य ही संगीत बनकर लोक की सतह पर विचरण करता हैं। साहित्यिक दृष्टि से इस लोक काव्य का बहुत अधिक महत्व हैं। बुदेन्ली लोक साहित्य से जाने-अनजाने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में यहाँ का जन-जीवन अनुप्रमाणित हैं।

पंचम अध्याय
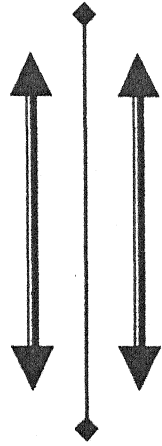
बुन्देली लोककाव्य की व्यापकता

पंचम अध्याय
बुन्देली लोक काव्य की व्यापकता

1-ब्रज काव्य की प्रभाविष्णुता और प्रभाव

कोई भी बोली उन स्थितियों में भाषा बन जाती है जब उसका प्रचलन नित्य व्यवहार की स्थितियों में जन-समाज में व्यापक रूप से प्रचलित हो जाए । यह व्यापकता सैन्य आक्रमण संचालन, धर्म 'प्रयर्त्तन' धार्मिक आन्दोलन, राष्ट्रीय आन्दोलन अथवा उत्पीड़न के विरुद्ध जन-आन्दोलन हो, अथवा किसी दिव्य विभूति के जीवन आदर्शों को लेकर जो काव्य / साहित्य रचना होती है अथवा संस्कारों की व्यापकता के कारण जो लोक गीतादि होते हैं वे उसे भाषा का रूप प्रदान करते हैं । भाषा की स्थिरता के लिए तदनरूप उसका व्याकरण भी बन जाता है जो उसे परिवर्तनष्ठित रुप प्रदान कर स्थायित्व प्रदान करता है। ब्रज और अवधी, भाषाओं को दार्शनिक / आध्यात्मिक रूप जायसी ने प्रदान किया तो महात्मा तुलसी दास ने राम चरित मानस लिखकर लौकिक और अलौकिक आदर्श प्रदान किए । दक्षिणात्मक आचार्यों में से श्री रामानन्द और वत्समाचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, अध्वाचार्य 'प्रमूर्ति' आचार्यों ने जो भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उसकी जाति के सम्पूर्ण भारत को आवृत कर लिया तथा बल्लभाचार्य के शिष्य सुरदास एवं अन्य अष्टछाप के कवियों ने ब्रजबोली को ब्रजभाषा का रूप प्रदान किया । अकेले सुरदास के द्वारा ब्रजभाषा में श्री कृष्ण विषयक दस लाख पद कहे जाने का उल्लेख है । गुजरात में विंदुसनाथ से लेकर बंगाल के महा प्रभु चैतन्य के सखी सम्प्रदाय तक ब्रजभाषा का व्यापक क्षेत्र स्थिर हो गया था ।
बुन्देलखण्ड क्षेत्र की ब्रज से सीमा संलग्न है । खड़ी बोली के कवि मैथलीशरण गुप्त ने लिखा है-
ब्रज तो हमारे ही प्राप्त का प्रतिदेशी है । ब्रजभाषा का क्षेत्र गोसांई बिदुसनाथ के गुजरात से लेकर मनीपुर तक व्याप्त था, ब्रजबलि, काव्यकर भाषा बनी थी । अतः स्वाभाविक था कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर इसका प्रमुख स्पष्ट प्रतीत होता ।

ब्रज भाषा के प्रभाव के कारण ही ओरछा के महाकवि केशवदास ने अपनी रामचन्द्रिका ,रसिक प्रिया छविप्रिया आदि लक्ष्य और लक्षण ग्रन्थ ब्रजभाषा में ही लिखे । गोस्वामी तुलसीदास के राम चरित मानस के अतिरिक्त गीतावली ,दोहावली, विनय पत्रिका, आदि सभी ब्रजभाषा में लिखे गए है।
बुन्देलखण्ड में घनाक्षरी और कवित्त सवैया लेखन शैलियों बहु प्रचलित थी और वर्तमान युग तक इन्हीं शैलियों में कवित्त सवैये ब्रज भाषा में ही लिखे जा रहे हैं । ब्रजभाषा का यह प्रभाव बिहारी लाल के दोहों में भी देखा जा सकता है ।

ब्रज भाषा का सरल रूप, ब्रज की माधुर्य और कृष्ण विषयक काव्य साधना उसी के अनुरूप थी । इस मिथक को तोड़ा है मैथिलीशरण गुप्त ने जिन्होंने वैष्णव काव्य रचना खड़ी बोली में प्रस्तुत की, तथापि उनपर बुन्देली भाषा का भी प्रभाव रहा है । यदि केशव दास गौरमदाइन, लाँच, आदि श्रव्य बुन्देली भाषा के ब्रज भाषा काव्य में लिख सकते हैं । तो गुप्त जी ने भी खड़ी बोली काव्य में ' कछोटा' शब्द का बुन्देली प्रयोग भी किया है -

घूँघट पर करितट खौस कछोटा मारे
सीता माता की आज नयी छवि धारे ।

यह सर्वदा सत्य रहेगा कि ब्रज भाषा की रचना बुन्देलखण्ड में होती है और ब्रज भाषा और बुन्देली भाषा परस्पर प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी है । ब्रज की यह प्रमाणिकता से बुन्देली काव्य समृद्ध हुआ है । भूषण, पदमाकर,देव आदि कवियों ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देली के प्रयोग करते हुए ब्रज भाषा के माधुर्य को सहज छोड़ नहीं सके हैं । उनका विपुल सहित्य ब्रज भाषा में ही लिखा गया है किन्तु क्षेत्रीय बोली-बुन्देली के भी शब्द उसमें स्वभावतः आ गए हैं। लोक गीतों को यदि छोड़ दें तो जिन छन्दों को शास्त्रीय स्वीकृति प्राप्त है । अर्थात कवित्त, सवैया, घनाक्षरी, और संस्कृत वृत ने सभी छन्द ब्रज भाषा में ही शोभा पाते हैं । वर्तमान काव्य में इन घनाक्षरी छन्दों में ब्रजभाषाचार्य सेवकेन्द्र, ने अपनी रचनाएँ अधिकांश ब्रज में ही लिखी हैं । सेवकेन्द्र स्वयं मथुरा में रेल विभाग में कार्य करते थे । उन पर ब्रज भाषा का प्रभाव पड़ना सहज ही था । बुन्देलखण्ड के मूल निवासी होने के कारण संस्कारगत बुन्देली और व्यवहारतः ब्रज दोनों भाषाओं का संगम उनमें प्रायः होता था ।
निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ब्रज की प्रभा विषणुता से बुन्देली काव्य और कवियों ने महत्व पाया है ।

2. बुन्देल खण्ड के ब्रजभाषा कवि

2.1. आचार्य केशव दास

आचार्य केशवदास का जन्म संवत् 1612 में ओरछा के प्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में पं0 काशीनाथ के घर हुआ था । उनके पितामह का नाम प0 कृष्णदत्त था । केशवदास के पिता एंव पितामह संस्कृत के विद्वान थे इसलिए उन्हें भी संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो गया था । केशवदास ओरछा-नरेश के दरबारी कवि थे । ओरछा-नरेश राजा इन्द्रजीत उनको अपना गुरू मानते थे और उनका अत्यधिक सम्मान करते थे । कहते है कि एक बार सम्राट अकबर ने क्रुद्ध होकर राजा इन्द्रजीत पर एक लाख रूपये जुर्माना कर दिया । केशव दास ने यह जुर्माना माफ करा दिया । इससे उनका सम्मान और भी अधिक बढ़ गया । इन्द्रजीत के दरबार की वेश्या को उन्होंने ही शिक्षा दी थी और इसके उपरान्त ही 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । कुछ विद्वानों ने उन्हें तुलसी का समकालीन माना है । संवत् 1678 में वे अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर अमर हो गए । इस प्रकार की परिस्थितियों में रहकर ये अपने समय के प्रधान साहित्यशास्त्र कवि माने गये । केशव के बुण्देलखण्ड जनपद ओरछा में रहने के कारण उनकी भाषा में बुन्देली का भी रूप देखने को मिलता है रचनाओं में बुन्देली जनपद के स्थलों व संस्कृति का रूप भी परिलक्षित होता है। केशव के भावपदों में कहीं-कहीं सुन्दर भावपूर्ण स्थल देखने को मिलते है जिनमें बुन्देली का पुट भी है-

> जग कौ श्रम दूर करै, सिय कौ शुभ वाकल अंचल सौ ।
> श्रम तैउ हरैं तिनको कहि केशव, चंचल चारू दृगजल सौ ।।

महाकवि केवदास रीतिवादी काव्यधारा के प्रर्वतक एवं प्रचारक समझे जाते है। उन्होंने कविता के भावपक्ष को अधिक महत्व देने के स्थान पर कलापक्ष की प्रधानता को स्वीकार किया और तत्कालीन काव्यधारा के क्षेत्र में एक नए युग का सूत्रपात किया । इनके काव्य की कलात्मकता विलक्षण है ।

'रामचन्द्रिका' नामक कृति में उनकी पाण्डित्यपूर्ण काव्य-कला के दर्शन होते है। उन्होंने संस्कृत के अनेक छन्दों एवं अलंकारों को ब्रजभाषा में ढालकर हिन्दी काव्य का अनोखा अलंकृत रूप प्रस्तुत किया । रस विवेचन, नायिका भेद, अलंकार एवं छन्दों के शास्त्रीय स्वरूप से काव्य को अलंकृत करने वाले केशवदास, भाव एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक सफल नहीं रहे हैं। इस कारण बहुधा लोग उन्हें 'हृदयहीन कवि' कहते है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने उन्हें हृदयहीन कहे जाने पर आपत्ति की है तथापि यह सत्य है कि केशवदास के काव्य में भावपक्ष का अभाव था और यह अभाव उनके काव्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशव ने काव्य के शास्त्रीय अलंकृत स्वरूप की रचना करने में ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया जिसके कारण उनको काव्य के भावपक्ष को विकसित करने का समय ही नहीं मिला ।

वस्तु-निरूपण, शब्द-योजना एवं छन्द-विधान के शास्त्रीय रूप को अपने काव्य में स्थान देकर काव्य का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत करनेवाले केशवदास काव्य शास्त्र के प्रकाण्ड समझे जाते हैं।

केशवदास 16 ग्रन्थों के रचयिता माने जाते है। इनमें से आठ ग्रन्थ असन्दिग्ध रूप से इन्हीं के लिखे हुए माने जाते है। शेष की प्रामाणिकता अभी सन्दिग्ध है। इनकी प्रामाणिक रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1. रामचन्द्रिका- यह ग्रन्थ राम-सीता को इष्ट देव मानकर पाण्डित्यपूर्ण भाषा-शैली एवं छन्द में लिखा गया है
2. विज्ञान-गीता- यह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है ।
3. वीरसिंहदेव-चरित
4. जहाँगीर-जस-चन्द्रिका
5. नख-शिख
6. रतन-बावनी
7. रसिकप्रिया-इसमें रा-विवेचन किया गया है।
8. कविप्रिया-इसमें कवि-कर्त्तव्य एवं अलंकार का वर्णन है।

आचार्य केशवदास रीतिकाल के प्रर्वतक माने जाते है। केशवदास ने चमत्कार को काव्य सर्वस्व और अलंकार का काव्य को आत्मा माना है। इस दृष्टि से उनके काव्य में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष थोड़ा दब-सा गया है।

किसी भी सरस काव्य के लिए भाव-व्यंजना अनिवार्य है। भाव-व्यंजना के लिए कवि का सहृदय होना आवश्यक हैं। यद्यपि अनेक आलोचकों ने केशवदास को हृदयहीन सिद्ध करने का प्रयास किया है किन्तु उनके काव्य में अनेक ऐसे स्थल मिल जाते है जो उन्हें सरस और सहृदय कवि सिद्ध कर सकते हैं।

आचार्य केशवदास मुख्यतः अलंकारवादी थे। अलंकारों के प्रयोग में उनका विश्वास अधिक था। उनका सिद्धांत था- ''भूषण बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त'' इसलिए रस-निरूपण में वे अधिक सफल नहीं रहे हैं। उनके काव्य का रस-पक्ष कमजोर रह गया है। केशवदास ने काव्य और प्रकृति के मध्य अटूट सम्बंध माना है, यहाँ तक कि प्रकृति-चित्रण के लिए केशव ने कहीं-कहीं बलात् ही अवसर बना लिए हैं। केशव ने प्रकृति-चित्रण में परम्परागत सभी विधियों को अपनाया है।

हिमांसु सूर सो लगै सो वात वज्र-सी बहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्यों, बिलेप अंग कौ दहै।
बिसेष काल राति सो कराल राति मानिए।
बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिए।

केशव ने अपने काव्य के कला पक्ष को जितना पुष्ट किया है उतना भाव पक्ष को नहीं उनके काव्य की कलापक्षीय विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

भाषा पर केशवदास जी का असाधारण अधिकार था। उन्होंने प्रसंगों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में विषय के अनुरूप प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण विद्यमान है।

शैली की दृष्टि से उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया है। 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध शैली है तो 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में मुक्तक शैली है।

केशव का दृष्टिकोण था "भूषण बिन न बिराजई, किवता बनिता मित्त" अर्थात आभूषण के अभाव में कविता और नारी का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। अपने काव्य में केशव ने अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि उन्हें 'अलंकारवादी' कहा जाता है।

काव्य को काव्य शास्त्र के सिद्धातों के अनुरूप ढालने एवं उसके वस्तु-निरूपण, शब्द योजना, अलंकार-योजना एवं छन्द-विधान आदि को प्रदान करने के लिए महाकवि आचार्य केशवदास को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। ये रीतिकालीन युग के एक विशिष्ट कवि माने जाते हैं।

"कठीन काव्य का प्रेत" कहलानेवाले महाकवि केशवदास को उच्च कोटी के कवियों की अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी। आचार्य केशवदास उस कुल में उत्पन्न हुए थे जिसके दास भी संस्कृत बोलते थे । संस्कृत-साहित्य का उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था । केशवदास जी रसिक प्रकृति के व्यक्ति थे । उनकी रसिकता का परिचय उस लोकप्रिय दोहे के आधार पर भी प्राप्त हो जाता है, जिसमें कुएँ की पाल बैठे हुए वे अपने श्वेत हुए केशो को कोस रहे है-

केयाव केसनि अस करी अरिहू न कराय ।
चन्द्रवन मृगवदन मृगलोचनि बाबा कहि-कहि जाय ।।

2.2-आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी

ब्रजभाषाचार्य श्री रामसेवक जी त्रिपाठी 'सेवकेन्द्र' का जन्म जुझौतिया-कुल भूषण श्री रामचरण जी त्रिपाठी ; तिवारी तालबेहट वाले के नाम से विख्यात की धर्मपत्नी पूज्य माता सुभद्रादेवी जी के गर्भ से कार्तिक शुक्ल षष्टी सम्वत् 1966 वि0 में झाँसी में हुआ था । चार अनुजों एवं तीन अनुजाओं से उद्भूत विशाल परिवार के आप ज्येष्टतम उत्तरदायी व्यक्ति हैं । आपकी नियमित शिक्षा मैट्रिक तक स्थानीय मैक्डानल हाई स्कूल ;वर्तमान बिपिन बिहारी इण्टर कालेज में हुई ।सन् 1927 ई 0 में आपने स्वर्गीय श्री बिपिन बिहारी बनर्जी के संरक्षण में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की । तदनन्तर स्वाध्याय से संस्कृत, फारसी, बंगला, गुजराती, एवं मराठी आदि भाषाओं का बिशद ज्ञान अर्जित किया ।

साहित्यिक परिचय

विद्यार्थी जीवन से ही आपको कविता का शौक हो गया । आपकी सर्वप्रथम् रचना 1921 में 'विद्यार्थी' में प्रकाशित हुई थी । फिर 'माधुरी ' 'सुधा' 'विशाल भारत "सुकवि', 'ब्रज-भारती', तथा 'मधुकर' आदि भारतवर्ष की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में आपकी कवितायें निरन्तर प्रकाशित होती रहीं । 'बुण्देलखण्ड बागीश' 'भक्तिसार पदावली' तथा 'श्री माहौर अभिन्नदन ग्रन्थ' आदि एतिहासिक ग्रन्थ आप द्वारा सम्पादित हुए हैं । नागरी-प्रचारिण -सभा, आगरा, बुन्देल-भारती,

ब्रज-साहित्य मण्डल मथुरा, कवीन्द्र केशव साहित्य परिषद, ओरछा, बुन्देलखण्ड प्रान्तीय कवि परिषद तथा भारतीय साहित्य संगम झाँसी आदि संस्थाओं के अधिष्ठाता तथा अधिकारी सदस्य होने का आपको गौरव प्राप्त रहा है । ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव तथा पन्ना नरेश महेन्द्र महाराजा श्री यादवेन्द्र सिंह जी ने आपकी प्रतिभा के कारण आपको राज-कवि नियुक्त करना चाहा था, परन्तु स्वतन्त्रता -प्रिय सेवकेन्द्र जी ने उन पदों को स्वीकार नहीं किया था ।

व्यक्तित्व -विकास-काव्य को विविध धाराओं को प्रवाहित कर सेवकेन्द्र जी यद्यपि सन् 1930 से ही सुधी साहित्यिकारों के आकर्षण केन्द्र बन चुके थे तथापि उनकी लोक-ख्याति के लिए 1930-35 का कालांश विशेष महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ । सन् 1930 में झाँसी में सम्पन्न अखिल भारतवर्षीय क्षत्रीय महासभा के अधिवेशन ने ;जिसमें बुन्देलखण्ड ,बघेलखण्ड और राजस्थान के अनेक राजे महाराजे सम्मिलित हुए थे। सेवकेन्द्र जी को राजदरबारों के सानिध्य में ला दिया । सन् 1931 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झाँसी अधिवेशन के अवसर पर कवि सम्मेलन विभाग के महामंत्री के रूप आपका परिचय आचार्य सनेही जी से हुआ । सनेही जी के स्नेहाग्रह पर आपने 1933 में महाकवि रत्नाकर के सभापतित्व में सम्पन्न बृहत ब्रजभाषा कवि सम्मेलन प्रयाग में भाग लिया, वहाँ आपकी काव्य प्रतिभा के दिव्य दर्शन कर रत्नाकर जी गद्‌गद् हो गये और हर्षातिरेक में करने लगे सेवकेन्द्र जी को सुन में आश्वस्त हूँ कि अब ब्रजभाषा मर नहीं सकती । अब सेवकेन्द्र जी एक एक विशिष्ट व्यक्तित्व मण्डित काव्याचार्य के रूप में राजदरवारों और कवि सम्मेलनों में मंच की शोभा बन गये । 1935 में आप सुविख्यात साहित्यकार ओरछा राज्य के दीवान रावराजा पं0 श्यामबिहारी जी मिश्र के सम्पर्क में आये । साहित्यिक परिभ्रमण के सन्दर्भ में आप ने ग्वालियर तथा देवगढ़ राज्य की यात्रा भी की जहाँ के नरेशों ने क्रमशः तेरह सौ रु0 तथा ग्यारह सौ रु0 का पुरस्कार प्रदान कर आपको सम्मानित किया । आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों आपकी सामयिक रचनाओं को सन् 1930 से ही प्रसारित करते आ रहे हैं ।

मई 1968 से रेलवे की सेवा से अवकाश ग्रहण कर आजकल आप पूर्ण कालिक साहित्य-साधना में अभिरत है, और सेवक-सदन, झाँसी से नये कवियों का मार्ग-दर्शन तथा संशोधन कार्य दृढ़ निष्ठा से कर रहे हैं ।
माँ सरस्वती अपने इस वरदपुत्र की भावी सेवाओं के प्रति पूर्ण आशावान है ।

रचनायें:- 'ताज की आवाज', मीरा-मानस', 'बुन्देल-विभूति', 'विकास-वीणा', श्रद्धा-सुमन', तथा 'शान्ति के सपूत', आदि अन्यतम् खण्ड काव्यों की आपने रचना की है ।'साधना के स्वर' आपकी स्फुट रचनाओं का खड़ी बोली में लिखा सुन्दर काव्य-संग्रह है ।
बुन्देलखण्ड के वातावरण में ब्रज के स्वर सदैव ही गूंजते रहे हैं । आचार्य केशवदास से लेकर कवीन्द्र श्री नाथूराम माहौर तक सभी कवियों ने ब्रजभाषा के माध्यम से ही अपने स्वरों को साकार किया है । राष्ट्रकवि स्व0 श्री मैथिलीशरण गुप्त, स्व0 मुंशी अजमेरी जी, स्व0 श्री सियारामशरण गुप्त, दीननाथ 'अशक' तथा पं0 बेनीमाधव तिवारी ने खड़ी बोली के माध्यम से अपनी पुनीत प्रतिभाओं का परिचय दिया । बुन्देली और ब्रजभाषा में अस्सी प्रतिशत सौम्य है । इसलिये इस ओर के कवि ब्रजभाषा में ही लिखते आये हैं, और मैं भी इसका अपवाद न रह सका । ब्रजभाषा की नागरी लिपि में लिखने की दो प्रणालियाँ हैं जिनके अनुसार श्री श्यामा श्याम अथवा 'श्री स्यामा स्याम' लिखी जाती है, मुझे दोनों ही पद्धतियाँ स्वीकार हैं ।

जब सेवकेन्द्र जी की काव्य साधना ने छन्द रचना के अभ्यास के अपने शैशव को समाप्त कर तारुण्य में प्रवेश किया उस समय रत्नाकर जी की शारदा विधि से कह रही थी :'ताल तुक हीन अंग भंग छवि छीन भयी कविता विचारी--- ' और 'नन्ददास, देव, घनआन्नद, बिहारी सम सुकवि बनावन ---'का आग्रह कर रही थी । रत्नाकर की रचना रसीली सुनकर जिस स्वर में मिलाकर शारदा ने अपनी ष्ढीली परी वीनहिं सुरीली' किया था। उसी ने सेवकेन्द्र जी के भी काव्यकंठ को आन्दोलित किया है । तालतुक-हीनता, अंग भंगता ओर छबिछीनता के वातावरण में सुरीले पन और सरसता की जो अनुभूति और उससे प्रेरित जो काव्यसाधना रत्नाकर जी के ब्रज-भाषा-काव्य में प्रतिफलित हुई उसी की आधुनिकतम अग्र-गति सेवकेन्द्र जी के ब्रजभाषा काव्य में प्रतिफलित हो रही है । इसीलिये तो आचार्य सनेही जी ने सेवकेन्द्र जी को ब्रजभाषा में कविता करने वाले जीवित कवियों में सर्वश्रेष्ठ ठहराया है ।

मैं समझता हूँ काव्य का मर्म तो अन्तिम विश्लेषण में मानव का प्रेम पूर्ण जीवनानुराग ही ठहरता है । वहीं भिन्न-भिन्न समय और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न भावों और रसों का रूप ग्रहण करता है । यह प्रेम और जीवनानुराग उनके काव्य में सर्वत्र व्याप्त है । उनकी अनुभूति है 'प्रेम परमेश्वर का पर्याय है । यह भी जान लेना आवश्यक है कि सेवकेन्द्र जी के खड़ी बोली के काव्य की प्रचुर राशि अप्रकाशित पड़ी है और उसमें समय समय की विशेष प्रवृत्तियों का प्रभाव भी परिलक्षित हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने कुछ काव्य रचना संस्कृत, उर्दू और बुन्देली में भी की हैं । देव वन्दना, प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत ऋतु वर्णन आदि परम्परागत विषयों पर भी सेवकेन्द्र जी ने काव्य रचना की है और समय प्राप्त नवीन विषयों पर भी ।

सेवकेन्द्र जी ने बुण्देलखण्ड में जन्म लिया है तो अपनी तरुणाई ब्रज में व्यतीत की है । अतः दोनों का ही प्रभाव उनके काव्य में परिलक्षित है । उनके लिये यमुना ही नहीं, वेत्रवती भी उतनी ही पूजनीया और वर्णनीया है । 'यमुना-स्तुति' के साथ उन्होंने 'बेतवा-वन्दना' भी की है । सेवकेन्द्र जी ने बेत्रवती को 'बिन्ध्य गिरि तपसी की तप श्रम धार' और पुहुमी पयोधर पुनीत पय धार ' सी देखा है । भारत के वक्ष पर स्थिति विन्ध्याचल से निकली बेतवा के लिए 'पुहुमी-पयोधर पुनीत पय धार ' कितना उपयुक्त है, कितने भावों को अपने में भरे हुए हैं, इसे सहृदय समझ ही सकते हैं । बेत्रवती बन्दना में संक्षेप में बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक वैभव का मनोरम वर्णन हुआ है ।

वेत्रवती विदित सुविन्ध्य-गिरि -नन्दिनी है,
वेत्र वन पावन की नेत्र-निधि अर्थ में ।
पूरव कों बहति अपूरव करत रव,
विदिशा सों लीन्हीं दिशा उत्तरीय पथ में ।
उभरत कौं पल में करत रेणु जीवन,
भरति धरनी की काय श्लथ में ।
जामिनि धसान कौं समोद निज गोद आनि,
जान्हुजा सौं भेंटी चढ़ि भानुजा के रथ में ।

2.3- कृष्णराव देवकर

श्री कृष्णराव देवकर जी का जन्म झाँसी में 4 जून 1940 में हुआ था । इनके पिता श्री स्व0 गुलाबराय जी देवकर बड़ी साहित्यिक प्रकृति के व्यक्ति थे । इनकी शिक्षा इण्टर तक रही । वर्तमान में आप डाक विभाग में उप डाकपाल के पद पर कार्यरत हैं । ये राष्ट्रीय प्रगतिशील साहित्यकार संघ के सहायक मंत्री हैं। इनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना, चुटीले व्यंग्य, तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रांकन करने की पूर्ण क्षमता है । इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं ।

‘ महुआ उजर न जाये ’

महुआ बीनन चलो रे भेया, उगो तरा भुन्सारे को ।
तरैं पनैंयॉं रौंद न पावें, चलत गैल गैलारे को ।
चलोंउठा, मूंड पै झबुआ, श्याम चिरैया बोलत कऊआ
दबा कॉंखरी में टुकना, न्योरे न्योरे बीनत महुआ ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
ढोर बछेरू ना खा पावें, बांध घरे काऊ न ले जावे ।
न रोकत खाबें खौं काऊ, जी भरकें खा जावें ।
कच्चे खावैं ,भुंजे चबाबें, लबकूट द्वारे ले जाबें ।
डुबरी की तो कौन चबाबें, मुरका को का स्वाद बतावें ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सूखे महुआ मेवा सम हैं, नोंन तेल को खर्चा चलहै ।
पढ़ लिख जैहे मोंड़ा-मोंड़ी, तो कबंहु दिना बदल हैं ।
करत रहत हो, टहल टहूका, मालिक के घर द्वारे को ।
बांध गठौरा मूंड पे धरके, ल्याने हरियल चारे को ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
डुबरी चुरत मठा के भीतर, फेलत महक द्वारे लौं ।
महुआ उजर न जाये भैया, उगो तरा भुन्सारे को ।
पहलऊं उठके बीनों महुआ, फिर करैं उसारों बारे कौ ।
महुआ बीनन चलो रे भैया, उगो तरा भुन्सारे कौ ।

3. बुन्देलखण्ड का खड़ी बोली काव्य

बुन्देलखण्ड में खड़ी बोली काव्य में बाबू मैथलीशरण गुप्त एवं स्व॰ लाला भगवानदीन का काव्य ही प्रमुख है जो इस प्रकार है -

3.1- बाबू मैथलीशरण गुप्त

‘सरस्वती‘ का सम्पादन द्विवेदीजी के हाथ में आने के प्रायः तीन वर्ष पीछे सं0 1963 से बाबू मैथलीशरण गुप्त की खड़ी बोली कविताएँ उक्त पत्रिका में निकलने लगी और उनके संपादन काल तक बराबर निकलती रहीं । संवृत 1966 मे उनका ‘रंग में भंग‘ नामक एक टोटा सा प्रबंधकाव्य प्रकाशित हुआ जिसकी रचना चित्तौड़ और बूंदी के राजघरानों से संबंध रखने वाली राजपूती आन की एक कथा को लेकर हुई थी । तब से गुप्तजी का ध्यान प्रबंध काव्यों की

और बराबर रहा और वे बीच में छोटे या बड़ें प्रबंध काव्य लिखते रहे । गुप्त जी की ओर पहले पहल हिन्दी प्रेमियों का सबसे अधिक ध्यान खींचने वाली उनकी 'भारत भारती' निकली इसमें 'मुसद्दस हाली' के ढंग पर भारतियों की या हिन्दुओं की भूत और वर्तमान दशाओं की विषमता दिखाई गई है, भविष्य निरूपण का प्रयत्न नहीं है। यद्यपि काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक चित्रण, वाग्वैचित्य इत्यादि का विधान इसमें न था, पर बीच में मार्मिक तथ्यों का समावेश बहुत साफ और सीदी सादी भाषा में होने से यह पुस्तक स्वदेश की ममता से पूर्ण नवयुवकों को बहुत प्रिय हुई । प्रस्तुत विषय को काव्य का पूर्ण स्वरूप न दे सकने पर भी इसने हिन्दी कविता के लिए खड़ी बोली की उपयुक्तता अच्छी तरह सिद्ध कर दी । इसी ढ़ंग,के पर बहुत दिनों पीछे इन्होनें 'हिन्दू' लिखा । ' केशों की कथा 'स्वर्गसहोदर' इत्यादी बहुत सी फुटकर रचनाएं इनकी 'सरस्वती' में निकली है, जो 'मंगल घट' में संग्रहित है।

प्रबंध काव्यों की परंपरा इन्होंने बराबर जारी रखी । अब तक ये नौ दस छोटे-बड़े प्रबंधकाव्य लिख चुके है जिसके नाम है- रंग में भंग, जयद्रथवध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरूकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा । अंतिम दो बड़े काव्य है। 'विकट भट' में जोधपुर के एक राजपूत सरदार की तीन पीढ़ियों तक चलने वाली बात की टेक की अद्भुत पराक्रम पूर्ण कथा है। 'गुरूकुल' में सिख गुरूओं के महत्व का वर्णन है। छोटे काव्यों में जयद्रथ वध और पंचवटी का स्मरण अधिकतर लोगों को है वैतालिक की रचना उस समय हुई तब गुप्त जी की प्रवृत्ति खड़ी बोली में गीतकाव्य प्रस्तुत करने की ओर भी हो गई ।

यद्यपि गुप्तजी जगत् और जीवन के व्यक्त क्षेत्र में ही महत्व और सान्दर्य का दर्शन करने वाले तथा अपने राम को लोक के बीच अधिष्ठित देखने वाले कवि है। साकेत और यशोधरा इनके दो बड़े प्रबंध है । दोनों में उनके काव्यत्व का पूरा विकास दिखाई पड़ता है, पर प्रबंधत्व की कमी है । बात यह है कि इनकी रचना उस समय हुई जब गुप्तजी की प्रवृत्ति गीत काव्य या नये ढंग के प्रगीत मुक्तकों की और हो चुकी थी । साकेत की रचना मुख्यतः इस उद्देश्य से हुई कि उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रह जाय । पूरे दो सर्ग '9 और 10' उसके वियोग्य वर्णन में खप गए है। काव्य का नाम 'साकेत' रखा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि इसमें अयोध्या में होने होनी घटनाओं और परिस्थितियों का ही वर्णन प्रधान है । राम के अभिषेक की तैयारी से लेकर चित्रकूट में राम भरत मिलन की कथा आठ सर्गों तक चलती है । उसके उपरान्त दो सर्गों तक उर्मिला की वियोग अवस्था की नाना अंतवृत्तियों का विस्तार है जिसके बीच-बीच में अत्यंत उच्च भावों की व्यंजना है ।
सूरदास की गोपियाँ वियोग में कहती हैं कि -

> मधुवन ! तुम कत रहत हरे ?
> विरहवियोग श्यामसुन्दर के काहे न उकठि परे ?

पर उर्मिला कहती हैं-

> रह चिर दिन तू हरी भरी ,
> बढ़, सुख से बढ़ सृष्टि सुन्दरी
> !

प्रेम के शुभ प्रभाव से उर्मिला के हृदय की उदारता का और भी प्रसार हो गया है । वियोग की दशा में प्रिय लक्ष्मण के गौरव की भावना उसे सँभाले हुए हैं । उन्माद की अवस्था में जब लक्ष्मण

उसे सामने खड़े जान पड़ते हैं तब उस भावना को गहरा आघात पहुँचता है और व्याकुल होकर कहने लगती हैं -

> प्रभु नहीं फिरे, क्या तुम्हीं फिरे ?
> हम गिरे, अहो! तो गिरे, गिरे ?

यशोधरा की रचना नाट्कीय ढंग पर है । उसमें भगवान बुद्ध के चरित्र से संबंध रखने वाले पात्रों के उच्च और सुन्दर भावों की व्यंजना और परस्पर कथोपकथन है, जिसमें कहीं कहीं गद्य भी है । भाव व्यंजना प्रायः गीतों में है । गुप्त जी ने 'अनघ', 'त्रिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास' नामक तीन छोटे छोटे पद्यवद्ध रूपक भी लिखे हैं । 'अनघ' में कवि ने लोक व्यवस्था के संबंध में उठी हुई आधुनिक भावनाओं और विचारों का अवस्थान- प्राचीनकाल के भीतर ले जाकर किया है । वर्तमान किसान आन्दोलन का रंग प्रधान है ।

गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बढ़ी बिशेषता है कि कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलतीं हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति । इस दृष्टि से हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं । भारतेन्दु के समय से स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारत-भारती' में मिलता है । इधर के राजनीतिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसका पूरा आभास पिछली रचनाओं में मिलता है । सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यत्ववाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति
प्रेम और समान, सबकी झलक हम पाते हैं ।

गुप्त जी की रचनाओं के भीतर 3 अवस्थाएँ लक्षित होतीं हैं । प्रथम अवस्था भाषा की सफाई की है जिसमें खड़ी बोली के पद्यों की मसृणबधं रचना हमारे सामने आती है । 'सरस्वती' में प्रकाशित अधिकांश कविताएँ तथा 'भारत-भारती' इस अवस्था की रचना के उदाहरण हैं । ये रचनाएँ काव्य प्रेमियों को कुछ गद्यवत्, रूखी और इतिवृतात्मक लगती थीं । बात यह है कि खड़ी बोली के परिमार्जन का काल था । इसके अनंतर गुप्त जी ने बंग भाषा की कविताओं का अनुशीलन तथा मधुसूदनदत्त रचित ब्रजांगना, मेघनादबध आदि का अनुवाद भी किया । इससे इनकी पदावली में बहुत कुछ सरलता और कोमलता आई, यद्यपि कुछ ऊबड़ खाबड़ और अव्यवहृत संस्कृत शब्दों की ठोकरें कहीं कहीं, विशेषतः छोटे छंदों के चरणांत में, अब भी लगतीं हैं ।

गुप्त जी वास्तव में सामंजस्य वादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने वाले कवि हैं । सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त हैं । प्राचीन के पति पूज्य भाव और नवीन के प्रति उत्साह इनमें दोनों हैं । इनकी खड़ी बोली काव्य की रचना के कई प्रकार के नमूने नीचे दिये जाते हैं-

> क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेंट दो ।
> निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो ।
> वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का ।
> सब धन विदेशी हर रहे हैं, पार है क्या क्लेश का ?

'भारत भारती '

थे, हो और रहोगे जब तुम, थीं, हूँ और सदैव रहूँगी ।
,कल निर्मल जल की धारा सी आज यहाँ, कल वहाँ बहूँगी ।
दूती! बैठी हूँ सजकर मैं ।
ले चल शीघ्र मिलूँ प्रियतम से धाम धरा धन सब तजकर मैं ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
अच्छी आँख मिचौली खेली !
बार बार तुम छिपो और मैं खोंजू तुम्हें अकेली ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
निकल रही है उर से आह ।
ताक रहे सब तेरी राह ।
चालक खड़ा चोंच खोले हैं, संपुट खोले सीप खड़ी ।
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ, अपनी अपनी हमें पड़ी ।

'झंकार '

पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे ।
छींटे वहीं उड़े थे , बड़े अश्रु वे कब थे ?
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सखि, नील नभस्तर से उतरा , यह हंस अहा! तरता तरता ।
,अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता ।
अपने हिमबिंदु बचे तब भी, चलता उनको धरता धरता ।
गड़ जायें न कंटक भूतल के ,कर डाल रहा डरता डरता ।
आकाश जाल सब ओर तना, रवि तुंतुवाय है आज बना ।
करता है पद्प्रकार वही, मकखी सी भिन्ना रही महीं ।
❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
सखि निरख नदी की धारा ।
ढलमल ढलमल चंचल अंचल , झलमल झलमल तारा ।
निर्मल जल अंतस्तल भरके, उछल उछल कर छल छल करके ।
थल थल तर के, कल कल धर के बिखराती है पारा ।'साकेत से '

3.2 स्वर्गीय श्रीलाला भगवानदीन

दीन जी के जीवन का प्रारम्भिक काल उस बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ था जहाँ देश की परम्परागत पुरानी संस्कृति अभी बहुत कुछ बनी हुई है । उनका रहन सहन बहुत सादा और उनका हृदय बहुत सरल और कोमल था । उन्होंने हिन्दी के पुराने काव्यों का नियमित रूप से अध्ययन किया था । इससे वे ऐसे लोगों से कुढ़ते थे जो परम्परागत हिन्दी साहित्य की कुछ भी जानकारी प्राप्त किये बिना केवल थोड़ी सी अँग्रेजी शिक्षा के बल पर हिन्दी कवितायें लिखने लग जाते थे। बुण्देलखण्ड में शिक्षित वर्ग के बीच भी और सर्व साधारण में भी हिन्दी कविता का सामान्य रूप से प्रचार चला आ रहा है। ऋतुओं के अनुसार जो त्यौहार और उत्सव रखे गये है, उनके आगमन पर वहाँ लोगों में अब भी प्रायः वही उमंग दिखाई देती है। विदेशी संस्कारों के कारण वह मारी नहीं गई है। लाला सहाब वही उमंग भरा हृदय लेकर छतरपुर से काशी आ रहे हैं। हिन्दी शब्दसागर के सम्पादकों में एक वे भी थे। पीछे हिन्दू विश्वविद्याालय हिन्दी के अध्यापक हुये

हिन्दी साहित्य की व्यवस्थित रूप से शिक्षा देने के लिऐ काशी में उन्होंने एक साहित्य विद्यालय खोला जो उन्हीं के नाम से अब तक बहुत अच्छे ढंग से चला जा रहा हैं। कविता में वे अपना उपनाम 'दीन' रखते थे। लालाजी का जन्म सम्वत् 1923 में और मृत्यु 1987 में हुई। पहले वे ब्रज भाषा में पुराने ढंग से कविता करते थे पीछे 'लक्ष्मी के सम्पादक हो जाने पर खड़ी बोली की कवितायें लिखने लगे। खड़ी बोली में उन्होंने वीरों के चरित्र लेकर बोल चाल की फड़फड़ाती भाषा में जोशीली रचना की है। खड़ी बोली की कविताओं का तर्ज उन्होंने प्रायः मशियाना ही रखा था। वह छंद भी उर्दू के रचते थे और भाषा में चलते अरबी या फारसी शब्द भी लाते थे। इस ढंग के उनके तीन काव्य निकलें है 'वीर क्षत्राणी' वीर बालक और 'वीर पंचरत्न'। लालाजी पुराने हिन्दी काव्य और साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। बहुत से प्राचीन काव्यों की नए ढ़ंग की टीकाएँ करके उन्होंने अध्ययन के अभिलाषियों का बड़ा उपकार किया है। रामचंद्रिका, कविप्रिया, दोहावली, कवितावली, बिहारी सतसई आदि की इनकी टीकाओं ने विद्यार्थियों के लिये अच्छा मार्ग खोल दिया। भक्ति और श्रृंगार की पुराने ढंग की कविताओं में उक्ति चमत्कार वे अच्छा लाते थे।

दीनजी की खड़ी बोली कविता का उदाहरण -

बीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता।।
जो वीर-सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता।।
सब वीर किया करते है सम्मान कलम का।
वीरों का सुयशगान है अभिमान कलम का।

हिन्दी अनुवाद 'सरस्वती' आदि पत्रकाओं में सम्वत् 1967 से ही निकलने लगे थे। ग्रेवर्ड् सवर्थ आदि अँगरेजी कवियों की रचनाओं के कुछ अनुवाद भी जैसे जीतन सिंह द्वारा अनूदित वर्ड्सवर्थ का कोकिल निकले। अतः खड़ी बोली की कविता जिस रूप में चल रही थी उससे संतुष्ट न रहकर द्वितीय उत्थान के समाप्त होने से कुछ पहले ही कई कवि खड़ी बोली काव्य को कल्पना का नया रंगरूप देने उसे अधिक अर्न्राभावव्यंजक बनाने में प्रवृत्त हुऐ । जिनमें प्रधान थे सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय और बद्रीनाथ भट्ट। कुछ अंग्रेजी डर्रा लिये हुये जिस प्रकार की फुटकर कवितायें और प्रगीत मुक्तक बंगला में निकल रहे थे उनके प्रभाव से कुछ विश्रृंखल वस्तुविन्यास और अनूठे शीर्षकों के साथ चित्रमयी कोमल और व्यंजक भाषा में इनकी नये ढंग की रचनायें निकलने लगी थीं।

ꕥ
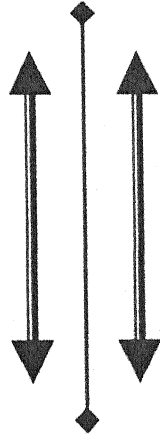
षष्ठ अध्याय

उपसंहार

षष्ठ अध्याय
उपसंहार

1. बुन्देली लोक काव्य का प्रदेय

जब से पृथ्वी पर मनुष्य है तब से गीत भी है । जब तक मनुष्य रहेंगे तब तक गीत भी रहेंगे । मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ चलता रहता है । बहुत सारे गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये । कितने ही गीतों ने देशकाल के अनुसार भाषा का चपेला तो बदल डाला पर अपने असली रूप को कायम रखा । बहुत से गीतों की आयु हजारों वर्षों की होगी । वे थोड़े फेरफार के बाद समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं ।

लोकगीतों में जीवन के सभी पक्षों की अभिव्यंजना सही और स्वच्छता पूर्वक होती है । अनपढ़, संवेदनशील, सामान्य जनता के पास अपने हृदय के स्वभाविक उद्‌गारों को अभिव्यक्त करने हेतु शब्द नहीं होते । अतः लय के माध्यम से वह इस कमी को पूर्ण करती है । अभिव्यक्ति के पूर्ण शब्दों से अधिक लय और संगीत तत्व ही प्रमुख होता है । शब्द वाणी के सम्प्रेषण हैं । वाणी के माध्यम से व्यक्ति अपने अनुभवों एवं आशा आकांक्षाओं को गाकर व्यक्त करता है । लोकगीतों की यह भावना सामूहिक रूप से लोकरंजन वातावरण में अभिव्यक्त होती है जिसमें लोक संस्कृति के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं । लोकगीतों की एक स्वच्छन्द दुनियाँ में ही लोकगीतों का स्वरूप सहज रूप से निर्मित होता है । हम लोकगीतों को साहित्य का मूलधन मानकर मानवजीवन की अनेक रहस्मयी एवं जिज्ञासापूर्ण वस्तुओं का ज्ञान के आलोक में तत्यान्वेषण कर सकते हैं ।
जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं, ऐसा दृष्टिकोण नहीं ऐसा स्पन्दन नहीं जो लोकगीतों की सीमा का संस्पर्श न करता हो । लोकगीत परमपराओं के उस महानाद के समान है जिसे अनेक छोटी मोटी धाराओं ने मिलकर महायुद्ध बना दिया हैं । सदियों के घात प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है । जीवन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने बाने बुने हैं । स्त्री पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है । इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं । जवानों में प्रेम की मस्ती आयी है । वृद्धों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने मन बहलाये हैं एवं मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिक ने थकावटें दूर की हैं । किसानों ने अपने बड़े बड़े खेत जोते हैं । मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं । लोकगीतों में व्यष्टि समष्टि का भेद प्रायः समाप्त हो जाता है । यह प्रायः प्राचीनता नवीनता के समन्वय द्वारा सांस्कृतिक एकता को कायम किये रहते हैं। लोकगीत काल प्रवाह में अपने वाह्रय आचरण भाषा को बदलता रहता है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है, प्राचीन समय से आधुनिक समय में इसके स्थान में कमी नहीं है बल्कि आज तो क्षेत्रीय भाषा में ग्रामीण स्तर पर विभिन्न विषयों पर गीत रचकर भाव अभिव्यक्ति की जा रही है । विभिन्न क्षेत्रों में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है -धार्मिक भावना, लौकिक अनुष्ठानों की भावना, रीति-नीति लोकमान्यताऐं तथा जीवन की विशिष्ट घटनायें जन्म, विवाह, मृत्यु, आदि अवसरों पर लोकगीतों का गाना आज भी प्रचलित है निराशपूर्ण जीवन को आशावान व रसमय बनाने में भी इसका स्थान महत्वपूर्ण है । लोकगीतों में काव्य साहित्य की अपेक्षा

•कविता कौमुदी परिवर्तित संस्करण तीसरा भाग ग्रामगीत पृष्ठ 78

का अजस्त्र स्रोत प्रवाहित होता है । लोकगीतों में काव्य साहित्य की अपेक्षा इनका जन्म स्थान गाँव है जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं हृदय है, जिनके मैत्री के फूल में स्वार्थ का कीट नहीं प्रेम का परिमल है । जिसके मानस जगत में आनन्द है, सुख है, शान्ति है, प्रेम है, करूणा है, संतोष है, त्याग है, क्षमा है, विश्वास है उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के बीच में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृतिगान करती है । प्रकृति के वे ही गान लोकगीत हैं ।

लोकगीतों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक एकता, भाषा भेद के होते हुए भी एक जैसी है । प्रादेशिक परम्परा एवं शब्दों में विभिन्नता हो सकती है । पर मानव हृदय में व्याप्त सामूहिक भाव सुख:दुख, हर्ष विमर्श, आशा निराशा, भय अशंका आदि एक्य की ओर संकेत करते हैं । लोकोक्ति हो अथवा पौराणिक उपाख्यान पहेली हो अथवा लोकगीत, अध्ययन करने पर इसके समरूप वेदों, पुराणों, बौद्ध अथवा जैन साहित्य अथवा महाकाव्यों में अवश्य मिलते हैं अतः बुन्देली लोक काव्य का प्रदेय निम्न रूपों में स्पष्ट है -

1.1. बुन्देली लोककाव्य लोक संस्कृति का आधार है

किसी देश स्थान के रीति-रिवाज, आचार-विचार, खान-पान, पहनावा, वेश-भूषा, चाल-चलन आदि का समग्र यौगिक स्वरूप संस्कृति कहलाता है। लोक काव्य में इन्हीं का चित्रण होता है । इसी संस्कृति के पावन चित्र की झाँकी लोक काव्य ही प्रस्तुत करता है । प्रकृति का अनेक रूपों में वर्णन लोक काव्य में भरा पड़ा हे । बुन्देली की समस्त संस्कृति का चित्र लोक काव्य में मिलता है । इस प्रकार यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि लोक काव्य लोक संस्कृति का रक्षक, उन्नायक तथा आधार है ।

1.2. लोक काव्य सामाजिक मूल्यों का रक्षक है

लोक काव्य में कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं होता है । सास-श्वसुर, देवर-भाभी, भाई-बहिन आदि के प्रेम, सहयोग, व्यवहार आदि का आदर्श निहित होता है । प्रत्येक की मार्योदा के लोक गीत सुन्दर रूप में काव्य बद्ध हैं । राखी भाई-बहिन के प्रेम प्रतीक का त्यौहार है । राखी गीत इसके सशक्त प्रमाण हैं । पति-पत्नी, ननद-भावज, सास-बहू, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, सतीत्व का महत्व आदि अनेकों समाजिक स्तरों की मार्यादा तथा उनका महत्व लोक काव्य में भरा पड़ा है । इस प्रकार से जब हम लोक काव्य के अंतरंग में प्रवेश करते हैं तो हमें उसकी उपयोगिता के अनेक पहलू दृष्टिगोचर होते हैं । यह लोक काव्य बहुत व्यापक तथा मनोरंजक है । अधिकांश लोक साहित्य स्त्री समाज द्वारा प्रयुक्त तथा स्त्रीयोपयोगी है । सामाजिक मूल्यों की जितनी रक्षा लोक काव्य के माध्यम से होती है उतनी अन्य साधनों से नहीं । लोक कथा, भक्त पूरन मल के चरित्र में उसकी सौतेली मां द्वारा मोहित हो जाना व्यर्थ जाता है । सत्यवान और सावित्री के पवित्र प्रेम के सावित्री द्वारा अपने निश्चय से अडिग रहना बेजोड़ मर्यादाओं के उदाहरण हैं । इसी प्रकार भाभी भक्त हरदौल के चरित्र को जुझार सिंह द्वारा कलंकित करना चंद्रमा पर धूल डालने के बराबर है। यह समस्त लोक कथायें लोक काव्य की अमूल्य धरोहर हैं तथा सामाजिक मूल्यों की संस्थापक हैं तथा रक्षक हैं । हमारा बुन्देली लोक काव्य ऐसी ही आदर्श कथाओं से भरा पड़ा है । अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लोक काव्य सामाजिक मूल्यों का रक्षक तथा समाज का चरित्र निर्माता है ।

पुत्री की विदा मे स्त्रियाँ, पुत्री की माँ, वास्तव में रो पड़ती हैं । पिता माता तथा भाई के दुख का सागर उमड़ पड़ता है । निम्नांकित गीत में कितनी सुन्दर भावना परिलक्षित होती है ।

भइया के रोये चुनरियाऊ भीजै,
बबुल कुसवारी डार
दे दे दुपट्टा ऊके वीरन रोवें,
मेरी मैना चली ससुरार।
भावज के जिय आनन्द भयो है,
मेरी भलेऊ ननद घर जाय ।

उसी प्रकार बेटी के प्रति पिता माता एवं भाई का प्रेम देखिये-

बाबा कहें बेटी दस कोस वियेहौं ,
भैया कहें कोस पांच ।
माता कहें बेटी नगर अजुध्या,
नित उठ प्रात नहाऊँ ।

1.3. बुन्देली लोककाव्य मनोरंजन के साधन के रूप में

समस्त लोक साहित्य लोक हृदय की पवित्र अभिव्यक्ति होता है । इस साहित्य के माध्यम से समाज के प्रत्येक श्रेणी के लोग अपना मनोरंजन करते हैं । लोक साहित्य अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में वहाँ के जन मानस को आनन्दित करता है । बुन्देली लोक साहित्य में समाज के प्रत्येक व्यक्ति-बूढ़े, प्रौढ़, किशोर, बालक आदि सभी के लिए मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री भरी पड़ी है । बालक खेल ही खेल में लोक काव्य गाते जाते हैं और थकान का नाम भी नहीं आता है । स्त्रियाँ कृषि कार्य करती जाती हैं । फसल काटती जाती हैं और अपनी कोकिल कंठी वाणी से गीतोच्चारण करती हैं । समूह गान गाती हैं दिन के दिन व्यतीत करती हैं ओर थकान का अनुभव नहीं होता है । कृषक रामा गाते हुए रातों रात बुवाई करते हैं और रात भर का समय मिनटों में व्यतीत हो जाता है । तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य की जन जीवन में इतनी व्यापकता है कि पल पल पर तथा पग पग पर यह हमें आनन्दित करता चलता है । जागरण काल बृह्मम मुहुर्त में स्त्रियों आटा चक्की पीसतीं हैं तथा सुमधुर गीत गातीं हैं । इन गीतों में पर्याप्त मनोरंजन की सामग्री तथा उपदेश और ज्ञान भरा पड़ा है पिसाई के समय में कोई भी सुखद गीत गाया जा सकता है । उदाहरणार्थ -

1- जिन करियों मान गुमान उमरिया,
चार रोज की है पावनी
एं अरे हां हो उमरिया
चार रोज की है पावनी -
वा तो है उरिया की छांव हो उमरिया
चार रोज की पावनी
ऐ अरे हौं हो -
काया देख गंरवियो ना हो उमरिया
चार रोज की है पावनी -----------

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

इन गीतों में पर्याप्त ज्ञान व मनोरंजन है । वेदान्त का उच्च उपदेश सरलतम भाषा में व्यक्ति के हृदय को छू जाने वाला मनोरंजन होता है । इस धार्मिक सामाजिक ,राष्ट्रीय, सांस्कृतिक ,व्यावहारिक आदि अनेक, प्रकार के गीत गाये जाते हैं । एक राष्ट्रीय गीत देखिये जिसमें रानी झाँसी के यश का वर्णन है -

अपनो नाम कमा गयीं जग में,
कर गयीं शोर विकट भारी
बाई साब झाँसी वारी ।

बुण्देलखण्ड में मेलों के अवसरों पर धार्मिक अवसर पर, संस्कारों के अवसरों पर ब्याह आदि के शुभावसरों पर गाये जाने वाले उत्कृष्ट लोक साहित्य के गीत हैं जो सबके लिए स्वास्थ्य मनोरंजन प्रदान करते हैं । कन्छेदन ,मुंडन, जन्मोत्सव, वर्षगाँठ, कुंवर कलेवा, द्वाराचार, चढ़ावा, भांवरियाँ, टीका, विदाई आदि विविध रूपों में यह लोक साहित्य समाया हुआ है ।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि इस बुन्देली का परम्परागत लोक साहित्य संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है और मनोरंजन के सक्षम साधन के रूप में लोक मानस में तरंगित होता रहता है तथा होता रहेगा ।

1.4. बुन्देली लोककाव्य लोक संस्कारों को सजीव रखता है:-

यदि जीवन में लोक साहित्य न हो तो जीवन पूर्णतः नीरस हो जायेगा । तीज त्यौहारों में संस्कारों में यदि लोक काव्य न हो तो वे सूने और आनन्द हीन हो जायेंगे । मनुष्य प्रतिदिन जीविकोपार्जन के कारण कठोर श्रम करता है । जीवन में समय समय पर होने वाले विभिन्न संस्कारों के सम्पन्न होने से तरोताजगी हो जाती है । यह नवस्फूर्ति इसी लोक साहित्य के सुमधुर गीतों की ही देन है । इस प्रकार बुन्देली संस्कृति तथा संस्कारों की शोभा में चार चांद लगा देना लोक साहित्य का कार्य है । यदि कोई संस्कार या रस्म रिवाज बिना गीत गाये सम्पन्न होता है तो वह आनन्द विहीन रहता है । उदाहरण के लिए यदि विवाह संस्कार में लोक काव्य गीतों को निकाल दिया जाये तो आनन्द नहीं आयेगा और विवाह का उपक्रम प्रारम्भ होते ही गीतों की बौछार होती रहे तो आदि से अंत तक आनन्द की असीम वृष्टि होती रहती है । मटियानों व्याह के लिए मिट्‌टी लेने के समय स्त्रियों झुण्ड के झुण्ड गाती हुई जाती हैं । समूह गान के रूप में सुन्दर गीतों की स्वरधारा प्रवाहित करतीं चलती हैं -

उदाहरण -

वर पै डारो पालना पीपर पै डारी डोर लला
बरसन दो कारे बदरा ।।

गीतों में अपार आनन्द आता है । शादी के लिए अनाज छानने बीनने का समय आने पर बुलौआ दिया जाता है । औरतें अपने अपने सूप लेकर आतीं हैं उन्हें हल्दी से टीका जाता है स्त्रियों सुमधुर वाणी में गाती हैं -

हस्नापुर से चाँवर मगाँ लये
दये हरदी मोय-मोरी भुंमर कली
पैलो न्योतो बड़ी माई खां दीनों
सो कारज आन समारौ-मोरी भुमर कली ।
दूजौ न्यौता हरदौल जू खा' दीनों

सो कारज आन समारौ -मोरी भुमर कली
तीजौ न्यौतौ मेरे बाबा खां दीनों
सो कारज आन समारी-मोरी भुमर कली ।

इसी प्रकार से शुभावसर प्रारम्भ होते ही निमंत्रण देना कितना मधुर होता है कितना सुन्दर प्रतीत होता है । यह हमारे लोक काव्य की ही देन है -यथा-

जौ मोरो न्योतौ री लेव-स्याई माई
जो मोरौ न्योतौ री लेव
पाँच सिपइया' हरद जू गठियां सो
वीरा बतासा संगे लेव-
गनेश बब्बा-जो मोरौ न्योतौ लोव ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

विवाह संस्कार के बन्ना गीत, बन्नी गीत किसे मोहित नहीं करते हैं । विवाह कराने वाला वर बन्ना कहलाता है ' ।

बन्ना गीत सैकड़ों प्रकार के हैं जैसे-

बन्ने पाल तेरे जिन जाव,
नजरिया लग जैहें रे ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

मारौ छत्र साल राजन सौ बनरा,
कीने विलमाये जू ।
अवेरे दूला क्यों सजे महाराज
बन्ना के आजुल को बड़ौ परिवार
सजत बेरा हो गई महाराज ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

आदि गीत पत्थर हृदय में भी प्राण फूंक कर मंत्र मुग्ध कर देते हैं । विवाह संस्कार में द्वाराचार गीत देखिये -

कोट नवै परवत नवे सिर नवत नवायें ।
अजुल जू कौ माथौ जबै नवै-
जबै घरै साजन आये ।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

स्त्रियों गालियां दे देकर गारीं गाती हैं -

हमने खबर ना पाई हो,
लाला कब के आये ,-
परों निगे ते काल बसे ते
आज हमारे आये-हो
छिनरा कब के आये ।

इस प्रकार का यह लोक साहित्य हमारे समस्त संस्कारों को शोभनतम बना देता है । विदा के समय नारियाँ कन्या को समझातीं है तथा गाती हैं-

उनके आजुल ने बोले हैं, बोल
निभाउन बेटी तुम चलियो उनके
बाबुल ने बोले हैं बोल ।

अपने सजन समधियों के प्रति गातीं हैं -

आज घरै ना जइयो समधी,
आज घरै ना जइयो लाल
चुनी भुसी की खइयो, समधी
आज घरै ना जइयो लाल
आज घरै ना जइयो लाल ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जाने व देंव सजन खा' जाने व देवों लाल
घुघटा दे विलमा लों सजन खों,
जाने ना देवों लाल ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे इस काव्य ने समस्त संस्कारों को सजीव बना दिया है । अगर ये लोक गीत न होते तो लोक काव्य न होता तो लोक जीवन में निराशा और दुख की मात्रा बढ़ी हुई दिखाई देती । संक्षेप में सोलह संस्कार लोक काव्य के परम्परा गत तथा सामयिक नवीन गीतों से भरे पड़े हैं, और आनन्द का अजस्त्र स्रोत प्रवाहित करते रहते हैं ।

वर्तमान समय में आकाशवाणी केन्द्र छतरपुर इस दिशा में महत्व पूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है । लोक गीतों के नियमित प्रसारण से इस क्षेत्र में सैकड़ों लोक कवियों को प्रोत्साहन मिला है तथा लोक साहित्य की श्री वृद्धि हुई और लोक जीवन में उल्लास आया है ।

1.5. बुन्देली लोककाव्य लोक कलाओं के रक्षक के रूप में

अनेक लोक कलायें अपना अस्तित्व लोक काव्य के कारण ही बनाये हुए हैं । जैसे लोक नृत्य का अस्तित्व लोक काव्य के कारण ही बना हुआ हैं । जैसे लोक नृत्य लोक संगीत, लोक गायन कला आदि का सुन्दर समन्वय लोक काव्य से हैं । एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नगण्य है । लोक गीतों के गायन चलने के साथ साथ कलाओं का प्रसारण व उनका परम्परागत रूप चलता जाता है । उदाहरणर्थ- चौकपूरना, गुदना गुदवाना, जौरतें लिखना, सुअटा श्रृंगार, गौरी पूजन 'तीजा' व्रत आदि अवसरों पर लोक कलाओं का लोक काव्य के साथ समन्वय दिखाई देता है ।

डा0 राम स्वरूप श्रीवास्तव स्नेही जी ने ठीक ही कहा है-

"बुन्देल खंड की नारियां घरों के बाहर भीतर देवी देवताओं के कथा चित्र अंकित करतीं हैं । प्रत्येक त्यौहार पर उसके अधिष्ठाता देवता और उसके सहचरों का अंकन किया जाता है । आरोग्य रिद्धि सिद्धि प्रदायक विघन विनाशन देवता गणेश का चित्र मंगलमय अवसरों पर बनाती हैं तथा लक्ष्मी का चित्र दीवाली की अमावश्या की रात्रि को बनाकर पूजन करती हैं ।"

विवाहादि के शुभ अवसरों पर मैर की पूजा मैर देवता का चित्राकंन, गोवर गणेश की प्रतिमा बनाना, संक्रांति के अवसर पर हाथी घोड़े 'घुल्ला' घुड़ला आदि के मिट्टी व मिठाई के बने आकार अक्षय तृतीया के आकार पर चक्की व पुतले पुतलियों की मूर्तियाँ आदि चित्र तथा मूर्ति कलाओं को जनक यही लोक काव्य है । पिसे हुए रंगों, घुले हुए रंगों, आटा, हलदी, आदि पदार्थों का प्रयोग इस लोक चित्रकारी में होता है । लोक जीवन का सौन्दर्य इस सांस्कृतिक कलाकृतियों से द्विगुणित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि लोक काव्य में ही इन कलाओं के रक्षण की स्वमेव है । एक के प्रयोग में दूसरे का सम्मान स्वतः निहित हैं । इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में लोक काव्य के माध्यम से यह कलायें युगों से चलीं आ रहीं हैं तथा चलतीं रहेंगी ।

1.6. बुन्देली लोककाव्य सामाजिक सद्भाव का स्त्रोत है

लोक साहित्य का क्षेत्र. लोक मानस है । जन मानस सामाजिक अवसरों पर एक दूसरे से हृदय खोलकर मिलता है । उदाहरणार्थ –दीपावली के अवसर पर गोवर्धन पूजा में दिवाई गीत 'चाचर' नृत्य में विभिन्न स्थानों से आयी हुई चाचर मंडलियाँ सम्पर्क में आती हैं । प्रतिस्पर्धा करतीं है। तथा आपस में परिचय कर प्रेम सदभाव का वातावरण उत्पन्न करती हैं । ठीक इसी प्रकार से होली के अवसरों पर गायी जाने वाली फागों में विभिन्न फाग मंडलियाँ आकर अपना कमाल दिखातीं हैं । कोई भी मंडली जीते परन्तु उनमें एक दूसरे के प्रति सम्मान व प्रेम की भावना सुदृढ़ होती है ।

इस प्रकार बुन्देली का लोक काव्य निःसन्देह रूप से इस क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है । कीर्तन मंडलों के जवाबी कीर्तन, भजनों की स्पर्धा, रावला, नौटंकी, ढोला, ख्याल, लोक गीत आदि अनेक विधायें सामाजिक सद्भाव के विशुद्ध पर्यावरण बनाने में सहायक है । एक स्थान के कलाकार दूसरे स्थानों के कलाकारों के विचारों से अवगत होते हैं तथा प्रेम ओर सौहार्द की सृष्टि होती है ।

1.7. बुन्देली लोककाव्य सामाजिक परम्पराओं का रक्षक है

लोक साहित्य प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं का रक्षक ही नहीं अपितु उनको गतिशील बनाता है । उदाहरणार्थ- रक्षा बंधन के अवार पर भुजरियाँ निकलतीं हैं । कहीं कहीं इन्हें कजरियाँ भी कहते हैं । इस समय 'कजरी' गीत गाने की परम्परा है । मिट्टी के पात्रों को आधार करके खप्परों में जवारे बो दिये जाते हैं । यह भी परम्परा है जो चलती है । इस समय सावन को झूम-झूम कर स्त्रियाँ गाती हैं -यथा-

सावन महीना माई नियरे अमाना जू
अमाना सीगां तुमरी बहिन परदेश हो राजा
सबकी बहनियाँ खेलें चपेटा,
तुमारी विसूरे परदेश हो राजा
काना धरे भाई सिर के स्वापा
काना धरे हथियार हो राजा
वक्सा धरे बेटा सिर के स्वापा
ड्योढ़ा धरे हथियार हो राजा ।
काना धरै भाई जीना पलेंचा ।
काना धुरल की लगाम हो राजा ।।

प्रस्तुत लोक काव्य परम्परागत रूप से चला आ रहा है । इसमें बड़ी लोक गाथा का वर्णन है । तात्पर्य है कि यह परम्परा लोक साहित्य से ही सजीव है । इसी प्रकार से फागोत्सव में रंग गुलाल द्वारा गीत गाकर फाग खेलने की परम्परा है । जो बुन्देली लोक काव्य से जीवित रहती है । गायक गाते हैं तथा रंग डालते हैं । गुलाल टीकते हैं । एक फागोत्सव का गीत देखिये-

हेरन हंसन मुनियां की प्यारी

हेरन हंसन मुनियां की लाल
पटियां पारें मांग संवारें
धरें खेप पनियां की -प्यारी हेरन
भर भर वैयां चुरियां पैरें
मै बेटी बनियां की -प्यारी हेरन-
लेली चोली गुलाबी धोती,
शोभा करधनियां की न्यारी हेरन-
हंसन मुनियां की लाल ।

इस प्रकार से विभिन्न सामाजिक परम्पराओं को सजीव रखने में लोक साहित्य की निराली भूमिका है । परिवार में जन्म संस्कार, मुन्डन संस्कार, विवाह संस्कार आदि की हजारों परम्परायें है जिन से यह समस्त संस्कार सम्पन्न होते हैं । विशेषता यह है कि इन समस्त परम्पराओं के बिना बुन्देली लोक काव्य का आनन्द पूरा नहीं होता है । उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध है कि बुन्देली लोक काव्य मानस की रग रग में समाया हुआ है, तथा सामाजिक परमपराओं का रक्षक और पोषक है ।

1.8. बुन्देली लोककाव्य साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने में सहायक है

समाज में विभिन्न प्रकार के साम्प्रदाय होते हैं परन्तु लोक साहित्य मंडल के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदायों के लोग एक परिवार के सदस्यों की भॉति रहते हैं । आपस में बहुत ही स्नेह प्रदर्शित करते हैं । यह पूर्णतः सत्य है कि लोक साहित्य में साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने की अद्भुत क्षमता है । बुन्देल खंड में प्रसिद्ध बुन्देली लोक गीत गायक तथा आकाशवाणी के कलाकार श्री के0 खान तार बाबू हिन्दू सम्प्रदाय, हिन्दू धर्म के गीत बड़ी तन्मयता से गाते हैं जिन्हें पूरा लोक सुनता है। इसी प्रकार श्री राजेश मुहम्मद रामचरित्र की कथा कहते हैं । श्री राजाराम जी गड़रिया सुन्दर कब्वालियाँ प्रस्तुत करते हैं ।

तात्पर्य कहने का यह है कि लोक साहित्य सम्प्रदायवाद की संकुचित अनुभूति से परे हैं तथा विशाल समन्वय वाद के सद्भाव के प्रांगण में विचरण करता है।

बुन्देली लोक गीत गायन मंडली में विभिन्न सम्प्रदायों के गायक अभिनेता एवं कलाकार होते हैं । उनमें एक परिवार के सदस्यों जैसी विशाल हृदय भावना का स्वतः विकास होता है । 'ड्रामा पार्टियाँ ' संगीत, नौटंकी, मंडलियाँ आदि इसके सशक्त प्रमाण हैं । इसलिए लोक साहित्य से सम्प्रदायवाद का प्रदूषण दूर करने में पर्याप्त सहायता मिलती है ।

1.9. बुन्देली लोक काव्य जीवन को सतत चेतना देने में सहायक है

लोक साहित्य में जीवन को निरंतर चेतना देने की विलक्षण शक्ति है जो अन्य प्रकार के साहित्य में इतनी नहीं । क्षण-क्षण और कदम कदम के बुन्देली लोक गीत लोक काव्य ही प्रदान करता है । बुन्देली लोक काव्य सामान्य जन मानस को चेतावनी भी निराले ढंग से देता है । बुन्देली लोक काव्य की चेतावनी का तीर मानस पर सीधा तीर की तरह जा चुभता है ।

सामाजिक त्यौहारों के समय बुन्देली लोक काव्य के गीतों से जन-जीवन में नयी चेतना, नई स्फूर्ति तथा नया पर्यावरण बनता है । जीवन की नीरसता को कम करना तथा नई दिशा की ओर अग्रसर कराने में लोक साहित्य अपनी उत्तम भूमिका अदा करता है । यदि बुन्देली लोक काव्य न

होता तो बुन्देली जीवन में अंधेरा, निराशा, कुंठा तथा आलस्य का साम्राज्य छा जाता । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि बुन्देली लोक काव्य जन जीवन को चेतना देकर दैनिक जीवन के कार्यों से थके मादे लोक मानस को स्फूर्ति व गति प्रदान करता है । उदाहरणार्थ चाचर बुन्देली लोक नृत्य में लोक काव्य का प्रयोग करते हुए फागोत्सव के रंग से सरावोर गीतों को गाते हुए कौन चिन्ता करता है जमाने की । गायक ब्रह्ममानन्द का अनुभव करते हैं तथा इस बुन्देली लोक काव्य के माध्यम से वे परम हंसी गति की अवस्था के समान आनंद उठाते हैं । इसी प्रकार बाल, वृद्ध, युवा 'स्त्री-पुरुष' आदि सभी को यह लोक काव्य सतत् रूप से आनन्द व चेतना के प्रति प्रेरणास्पद है ।

1.10. बुन्देली लोककाव्य ही लोक जीवन है

'साहित्य समाज का दर्पण है' की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार लोक साहित्य बुन्देली लोक का दर्पण है । लोक साहित्य में ही वह क्षमता है जो बुन्देली लोक की दिनचर्या को सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में वर्णन करता है । खेलना, खाना, हंसना, उठना-बैठना, रोना, घूमना, प्रेम सेवा, सहयोग, आदि समग्र भावनाओं का सुंदर चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध है तथा जैसा लोक साहित्य द्वारा लोक जीवन का सफल चित्रण सम्भव है वैसा अनन्य प्रकार की साहित्य विद्या से संभव नहीं है । प्रसिद्ध बुन्देली लोक कवि 'ईसुरी' ने नायिका के दरवाजे से निकलते समय दिरोंदा, लग जाने का भी वर्णन किया है । यथा -

कड़तन लग पोर दिरोंदा, करो न सिर को औदा ।

तात्पर्य कहने का यह है कि जब हमें किसी समाज का अध्ययन करना हो तो हम उसके साहित्य का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं । इसी प्रकार बुन्देली लोक साहित्य के अध्ययन से हम लोक जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण कर सकते हैं । जीवन के संस्कार, जीवन के कार्य, जीवन का उल्लास आदि समस्त आयामों की उपस्थिति बुन्देली लोक साहित्य में ही उपलब्ध है ।

1.11. बुन्देली लोककाव्य का उपदेश परक रूप

लौकिक जीवन में अशांति कलह तथा मायादि के दुखों से छुटकारा पाने के लिए पारलौकिकता के सुन्दर उपदेश सरल व सीधी सादी भाषा में भरे पड़े हैं । जिनसे जन जीवन में शांति व सुख का अविर्भाव होता है । एक नव जीवन की किरण का प्रकाश चमक उठता है । महान लोक कवि ईसुरी ने निम्न पंक्तियों में कितना सुन्दर उपदेश दिया है ।

बखरी रहयत है भारे की,
दई पिया प्यारे की ।
वे वन्देज पड़ी बे वाड़ा
जेई में दस द्वारे की ।
किवार किवरियां एकऊ नैयां ।
छाई फूल चारे की ।
ई बखरी के दस दरवाजे
बिना कुची तारे की ।
जब चाये लै लेंय,ईसुरी
हमें कौन उवारे की ।।

1.12. बुन्देली लोककाव्य में राष्ट्रीय एकता

लोक साहित्य का अस्तित्व केवल हंसने ,खेलने तीज, त्यैहार मनाने तथा सामाजिक व धार्मिक समयों पर प्रयुक्त होने के कारण ही नहीं है अपितु प्रत्येक लोक साहित्य में वहाँ की जन्म भूमि की गरिमा भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है जिन जीवन को वहाँ की प्रकृति प्रभावित करती है । प्रकृति सौन्दर्य के प्रति सहज अनुराग, अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा तथा राष्ट्रीय गौरव की महत्ता का आधार बुन्देली लोक साहित्य है । बुन्देली लोक साहित्य की भूमि में ही राष्ट्रीय एकता के बीज प्रस्फुटित होते हैं । बुण्देलखण्ड के प्रसिद्ध लोक कवि स्व0 श्री राम सहाय जी कारीगर ने राष्ट्रीय एकता व राष्ट्र प्रेम के बुन्देली लोक गीत उस समय में प्रसारित किये जब कि देश में विदेशी सत्ता का बोल वाला था । इसी प्रकार से अन्य लोक कवियों में स्व0 श्री भोगी लाल सेठ 'लालन' गुरसरॉय, मुंशी राम सहाय आदि अनेक कवियों के काव्य में राष्ट्र प्रेम की भावना आन्दोलित होती दिखाई देती है । उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के स्वर उभारे । अतः राष्ट्रीय भावना की दृष्टिं से भी लोक काव्य का अधिक महत्व है ।

अतः समग्र रूप से यह कहा जा सकता है। कि लोक साहित्य में समाज के चतुर्मुखी विकास करने की प्रबल क्षमता है। लोक साहित्य लोक कल्याण का स्रोत है।

2. बुन्देली के रचनाग्रंथ

(2.1.) प्रकाशित
(2.2.) अप्रकाशिक

2.1. प्रकाशित ग्रंथ

क्र0स0	ग्रथ	रचनाकार
01	हरदौल चरित्र	श्री रनमत सिंह सिसोदिया 'टाकुर'
02	हेमलता	मुंशी अजमेरी
03	मधुकर	,,
04	गोकुलदास	,,
05	चिमांगदा	,,
06	रवीन्द्र साहित्य संस्मरण	,,
07	सोहराव रूस्तम नाटक	,,
08	मदमद मियां की कहानी	,,
09	भालूराम कालू संवाद	,,
10	वीर वधू	श्री नाथूराम माहौर
11	सूर सुधानिधि	महौर अभिनन्दन ग्रंथ
12	वीर वाला	,,
13	दीन का दावा	,,
14	व्यंग विनोद	,,
15	गोरी बीबी	,,
16	बाल विवाह बिडम्बना	घनश्याम दास पाण्डेय

17	प्राणयाम प्रक्रिया	"
18	कूट प्रश्नावली	"
19	गॉधी गौरव	"
20	भगवत भजनमाला	"
21	फाग हीराखन	शम्भू दयाल नायक
22	फाग हरगु बहार भाग-1,भाग-2	शम्भू दयाल नायक
23	संगीत हरदौल चरित्र	"
24	जयद्रथ वध	मैथलीशरण गुप्त
25	रंग में भंग	"
26	भारत भारती	"
27	पद्रय प्रबंध	"
28	तिलोत्तम	"
29	चंद्रहास	"
30	किसान	"
31	बैतालिक	"
32	शकुन्तला	"
33	पत्रावली	"
34	पंचवटी	"
35	अनघ	"
36	स्वदेश संगीत	"
37	हिन्दू	"
38	त्रिपथगा	"
39	शक्ति	"
40	गुरुकुल	"
41	विकटभट	"
42	झंकार	"
43	साकेत	"
44	यशोधरा	"
45	मंगलघट	"
46	द्वापर	"
47	सिद्धयज	"
48	नहुष	"
49	कुणालगीत	"
50	अर्जुन विसर्जन	"
51	कावा और करवला	"
52	विश्व वेदना	"
53	अजित	"
54	प्रदक्षिणा	

55	पृथ्वी पुत्र	,,
56	जयभारत	,,
57	फाग आदि पर्व	श्री धनश्याम दास मिश्र
58	गौ रक्षा प्रबोधनी	,,
59	मरसी भक्त लीला	,,
60	गारी रामवतार	संत श्री कड़ोरे लाल
61	सुरमानी(प्रथम पुष्प)	केशव प्रसाद नायक
62	सरस के एटमबम	श्री सरमन लाल जैन
63	सरस के समोसे	,,
64	सरस के दही बड़े	,,
65	सरस की कचौड़ियाँ	,,
66	सरस की टिकियाँ	,,
67	फिल्मी फुलझड़ियाँ	,,
68	घरवाली घरवाला	,,
69	भगवान मुझे घरवाली दो	,,
70	जीजा की जलेबी	,,
71	जीजा साली	,,
72	संकट मोचन पत्नी चालीसा	,,
73	पत्नी के चमचे	,,
74	हिजड़ो की हुडदंग	,,
75	बुन्देली हास्य गीत	,,
76	प्रेरणा के स्वर	,,
77	गीतों का गंगाजल	,,
78	बुन्देली के जैन तीर्थ	,,
79	दहेज के दीवानों से	,,
80	धरती के वरदान	,,
81	राजुल के आंसू	,,
82	चंदन वाला के आंसू	,,
83	मुक्ति द्वार	,,
84	किस्मत का करिश्मा	,,
85	आजादी का प्रथम युद्ध	,,
86	मोक्ष के मोती	,,
87	भक्त पर महिमा	,,
88	मुक्ति द्वार	,,
89	नमोकार मन्त्र का फल	,,
90	चालीसा संग्रह	,,
91	पपौरा बैभव	,,
92	सोनागिरि 'सुषमा'	,,

93	दिव्य देवगढ़	”
94	कलात्मक सेरोंजी	”
95	सिद्धक्षेत्र कोसी जी	”
96	पहार गौरव	”
97	द्रोण गिरि दर्शन	”
98	पावागिरि दर्शन	”
99	बंधा महिमा	”
100	उषा अनिरूद्ध	भारत शाह
101	हनुमान विरदावली	”
102	नूतन गारी विनोद	पं० दुर्गा प्रसाद 'मिश्र'
103	सुन्दर काण्ड (फाग)	”
104	माखन चोरी लीला	”
105	श्रृंगार नौरस	हृद्धेश वन्दीजन
106	शिव-शिवा स्तवन	पं० गोविन्दास विनीत
107	महाभारत	”
108	श्रीमद भागवत	”
109	रामायण	”
110	गोविन्द गीता	”
111	ब्रह्मनन्द भजन माला	”
112	कृष्ण कथामृत	”
113	प्रिया या प्रजा	”
114	आग	”
115	हत्यारा	”
116	समाज	”
117	भम के बादल	”
118	नथनी का भार	”
119	सोया सुहाग	”
120	पाप का घड़ा	”
121	नहीं तो संघर्ष	”
122	तिलक	”
123	भक्त सूरदास	”
124	विल्व मंगल	”
125	वीर अभिमन्यु	”
126	दानवीर कर्ण	”
127	अमरसिंह राठौर	”
128	सावित्री-सत्यवान	”
129	पृथ्वीराज चौहान	”
130	भक्त प्रहलाद	”

131	भक्त पूरनमल	"
132	वीर शिवाजी	"

2.2. अप्रकाशित ग्रंथ

क्र0सं0	ग्रंथ	रचनाकार
01	श्रृंगार चौबीसी,कलयुग आगमन	श्री रनमत सिंह सिसोदिया 'टाकुर'
02	जिहाजी (कविता संग्रह)	"
03	कबीरदास नाटक	"
04	रामकथा (रामलीला, आठ खण्ड)	"
05	मन तरंग सागर (भाग-1)	भोगीलाल सेठ
06	मन तरंग सागर (भाग-2)	"
07	मन तरंग सागर (भाग-3)	"
08	हरदौल चरित्र	घनश्याम दास पाण्डेय
09	छत्रसाल बावनी	"
10	प्रतापोल्लास	"
11	लक्ष्मी सम्मुल्लास	"
12	पावस प्रमोद	"
13	नरसी मेहता	"
14	किरातार्जुनीय	"
15	व्यंग विनोद	"
16	शान्ति दर्शन	पं0 गोविन्दास विनीत
17	बेगारू शासन तथा आदि तत्व विवेचना	चतुर्भुज शर्मा , चतुरेश
18	अवध निर्णय	"
19	दान लीला	"
20	नवधा भक्ति	"
21	मन प्यारे की फागें	"
22	गौ पुकार	"
23	मन आनन्द करन	राम सहाय कारीगर
24	नई टकसार	"
25	अधर रामायण	"
26	अधर आला	"
27	अटका प्रकाश	"
28	ज्योतिष सरल ज्ञान	राम चरण लाल मिश्र
29	सत्य नारायण कथा	"
30	ज्योतिष सार	"

31	उर्मिला चरित्र	गया प्रसाद विदुवा शास्त्री
32	चक्रव्यूह	घासीराम व्यास
33	बाल कृष्ण चरित्र	,,
34	कर्ण	,,
35	जीवन ज्योति	,,
36	रूकमणी मंगल	,,
37	फाग साहित्य	,,
38	ऋतु वर्णन	,,
39	नायिका भेद	,,
40	कुरूक्षेत्र	,,
41	नवरस	,,
42	राम त्रिवाचा	प्यारे लाल द्विवेदी
43	विराध वध	,,
44	गर्जन	,,
45	कलयुगी आला	अछरू सिंह सोलंकी
46	इन्द्रायन	मोतीलाल भट्ट
47	किसान दोहावली	,,
48	गीतिका	,,
49	कुण्डलियाँ सरोवर	श्री रामण लालराय
50	भजनांजलि	देवी प्रसाद उर्फ देवीदास गुप्त
51	श्री सीता वनवास(द्वितीय पुष्प)	केशव प्रसाद नायक 'केशव'
52	आराधना (तृतीय पुष्प)	,,
53	प्रेमाक्षत	,,
54	दीन बन्धु	,,
55	ईशोपनिषद	,,
56	सरकार का स्वाभाव	,,
57	झाँसी का पानी	श्री शर्मन लाल जैन
58	कुछ धूप कुछ छाँव	,,
59	सरस सुधा	,,
60	जन जागरण गीत	,,
61	गौरक्षा प्रकाश (फाग)	श्री नाथूराम
62	चूहा प्रकाश (फाग)	,,
63	लाखन का गौना (फाग)	,,
64	ब्रज दीपिका	नवल सिंह कायस्थ
65	रसिक रंजनी	,,
66	विज्ञान भास्कर	,,
67	नाम चिंतामणि	,,
68	मूल भारत	,,

69	भारत सावित्री	,,
70	भाषा सप्तशती	,,
71	जौहरिन तरंग	,,
72	संकट मोचन	,,
73	रामचन्द्र विलास	,,
74	रास पंचाध्यायी	,,
75	शुक्ररंभा	,,
76	संवाद	,,
77	कवि जीवन	,,
78	आल्हा रामायण	,,
79	नारी प्रकरण	,,
80	सीता स्वयंवर	,,
81	राम विवाह	,,
82	खण्ड	,,
83	भारत वार्तिक	,,
84	रामायण सुमरिनी	,,
85	पूर्व श्रृंगार खण्ड	,,
86	मिथिला खण्ड	,,
87	दान लोभ संवाद	,,
88	जन्म खण्ड	,,
89	जयद्रथ वध	पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र
90	ऋतु वर्णन	,,
91	रामलीला संवाद	,,
92	हिन्डोल कुंड	रामचरण गुप्त
93	रहस्य रामायन	,,
94	सीताराम दम्पति विलास	,,
95	मनसाधन	अयोध्या प्रसाद अग्रवाल
96	महावीर अष्टव	श्री गोसाई निधान गिरि
97	नायिका भेद	मदन मोहन द्विवेदी 'मदनेश'
98	ऋतु वर्णन	,,
99	बुन्देली केनाऊतें	,,
100	लक्ष्मीबाई रासों	,,
101	हनुमान पच्चीसी	चतुरेश नीखरा
102	झाँसी की रानी का रायसा	,,

3. बुन्देली भाषा की उपादेयता

बुण्देलखण्ड का लोक काव्य अधिकांश बुन्देली में है । यह बुण्देलखण्ड के हृदय की भाषा है। परन्तु जब हम इस काव्य के अंतरंग में प्रवेश करते है तो हमें यह लोक काव्य विशुद्ध बुन्देली में नहीं मिलता। इसका कारण यह रहा है कि लोक काव्य के प्रणेता कवि या तो अल्प शिक्षित रहे है या अशिक्षित के तुल्य । अतः उनकी भाषा में खड़ी बोली, बुन्देली, चलती उर्दू, फारसी के शब्दों का जाने अनजाने में प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा भी संत कबीर दास जी की भाँति खिचड़ी भाषा बन गई है। परन्तु हम इसे व्यवहार या बोल चाल की भाषा कह सकते हैं। यही भाषा अपने अनतनिहित भावों को लौकिक धरातल पर खड़ा करने में पूर्ण समर्थ होती है। कहीं कहीं पर अंग्रेजी के सरल शब्दों का भी प्रयोग है। जिन्हें या तो निर्दोष लोक कवियों ने हिन्दी का ही माना अथवा हिन्दी परिवार में घुल मिल कर वे हिन्दी के से बनकर आ गये है। लोक काव्य की भाषा में बनावटी पन बिल्कुल नहीं है। यह भाषा विशुद्ध हृदय के प्रत्यक्ष भावों का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने खड़ी बोली के साहित्यकारों पर ही दृष्टि डाली और बुन्देली भाषा के रससिद्ध समर्थ कवि उस इतिहास में न आ सके। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ब्रजभाषा के कवि अन्य भाषाओं के कवि भी स्थान पा गये, परन्तु मेरे मत से बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास और इसकी रचना का वृहत कार्य अपूर्ण ही रहा है। जैसा कि प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर जी ने लिखा-

"बुन्देली साहित्य और संस्कृति ने भारत के निर्माण में बहुत योगदान दिया है। भारतीय स्वाधीनता की रक्षा के लिए न जाने कितने बुन्देली वीर और वीरांगना में बलि वेदी पर चढ़ गयी इसी तरह हिन्दी साहित्य का इतिहास बुन्देली भाषा के कवियों के बिना अधूरा ही रहेगा..............।"

श्री विष्णु प्रभाकर बुण्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य लेखक- श्री रामचरण हयारण "मित्र" (बुन्देली शोध संस्थान, झाँसी) पूर्णतः स्पष्ट है और निर्विवाद सत्य है कि बुन्देली भाषा के कवियों द्वारा यही लोक काव्य आविर्भूत हुआ। इस लोक काव्य के अन्तर्गत लोक कवियों ने रसों का सागर भर दिया है। बुन्देली भाषा के प्रति निधि कवियों में लोक कवि 'ईसुरी' ने अमरत्व प्राप्त किया है। इसका कारण यही है कि उनके लोक काव्य की भाषा में अलंकारों की चकाचौंध नहीं है। शब्द आडम्बर का भूत उन्हें नहीं लग पाया। लोक काव्य की भाषा जन साधारण की भाषा है, बोल-चाल की भाषा है, वह सीधे हृदय से निकली बात है अतः प्रभावशाली है। ईसुरी के लोक काव्य की भाषा में सरलता व प्रवाह है उसमें हृदय पर प्रभाव डालने की क्षमता अधिक है। उदाहरण देखियेः- उनकी प्रसिद्ध आध्यामित्क चौकडियाँ-

1- बखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
ई बखरी के दस दरवाजे, बिना कुची तारे की।।
किवार किवरिया एकऊ नइयाँ, छाई फूस चारे की।
बे बन्देज पड़ी बेबाडा जई में इस द्वारे की।
जब चाये लेंय ईसुरी, हमें कौन उवारे की।।

तथा-

2- नैयां रजऊ काऊ के घर में, विरथा' कोऊ भरमें।
सब में है उस सबसें न्यारौ, सब ठौरन में भरमें।।
कोऊ कयें अलख खलक की बातें, लखी न जाये नजर में।
ईसुर गिरधर रयें राधे में, राधें रयें गिरधर में।।"

महाराज श्री वीर सिंह जू देव ओरछा नरेश ने ''ईसुरी प्रकाश'' गौरी शंकर द्विवेदी ''शंकर कृत ग्रंथ में पृष्ठ 10 पर लिखी है।

''सहज सुकुमार बुन्देलखण्डी भाषा का हृदय ग्राही समुचित प्रयोग ईसुरी की रचना की एक बड़ी खूबी है। कथन शैली में एक निराला बांकपन है। साधारण बोल चाल की सरल बुन्देली भाषा में भावों की सजीव मूर्तियाँ ऐसी सफाई से खींची है कि बरबस वाह-वाह करना पड़ती है।''

पं0 गौरी शंकर द्विवेदी शंकर के मतानुसार-

''राष्ट्र भाषा में प्रभावोत्पादकता का पर्याप्त गुण है इसी कारण वह मर्मस्पर्शी है। इसी प्रकार अन्य कवियों में श्री राम सहाय कारीगर की भाषा भी बड़ी बेजोड़ है। जनपद के बुन्देली कवियों में उनके लोक काव्य की भाषा अत्यंत सरल प्रवाह युक्त, मौलिक तथा सर्व गुणों से युक्त है। आवश्यकतानुसार ओज, प्रसाद तथा माधुर्य की सृष्टि करना श्री कारीगर की भाषा में निहित है। उदाहरण के लिए उनका समाज पर व्यगांत्मक शैली में लिखा गया लोक छंद देखिये। उसकी भाषा प्रशंसनीय है-

दोहा - ऐसे है भौतक गुनी, जिनें नई कुछ ज्ञान,
बिच्छू मंत न जानते, करें सांप की शान।।

चौकडियों में ईसुरी की भाषा तथा छंदों में श्री कारीगर की भाषा बेजोड़ है। समग्र रूप से बुन्देली लोक काव्य की भाषा एक आर्दश लोक भाषा मानी जा सकती है। क्योंकि उसके कवियों ने स्वाभाविकता को ही महत्व दिया है अन्य किसी गुण को नहीं। उत्तम भाषा का स्थान भी वही भाषा पा सकती है जो सरल तथा स्वाभाविक हो। बुन्देली के लोक काव्य कवियों में अपनी भाषा के प्रति सहज अनुराग रहा है। उन्होंने महाकवि केशव की तरह से हिन्दी भाषा में कविता लिखने में अपनी हीनता का किंचित आभास नहीं किया है और न ही जनकवि महान तुलसी की भाँत ही उन्होंने यह कहा-

भाषा भनत थोर मति मोरी।
हंसवे जोग हंसे नहिं खोंरी ।।

दूसरी ओर आचार्य केशव भी कहते हैं :-

भाषा बोल न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंद मति, तेहि कुल केसवदास।।

लोक कवियों में भारतेन्दू बाबू हरिश्चन्द्र की उस गर्वोक्ति का अनुसरण करने में अपनी धन्यता का अनुभव किया जिसमें उन्होंने निर्भीक स्वर से अपनी भाषा की उन्नति करने का आव्हान किया था-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय की शूल।।

तात्पर्य यह है कि लोक कवि अपनी बुन्देली भाषा के ही पुजारी रहे है। उन्होंने चाहे कितने ही छंदो, राग रागनियों को अपनाया हो परन्तु अपनी मात्र भाषा बुन्देली को नहीं छोड़ा है। जनपद के लोक साहित्य में बुन्देली भाषा के निम्न रूप मिलते हैं :-

1- प्राचीन बुन्देली भाषा
2- साहित्यिक बुन्देली भाषा
3- विशुद्ध बुन्देली भाषा
4- मिश्रित बुन्देली भाषा

3.1. प्राचीन बुन्देली भाषा

"बुण्देली में लोक गीतों का आरम्भ बारहवीं शताब्दी से होता है। सुप्रसिद्ध लोक काव्य आल्हा उसी समय लिखा गया है।"

"श्री माधव शुक्ल मनोज ले0 कवि तिवारी अंक मामुलिया (6) सं0 2039 पृष्ठ 89 उँपर्युक्त विद्वान के मतानुसार बारहवीं शताब्दी ही लोक काव्य के जन्म का समय है। परन्तु वास्तव में साहित्य तो मानव जीवन के साथ ही आर्विभूत होने वाली वस्तु है। यह बात पृथक है कि लोक काव्य का रूप अस्त व्यस्त रहा हो परन्तु जनपदीय भाषा में यह सदैव से रहा होगा। मानव आदि काल से अपने जीवन में मधुरता लाने के लिए संगीत का प्रयोग करता आ रहा है। प्रसिद्ध विद्वान पैरी ने कहा है- लोक गीत मानव का उल्लास मय संगीत है।
डा0 चिंतामणि उपाध्याय

"आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी वेद तथा लोक गीत दोनों को ही श्रुति मानतें है। श्रीमद भागवत में प्रयुक्त गाथायें विवाह, यज्ञ आदि के अवसरों पर गाई जाती थीं। राम जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों का महर्षि वाल्मीकि ने उल्लेख किया है। इसी प्रकार गीतों का उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट है कि लोक संगीत की कल्याणकारी धारा अति प्राचीन काव्य से सुरसरि की भांति जन मानस को स्वरामृत का पान कराती हुई "प्रवाहमान है।"

अतः समयानुसार जनपदीय बुन्देली भाषा का स्वरूप निश्चित ही एक रूप में नहीं रहा है। प्राचीन बुन्देली भाषा का आज जैसा रूप नहीं था। उदाहरण के लिए श्री हृदयेश जी का बुन्देली का प्राचीन रूप बानगी स्वरूप प्रस्तुत है :-

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में हम प्राचीन बुन्देली को अपभ्रंश कहते थे। परन्तु चाहे वह प्राचीन बुन्देली हो या अर्वाचीन बुन्देली भाषा का सहज सौन्दर्य बड़ा ही अनोखा तथा मधुर है। कुल मिलाकर हम यह कथन सत्य पाते है।-

"------मेरा यह निश्चित मत है कि बुन्देलखण्डी भाषा में ब्रजभाषा से अधिक मिठास है----------------।।"

3.2. साहित्यिक बुन्देली भाषा

बुन्देली भाषा में पर्याप्त साहित्य साहित्यिक बुन्देली भाषा से भरा है। यह भाषा अधिक ललित तथा अलंकारिक है। इसका लोक काव्य एक मोहनी है जिसे सुनकर श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाता है। ऐसे साहित्यिक लोक काव्य में अधिकांश मुक्तक मिलते है। साहित्यिक लोक काव्य में क्लिष्टिता का दोष कदापि नहीं है। इस साहित्य में श्रुति माधुर्य का गुण विद्यमान है। लोक कवि स्व0 श्री रामसहाय जी कारीगर की चौंकडिया देखिये-

मधुरस लैन लुभायये, कमल कलिन पै छाये।
गुंजै अलिन की पुंजन, मधु रस में लौ लाये।।
जौन कली मधु पान न देवै, राम सहायें गाये।
तौन कली को कभी भौर हूं, अवतस कवहुं न चाये।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कामिन सुन्दर दृश्य दिखाये, उठे उरोज सुहाये।
नैनहुँ वैन सेंन देकं, मानों मयन बुलाये।।
मनहुं मनोज खेलवे गेंदन वर वक्षोज बनाये।
"राम सहाय" प्रेम की विरियाँ अंतस कबहुं न चाये।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

2- रेखा स्याम मंजनी काड़ी, भोंय दुवीचें आड़ी ।
भाल चंद्रमा के ऊपर हो, मदकन नें लट छांडी ।
ब्रज के लोगन के वैवे खां मानों जमना बाड़ी ।
सुख कर सुन्दर श्री औष्ण की मुख पै मूरत आड़ी ।
बल जाऊँ घर बैठे ईसुर डेरे कर पै डाड़ी।।"

लोक कवि श्री घनश्याम दास जी पाण्डे का काव्य "हरदौल चरित्र" इसी बुन्देली साहित्यिक भाषा की अनूठी कृति है। आपकी चतुष्पदियां भी बड़ी मार्मिक हैं। आपकी ऐ रचना देखिये -

3- नैना वे लगाम के घोरे, चलें कुपथ मुंह जोरे।
सूरदास ने जान कुचाली अपने हांतन फोरे।
तुलसी ने इन्हीं के कारन, जग के नाते टोरे।
कवि 'घनश्याम' दयालु हरी ने अंजन आंजे मोरे।।
माता रूप भई सब नारी राम काम गढ़ तोरे।।

3.3. विशुद्ध बुन्देली भाषा

बुन्देली लोक काव्य हमें विशुद्ध बुन्देली में भी पर्याप्त मिलता है। इस बुन्देली पर अन्य भाषाओं का प्रभाव या तो है ही नहीं या है तो बहु नगन्य । इस प्रकार के लोक कावियों की जनपद मे बहुत अधिकता है। लोक कवि ईसुरी इसके प्रतिनिधि कवि तो हैं ही. इसके अतिरिक्त ग्रामीण अंचलों में इस प्रकार के कवि अधिक प्राप्त हुए हैं। जनपद झाँसी के बरूआसागर कस्बा के मा0 रामदास कुसुम कुशवाहा द्वारा रचित "हरदौल चरित्र" इसका एक नमूने के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कविता की सम्प्रति देखियेः-

पति विरता खां ऐसें अजमाव ना
स्वामी ललै विष दुवाव ना।
चायें जैसें सत्त अजमा लो
तुलसी गंगा कौल करा लौ
गोला अगन हांत धरवा लो
चुगल खोरन की बातन्न में आव ना,
स्वामी ललै विष दुवाव न।।
तुमरो खासौ भइया वारौ
भजवल वायें ना टोड़ारौ
भोजन में विष दै ना मारो
वीर वंश के बुन्देल खां लजाव न
भरंक नजर न हेरत जानें
मो खां माता के सम मानें

आ गये पत की बहकानें
नगर ओरछा में घास खां जमाव ना।।
एक उदर के दोनों लाल
मैं हूं दूजी माँ सी बाल
मौरो दै दो देश निकाल
कयैं 'रामदास' हत्या सिर लाव ना
स्वामी ललै विष दुवाव ना
पति विरता खां ऐसें अजमाव ना
स्वामी ललै विष दुवाव ना।।

इस प्रकार जनपद की व्यवहार व बोल चाल की बुन्देली लोक भाषा काव्य में बहुत रोचक व मनमोहक लगती है। कारण है कि इसमें स्वाभाविकता तथा सहज अनुभूति है। जनपद के छंद कवियों में लोक कवि स्व0 राम सहाय कारीगर के लोक काव्य में विशुद्ध बुन्देली की ऐसी सैकड़ों रचनायें उपलब्ध हैं-

आधुनिक डाक्टरों पर उनका एक व्यंग देखिये-

दोहा- अब दुनियाँ में बढ़ गये भौत डाकटर लोग।
जानतौ कुछ हैं नहीं, कियै कोन है रोग ।।

डा0 दयाराम वर्मा का बुन्देली के प्रति अपना सहज अनुराग निम्न छंद में प्रस्तुत किया है-

1-
महिमा बुन्देली की गानें घर-घर अलख जगानें।
ईसुर बै गये बीज बुन्देली, नीदत गोड़त रानें।।
बुन्देली में लिख लिख निस दिन, रस बरसा बरसाने।
दयाराम" जो बाग-बुन्देली हरौ भरौ कर मानें।।

2-
तौरी जै बुन्देली भाषा, लगी लगन उर आसा।
प्यारी लगत बोलतन सुनतन, स्वाद में भई बतासा।।
ब्रज की बेंन हिन्दी की बिटिया, तै कर रई तमाशा।
'दयाराम' तेरौ है चेरौ, माने कट पिट कासा।।

इसी तारतम्य में प्रतिनिधि कवि ईसुरी की एक शुद्ध बुन्देली चतुष्पदी देखिये :-

जौ जी रजऊ के लानें, का काऊ से कानें।
जौ लौ जीनें जियत जिंदगी, रजऊ के हेत कमानें।
पैलां भोजन करें रजौआ, पाछे कें मोय खानें।
रजऊ रजऊ कौ नाव ईसुरी, लेत लेत मर जाने।।

3.4. मिश्रित बुन्देली भाषा

यह भाषा बड़ी ललित तथा सामान्य हृदय की भाषा है। इसे खिचड़ी भाषा कह सकते है क्योंकि इस लोक काव्य में प्रचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है। अनेक कवियों ने बेधड़क इन शब्दों को अपनाया है और बुन्देली के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा दिया है। एक उदाहरण देखिये :-

दोहा- डिब्बा से डिब्बा जुरा, अंजन सें दये जोर ।
माल हजारन मन भरें, फेकत चारउ ओर ।।

टैक- आगे इंजन लगे दिखाने, धुआं सरग मडरानें ।

छंद- गल्ला बोरन में भर भरकें,
गाठें कपड़न की धर धर कें
लोहा चलो जात ढर ढरकें - गाड़िन मैंया।
पत्थर चूना कलई न्यारी
बोरा गुर शक्कर के भारी
आ रओ अब सिमंट अधिकरी - दुनियां खैयां।

उ0- चीरन लकड़ी लगे कलन सें रूई उन धुनकानें
भट्टा ईट कलई चूना के कल सें पकत दिखानें।।

टेक- गुदन लगे गुदना अब कल सें, जियै होंय गुदवाने।

छंद- देखैा हारमोनियां वाजा
कैसी मीठी कड़े अवाजा
ग्रामाफून तवन सें बाता-लाउडिस्पीकर
कल से हो रये खेल निराले,
कैसे अजब सनेमा वाले
देखौ विजली के उजयाले टंकी की कर।

उ0- खबर तार सें जावै जल्दी जियै होय पठवानें।
ताजी खबर नये नये गाना लगे रेडियों गाने।।"

उपर्युक्त उद्धरण में हिन्दी शब्दों के साथ साथ अजब, खबर, हजारन आदि शब्द उर्दू के हैं और जो हिन्दी के बुन्देली परिवार में मिलकर उसी के हो गये हैं। रचना सौन्दर्य बढ़ गया है। इन शब्दों के अतिरिक्त, अंजन, सिमंट, हारमोनियां, ग्रामोफून, लाउडिस्पीकर, टंकी एवं रेडियो अंग्रेजी के शब्द हैं जो बुन्देली और हिन्दी में घुल मिल गये हैं। लोक कवि इन शब्दों के माध्यम से अपने सतर्क श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर लेता है। प्रस्तुत कविता का स्वाभाविक नाद-सौन्दर्य भी कम नहीं हुआ है और ना ही इससे बुन्देली की रसानुभूति में व्यवधान ही उत्पन्न हुआ है प्रत्युत बुन्देली की श्री वृद्धि ही हुई है।

अतः बुन्देली भाषा में यदि सूक्ष्म निरीक्षण करने हेतु प्रवेश किया जाय तो इस भाषा के उक्त चार स्वरूप पूर्णतः उचित हैं। सामान्यतः श्रोता, पाठक, वक्ता, एक ही बुन्देली भाषा का व्यवहार करते हैं जिसे हम बोल चाल की बोली कह सकते हैं। इस भाषा में उक्त चारों स्वरूप समाहित होते हैं। जनपद बुण्देलखण्ड के लोक काव्य की भाषा अपनी उक्त विशेषताओं को अपने में उसी प्रकार संजोय हुए है जैसे एक सागर विभिन्न छोटी बड़ी नदियों को अपने में समाहित कर लेता है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची
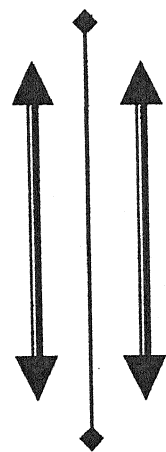
सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	रचनाकार
1.	बुन्देली लोक साहित्य	डा0 राम स्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' रंजन प्रकाशन, आगरा
2.	बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप	डा0 कृष्ण लाल 'हंस' (हिन्दी सा. सम्मेलन प्रयाग)
3.	बुन्देली का फॉग साहित्य	डा0 श्याम सुन्दर बादल (राठ हमीरपुर)
4.	झाँसी दर्शन	श्री मोतीलाल तिवारी 'अशांत'
5.	बुन्देलखण्ड दर्शन	श्री मोतीलाल तिवारी 'अशांत'
6.	बुन्देल वैभव	पं.गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'
7.	ईसुरी प्रकाश	पं.गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'
8.	बुन्देली लोकगीतकार	पं.गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'
9.	सुकवि सरोज	पं.गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'
10.	ईशरी पत्रिका 1 व 2	डा. कान्ति कुमार जैन (सागर विश्व विद्यालय)
11.	बुण्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य	साहित्य वारिधि श्री राम-चरण हयारण
12.	उदय और विकास	'मित्र' अध्यक्ष बुन्देली शोध संस्थान व्यास भवन, झाँसी
13.	लोक गायनी	'मित्र' अध्यक्ष बुन्देली शोध संस्थान व्यास भवन, झाँसी
14.	मानवती का बलिदान	'मित्र' अध्यक्ष बुन्देली शोध संस्थान व्यास भवन, झाँसी
15.	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास	राम चन्द्र शुक्ल
16.	सुकवि	कानपुर स्नेही
17.	मधुकर	श्री बनारसी दास चतुर्वेदी
18.	बुन्देली वार्ता	श्री कन्हैया लाल शर्मा 'कलश' गुरसरायँ
19.	मामुलिया	डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त छतरपुर
20.	बुण्देलखण्डी भाषा बुनियादी शब्द और व्याकरण	श्री लक्ष्मी चन्द्र नुना
21.	राष्ट्र कवि श्री घासीराम व्यास व्यक्ति एवं कृतित्व	श्री राम चरणन हयारण 'मित्र'
22.	बेतवा वाणी	बण्देलखण्ड विश्व विद्यालय

		प्रशासन , झाँसी
23	शोध ग्रन्थ-बुन्देलखण्ड के लोकगीत व लोक कवि ईसुरी का विशेष अध्ययन	डा0 शंकर लाल शुक्ल
24.	लक्ष्मी बाई रासो	सम्पादक डा0 भगवानदास माहौर
25.	अभिनन्दन ग्रन्थ	कवीन्द्र श्री नाथूराम
26	स्मृति ग्रंथ	मुंशी दामोदर दास खत्री
27	बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन	डा0 रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
28	ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन	डा0 सत्येन्द्र
29	बुन्देल भारती	श्री अवध किशोर श्रीवास्तव
30	बुण्देलखण्ड खण्ड बागीश	श्री रामपाल सिंह चंदेल
31	पुस्तक बुन्देली	लक्ष्मी प्रसाद शुक्ल 'वत्स '
32	देश की पुकार	ओम प्रकाश सक्सेना
33	बुन्देली बोल	श्री गजराज सिंह खरे
34	गॉव के गीत	श्री हरगोविन्द गुप्त
35	विपिन वाणी	ब्रज भाषाचार्य श्री सेवकेन्द्र
36	झाँसी की रायसो	श्री कल्याण सिंह कुंडरा
37	बेतवा वाणी	अगस्त 1978
38	व्यंग विनोद	श्री नाथूराम माहौर
39	बुन्देली काव्य	श्री वंशीधर रतमेले
40	बुन्देली लोकगीत भाग-2	डा0 राम स्वरुप श्रीवास्तव 'स्नेही '
41	आल्हा खण्ड	
42	खड़ी बोली का लोक साहित्य	डा0 सत्या गुप्ता
43	ब्रज लोक साहित्य	डा0 सत्येन्द्र विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
44	शोध ग्रन्थ- बुन्देली लोक गीतों में उपासना का स्वरुप	डा0 सुरेखा जैन
45	ब्रज के उत्सव त्यौहार और मेले	प्रभुदयाल मीतल साहित्य संस्थान ,मथुरा
46	बुन्देलखण्डी लोकगीत	श्री शिव सहाय चतुर्वेदी
47	बुन्देलखण्ड के लोकगीत	उमाशंकर शुक्ल
48	बुन्देली लोक साहित्य	श्री चन्द्र जैन स्मृति प्रकाशन इन्दौर ,1973
49	बुन्देली लोक काव्य भाग 1,2	डा0 बलभद्र तिवारी 1973 बुन्देली पीठ प्रकाशन सागर
50	मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा0 सत्येन्द्र विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
51	लोक साहित्य विज्ञान	डा0 सत्येन्द्र

52 लघु शोध ग्रन्थ-बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में लोक संस्कृति - कु0 बबीता जैन

53 शोधग्रन्थ- झाँसी जनपद के अज्ञात लोक कवि और उनके काव्य का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन - डा0 दयाराम वर्मा

पत्र -पत्रिकायें तथा अन्य सामग्री

1- मधुकर पाक्षिक पत्रिका-सत्र 1940, 1अप्रैल,1 नवम्बर,15 दिसम्बर, 1941-1 फरवरी, 1 अप्रैल, 1942-1 मार्च, 1 जून तथा 1 सितम्बर, 1943-1 अप्रैल तथा मधुकर बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण 1 अंक ।

2- साप्ताहिक भारती-23 अक्टूबर 1965, 1968, झाँसी दर्शन विशेषांक व दीपावली विशेषांक, 1970, दीपावली विशेषांक व कृष्ण नन्द गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ 1972, पं0 गौरीशंकर द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ 22 अक्टूबर, 1975 दीपावली विशेषांक, 1978 दीपावली विशेषांक तथा बुन्देली साहित्य शोध विशेषांक ।

3- बुन्देली वार्ता मासिक पत्रिका स्वर्गीय पं0रामसहाय शर्मा स्मृति अंक तथा सितम्बर 1978 सम्पादक श्री कन्हैया लाल 'कलश ' ।

4- विन्ध्य भूमि अक्टूबर 1947-कुष्णानन्द गुप्त

5- लोक संस्कृति विशेषांक-सम्मेलन पत्रिका सं0 2010

6- जिज्ञासा पत्रिका-बुण्देलखण्ड कालेज झाँसी 1978

7- दैनिक मध्यदेश- दीपावली विशेषांक 1973

8- ,बुन्देली का फाग साहित्य- डा0 श्याम सुन्दर बादल

9- कल्याण- उपासना अंक 41/1, 1968

10- कल्याण- भक्ति अंक 32 / 1, 1958

11- कल्याण- हिन्दु संस्कृति अंक- 24/1 1980 प्रा0 संस्करण

12- बुन्देली - श्री लक्ष्मी नारायण शुक्ल वत्य, वत्य प्रकाशन झाँसी 1966

13- हरदौल - श्री भैया लाल व्यास

14- हरदौल - श्री गणेश प्रसाद

15- हरदौल - श्री वियोगी हरी